ज्ञान शांति मैत्री

महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय

(संसद द्वारा पारित अधिनियम 1997, क्रमांक 3 के अंतर्गत स्थापित केंद्रीय विश्वविद्यालय)

Mahatma Gandhi Antarrashtriya Hindi Vishwavidyalaya

(A Central University Established by Parliament by Act No. 3 of 1997)

एमएसडब्ल्यू पाठ्यक्रम द्वितीय वर्ष

(सत्र2014-15 हेतु)

MSW-106

सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य एवं समूह कार्य

दूर शिक्षा निदेशालय

महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय

पोस्ट – हिंदी विश्वविद्यालय, गांधी हिल्स, वर्धा – 442001 (महाराष्ट्र)

मार्ग निर्देशन समिति

प्रो. गिरीश्वर मिश्र
कुलपति, म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

प्रो. आनंद वर्धन शर्मा
प्रतिकुलपति, म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

प्रो. अरबिंद कुमार झा
निदेशक, दूर शिक्षा निदेशालय,
म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

पाठ्यचर्या निर्माण समिति

प्रो. मनोज कुमार
निदेशक – म.गां.फ्यू. गु. समाज कार्य अध्ययन केंद्र, म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

डॉ. मिथिलेश कुमार
असिस्टेंट प्रोफेसर , म.गां.फ्यू. गु. समाज कार्य अध्ययन केंद्र, म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

डॉ. शिवसिंह बघेल
असिस्टेंट प्रोफेसर , म.गां.फ्यू. गु. समाज कार्य अध्ययन केंद्र, म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

श्री अमोद गुर्जर
असिस्टेंट प्रोफेसर , म.गां.फ्यू. गु. समाज कार्य अध्ययन केंद्र, म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

डॉ. शंभू जोशी
असिस्टेंट प्रोफेसर एवं पाठ्यक्रम संयोजक, दूर शिक्षा निदेशालय, म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

संपादन मंडल

प्रो. मनोज कुमार
निदेशक – म.गां.फ्यू. गु. समाज कार्य अध्ययन केंद्र, म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

डॉ. मिथिलेश कुमार
असिस्टेंट प्रोफेसर , म.गां.फ्यू. गु. समाज कार्य अध्ययन केंद्र, म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

डॉ. शंभू जोशी
असिस्टेंट प्रोफेसर एवं पाठ्यक्रम संयोजक, दूर शिक्षा निदेशालय, म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

इकाई लेखन

खंड-1
श्री गजानन निलामे

खंड-2,3 एवं 4
डॉ. शिवसिंह बघेल

कार्यालयीन एवं मुद्रण सहयोग

श्री विनोद वैद्य
अनुभाग अधिकारी, दू.शि. निदेशालय

सुश्री शिल्पा एवं श्री प्रवेश कुमार
सहायक, दू.शि. निदेशालय

डॉ. महेन्द्र प्रसाद
सहायक संपादक, दू.शि. निदेशालय

डॉ. मेघा आचार्य
प्रूफ रीडर, दू.शि. निदेशालय

सुश्री राधा
टंकक, दू.शि. निदेशालय

अनुक्रम

क्र.सं.	खंड का नाम	पृष्ठ संख्या
1	खण्ड - 1 **सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य – I**	04-58
2	खण्ड - 2 **सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य – II**	60-114
3	खण्ड - 3 **सामाजिक समूह कार्य का परिचय**	116-170
4	खण्ड -4 **समूह कार्य सक्रियता**	172-218

MSW-106 सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य एवं समूह कार्य

खंड परिचय

प्रिय विद्यार्थियों,

एमएसडब्ल्यू पाठ्यक्रम के द्वितीय वर्ष के **प्रश्नपत्र MSW-106 'सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य एवं समूह कार्य'** में आपका स्वागत है। इस प्रश्नपत्र को **चार** खंडों में विभाजित किया गया है।

पहला खंड सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य –I है। इसमें समुदाय समाज कार्य प्रणाली के रूप में सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य को समझाया गया है। इस खंड में सेवार्थी को समझने के लिए व्यवहारगत अवधारणाओं पर भी प्रकाश डाला गया है और उनकी जानकारी प्रदान की गयी है। अंत में सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य के कार्यक्षेत्र और उसके घटकों को रेखांकित किया गया है।

दूसरा खंडसामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य –II है। इस खंड में वैयक्तिक सेवाकार्य के सिद्धांत, सहायता करने की सहायक तकनीकें इत्यादि पर प्रकाश डाला गया है। वैयक्तिक सेवाकार्य प्रक्रिया और इसके उपकरणों का भी उल्लेख किया गया है। इसके अतिरिक्त वैयक्तिक सेवाकार्य से संबंधित सैद्धांतिक विचार मार्गों को विस्तार से बताया गया है ।

तीसरे खंड में सामाजिक समूह कार्य पर प्रकाश डाला गया है। सामाजिक समूह कार्य की अवधारणा का परिचय देते हुए इसके ऐतिहासिक विकास एवं भारत में सामाजिक समूह कार्य के इतिहास का उल्लेख किया गया है। अंत में समाज कार्य प्रणाली के रूप में सामाजिक समूह कार्यका वर्णन किया गया है।

चौथा खंड समूह कार्य सक्रियता पर केंद्रित है। इसमें सामाजिक समूह कार्य के सिद्धांतों और प्रारूपों पर प्रकाश डालते हुए समूह विकास की विभिन्न अवस्थाओं का उल्लेख किया गया है। समूह निर्माण की प्रक्रिया को सविस्तार से बताया गया है। अंत में सामाजिक समूह कार्य में मूल्यों और सिद्धांतों की चर्चा की गई है।

खंड 1

सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य –I

इकाई -1 सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य : समाज कार्य प्रणाली के रूप में

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य
1.1 प्रस्तावना
1.2 सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य: एक अवधारणा
    1.2.1 अर्थ एवं परिभाषा
1.3 ज्ञानके स्रोत
    1.3.1 मनोविश्लेषण सिद्धांत
    1.3.2 मनो-सामाजिक सिद्धांत
    1.2.3 व्यवहारवादी सिद्धांत
    1.3.4 प्रकार्यवाद
    1.3.5 चिकित्सा विज्ञान
    1.3.6 मनोचिकित्सा
    1.3.7 अन्य स्त्रोत
1.4 मूल मान्यताएँ
1.5 सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य प्रणाली
    1.5.1 सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य प्रक्रिया के अंग
    1.5.2 सामाजिक वैयक्तिक सेवा के कौशल और सिद्धांत
1.6 भारत में सामाजिक वैयक्तिक कार्य प्रणाली की सीमाएँ
1.7 सारांश
1.8 बोध प्रश्न
1.9 संदर्भएवंउपयोगी ग्रंथ

1.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

1. सामाजिक वैयक्तिक कार्य की अवधारणा को स्पष्ट कर सकेंगे।
2. सामाजिक वैयक्तिक कार्य के ज्ञान के स्रोत एवं मूल मान्यताओं को समझ सकेंगे।
3. सामाजिक वैयक्तिक कार्य की प्रक्रिया को समझते हुए इसे समाजकार्य की एक प्रणाली के रूप में व्याख्यायित कर सकेंगे।

1.1 प्रस्तावना

सामाजिक वैयक्तिक कार्य का इतिहास ज्यादा पुराना नहीं है लेकिन इसकी जड़ें हमको विश्व के विभिन्न धर्मों में दया, दान सहयोग के रूप में मिल जाएगी। दान से सीधा तात्पर्य सहायता से लगाया जाता है किन्तु समय और व्यवस्था परिवर्तन के चलते इस दान या सहयोग की भावनाओं में भीतब्दीलियों आती गयी। इंग्लैड़ में हम देखतेहैं कि मध्यकाल में, धार्मिक भावना से प्रेरित होकर लोग असहाय, विकलांगों तथा रोगियों की सहायता करते थे। दान वितरण के कार्य को अधिक महत्व देने के कारण चर्च तथा राज्य में असहमति उत्पन्न हुई जिसके फलस्वरूप सोलहवीं शताब्दी में निर्धनों की सहायता का दायित्व राज्य पर आ गया। इंग्लैड़ के समान ही अमेरिका में भी दान संगठन का सूत्रपात 1877 के आसपास होता है। 19 वीं शताब्दी के अंतिम वर्षों में 'दान संगठनों' ने अपने काम का दायरा बढ़ाकर औद्योगिक श्रमिकों से जुड़ी समस्याओं से संबंधित कर दिया।भारत में असहायों दीन-दुखियों की सहायता करने की परंपरा काफी प्राचीन थी। अलग-अलग समयों, बौद्ध काल, मौर्यकाल, इस्लाम और ब्रिटिश में इसके स्वरूपों में परिवर्तन आता गया और स्वतंत्रता के बाद इसका स्वरूप कल्याणकारिता ने ग्रहण कर लिया।

लोगों को दी जानेवाली सहायताओं के विश्वभर में विभिन्न स्वरूप है। इन भिन्नताओं के बावजूद कल्याणकारिता का भाव सदैव से इन सब में बना रहा। बीसवीं सदी की शुरूआत तक इस 'सहयोगी प्रक्रिया' के भिन्न-भिन्न प्रयोग भिन्न-भिन्न प्रदेशों में चलते रहे। इन विभिन्न प्रयोगों के कारण इनकी काफी आलोचना भी हुई। इस आलोचना के प्रत्युत्तर में कुछ सामाजिक कार्यकर्ताओं नेइस 'सहायता प्रक्रिया' में एकरूपता लाने की कोशिश की, जिससे समाज कार्य की ज्ञानशाखा का आरंभ हो जाता है। वैज्ञानिक ज्ञान पर आधारित प्रशिक्षित कार्यकर्ताओं के निर्माण के लिए यह जरूरी था। विश्व में इस बिखरे हुए ज्ञान को एकत्रित करने के साथ विद्वानों ने सेवार्थियों की सहायता के लिए वैज्ञानिक प्रणालियों का निर्माण भी किया। सेवार्थियों को सहायता देने का एक रास्ता तैयार किया गया, उनकी समस्याओं को समझने एवं निवारण के लिए वैज्ञानिक खोजके अंतर्गत तकनीक का निर्धारण भी किया गया। जैसा कि पी.डी. मिश्र (2003)*सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य* में लिखते हैं कि सेवार्थियों की सहायता के लिए समाज कार्य ने छ: प्रणालियों को विकसित किया है:

प्राथमिक प्रणालियाँ:-

1. सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य
2. सामाजिक सामूहिक कार्य
3. सामुदायिक संगठन

द्वितीयक प्रणालियाँ:-

1. सामाजिक क्रिया
2. समाज कल्याण प्रशासन
3. सामाजिक अनुसंधान

प्राथमिक प्रणालियाँ, सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य,सामाजिक सामूहिक कार्य तथा सामुदायिक संगठनमें व्यक्तियों के साथ प्रत्यक्ष सम्पर्क स्थापित कर सहायता प्रदान की जाती है। द्वितीयक प्रणालियाँ, सामाजिक अनुसंधान, समाज कल्याण प्रशासन तथा सामाजिक क्रिया प्राथमिक प्रणालियों के निश्चित उपयोग में सहायता प्रदान करती है। सामाजिक वैयक्तिक कार्य अपनी कुछ मान्यताओं के साथ ज्ञान स्रोत्रों के आधार पर सेवार्थी को एक प्रक्रिया के तहत क्रमगत रूप से सहायता प्रदान करता है, जिससे सेवार्थी स्वयं सहायता खुद कर सकने योग्य बन जाता है।

इस पूरी इकाई में हम सामाजिक वैयक्तिक कार्य पर बात करेंगे जिसमें उसकी प्रक्रिया और क्रम मौजूद है इसे यहाँ हम समाजकार्य की एक प्रणाली के रूप में समझेंगे।

1.2 सामाजिक वैयक्तिक कार्य : एक अवधारणा

आमतौर पर किसी व्यवसाय की अपनी एक विषय वस्तु होती है, उसकी उपयोगिता और संचालन विशेषता के क्षेत्र होते हैं, साथ ही उसके अपने मूलतत्व, सिद्धांत एवं प्रणाली होती है। समाज कार्यका भी एक व्यवसाय के रूप में उभार हुआ है इसलिए इसकी भी अपनी एक विषय-वस्तु है, इसकी उपयोगिता और संचालन विशेषता के क्षेत्र हैं और अपने सिद्धांत एव प्रणालियां है। जैसे किप्रत्येक ज्ञानशाखा या व्यवसाय मनुष्य के लिए या उसकी अच्छाई के लिए ही होता है किंतु प्रत्येक व्यवसाय मनुष्य रूपी इकाई का संपूर्ण अध्ययन नहीं करता बल्कि किसी खास दृष्टिकोण से वह मनुष्य की किसी खास इकाई का गहराई से अध्ययन करता है जो व्यवसाय या ज्ञानशाखा की विषय–वस्तु मानी जाती है। समाज कार्य व्यवसाय एवं ज्ञानशाखा के रूप में उसके विकास क्रम में देखते है तो इसकी विषय-वस्तु व्यक्ति की मनोसामाजिक समस्याएँ मानी गयी है। समाज कार्य की उपयोगिता और संचालन के कई सारे क्षेत्र आज हमारे सामने दिखते हैं, जैसे –विद्यालय, अस्पताल, मनोचिकित्सालय,अपराध, उद्योग आदि क्षेत्रों में समाज कार्य ज्ञान के आधार पर इसकी उपयोगिता को बनाए हुए हैं। यह सब कुछ तब तक अधूरा है जब तक समाज कार्य के अपने कुछ सिद्धांत (Principles) और प्रणालियां न हो, इस कमी को भी इसने अपने छ: प्रविधियों और उनके उपकरण, तकनीक एवं प्रक्रिया को विश्लेषित कर लिया है। यह प्रविधि या प्रणाली उस व्यवसाय की पहचान होती है, प्रणाली ही होती है जो कार्यकर्ता को सेवार्थी को सेवा प्रदान करने में एक निश्चित राह/रास्ता दिखाती है। समाज कार्य की इन्हीं छ: प्रणालियों में से एक सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य की अवधारणा की बात यहाँ हम करेंगे।

1.2.1 अर्थ एवं परिभाषा

आम तौर पर, सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य एक ऐसी प्रणाली है जिसमें एक समय में एक व्यक्ति को सहायता प्रदान की जाती है तथा उस व्यक्ति/सेवार्थी को दी जानेवाली सेवा ही इस प्रणाली का केन्द्र बिन्दु होती है। वैयक्तिक सेवा कार्यकर्ता सेवार्थी को समाज में समायोजित होने हेतु उसमें सामंजस्य स्थापित करता है। परंतु समाजकार्य की इस प्रणाली को विकसित करने वाले शुरूआती कुछ विद्धानों ने इसे भिन्न-भिन्न तरीकों से परिभाषित किया है, जिसमें मेरी रिचमंड प्रमुख रूप से हमारे सामने आती है।

मेरी रिचमंड के अनुसार "सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य में वे प्रक्रियाएँ आती हैं जो एक-एक करके व्यक्तियों एवं उनके सामाजिक पर्यावरण के बीच सचेतन रूप से समायोजन स्थापित करती है।"

टैफ्ट एक दूसरे विद्धान थे जिन्होंने 1920 में सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य को व्यक्ति की सामाजिक चिकित्सा के रूप में परिभाषित किया। उनके अनुसार-

''सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य समायोजन रहित व्यक्ति की सामाजिक चिकित्सा है जिससे इस बात का प्रयास किया जाता है कि उसके व्यक्तित्व, व्यवहार एवं सामाजिक संबंधों को समझा जाए और उसकी सहायताकी जाए जिससे कि वह एक उच्चतर सामाजिक एवं वैयक्तिक समायोजन प्राप्त कर सके।''

वैयक्तिक कार्य की प्रक्रिया को पूर्ण रूप से परिभाषित करनेवाली परिभाषा गौर्डन हेमिल्टन (1956) अपनी किताब *Theory and Practice a Social Case Work* में देते हैं। उनके अनुसार-

''सामाजिक वैयक्तिक कार्य में सेवार्थी को स्वयं अपनी परिस्थितियों के अध्ययन में सहभागी बनाते हुए उसके लिए बनी योजनाओं को उनसे साझा करने और उन योजनाओं का उपयोग वह अपनीसमस्या सुलझाने में

सक्रिय प्रयास करें इसके लिए वह खुद के संसाधन या उस समुदाय जिसमें वह रह रहा है, में उपलब्ध एवं उपयुक्त संसाधनों का उपयोग करने के लिए सेवार्थी को प्रोत्साहित किया जाता है।''

उक्त सभी परिभाषाएँ सामाजिक वैयक्तिक कार्य को एक प्रक्रिया के रूप में परिभाषित करती दिखती है किन्तु इनमें कुछ छूट रहा था जिसे एच.एच. पर्लमन ने अपनी किताब social case work : A Problem Solving Processमें विश्लेषित किया है। एच.एच. पर्लमन (1957) के अनुसार-

''सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य एक प्रक्रिया है जिसका प्रयोग कुछ मानव कल्याण संस्थाएँ करती है ताकि व्यक्तियों की सहायता की जाए जिससे कि वे सामाजिक कार्यात्मकता की समस्याओं का सामनाउच्चतर प्रकार से कर सकें।'' पर्लमन ने अपनी पुस्तक में सामाजिक वैयक्तिक कार्य के चार प्रमुख अंगों(Constituents) का वर्णन किया है:

1) व्यक्ति (Person)

2) समस्या (Problem)

3) स्थान (Place)

4) प्रक्रिया (Process)

इसको वैयक्तिक सेवाकार्य में मॉडल की तरह भी उपयोग में लाया जाता है, आमतौर पर इसे सामाजिक वैयक्तिक कार्य की शब्दावली में 4P के रूप में जाना जाता है।

सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य की परिभाषाओं में इसका जिक्र बारबार प्रक्रिया के रूप में आता है। इस प्रक्रिया से तात्पर्य है सामाजिक सेवाकार्य करने का एक निश्चित तरीका। इस प्रक्रिया की बुनियाद कुछ सिद्धांतों एवं मान्यताओं परटिकी है। इसका मतलब यह है कि हमने मान लिया है कि व्यक्ति, समाज, समस्या ख़ास तरह की होती है तभी इससे जूझने का निश्चित रास्ता तैयार हो पाता है। तो वह कौन से सिद्धांत हैं? या वह कौन सा ज्ञान है? उस ज्ञान के स्रोत को समझते हुए हम सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य मान्यताओं पर चर्चा करेंगे।

1.3 ज्ञान के स्रोत

सामाजिक वैयक्तिक कार्य का उद्गम औद्योगीकरण एवं शहरीकरण की प्रक्रिया के साथ हुआ है। 1917 में पहली बार सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य मेरी रिचमंड की किताब Social Diagnosis में सैद्धांतिक दृष्टिकोण से दिखायी पड़ता है जिसका समेकित रूप 1922 में उन्हीं की किताब What is Social Case Work में दिखता है। यह माना जाता है कि सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य चार चरणों से गुजरते हुए इस अवस्थातक पहुँचा है:

1. अन्वेषणात्मक चरण
2. समाजशास्त्रीय चरण
3. मनोसामाजिक चरण
4. एकीकृत चरण

इन चरणों से तात्पर्य है कि सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य शुरूआत में समस्याओं के कारणों की खोज करता रहा, द्वितीय चरण में वह समाजशास्त्रीय ज्ञान का सहारा लेने लगा। तीसरे चरण में वह बाहरी या सामाजिक कारकों के साथ-साथ व्यक्ति के आंतरिक, मनोवैज्ञानिक कारकों की खोज करने लगा। यहाँ तक सीमित न रहते हुए इसने अपना दायरा बढ़ाकर सामाजिक, आर्थिक, मनोवैज्ञानिक एवं राजनीति विज्ञान के साथ-साथ उन सभी ज्ञानशाखाओं के ज्ञान

का आधार लिया जिसमें व्यक्ति को समझा जाता है, जिससे एक एकीकृत दृष्टिकोण तैयार हुआ जिसमें व्यक्ति की कोई समस्या अछूती न रही।

समय-समय पर नई खोजों के साथ आने वाले नवीन सिद्धांतों एवं प्रतिमानस्थानांतरणों (Paradigm shift's) को सामाजिक वैयक्तिक कार्य ने अपने इस प्रणाली में समाहित किया है। इसका एक अच्छा उदाहरण है फ्रायड की 'मन' की अवधारणा। 1909 के आसपास सिग्मंड फ्रायड द्वारा लिखी किताब स्वप्न विश्लेषण (The Interpretation of Dreams) में इसने मानवीय मन को परिभाषित किया था। काफी आलोचनाओं के बावजूद इनका यह सिद्धांत सर्वमान्य बन गया। इस खोज का काफी असर हम सामाजिक वैयक्तिक कार्य की प्रणाली पर देखते हैं। 1917 में लिखी मेरी रिचमंड की किताब Social Diagnosis एवं What is Social Case Work? में सिग्मंड फ्रायड के सिद्धांतों का प्रभाव दिखता है। यहाँ हम सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य को प्रमुख रूप से प्रभावित एवं बुनियाद प्रदान करनेवाले सिद्धांतों का वर्णन करेंगे।

1.3.1 मनोविश्लेषण सिद्धांत

सिग्मंड फ्रायड ने अपने पास आनेवाले विभिन्न रोगियों का अध्ययन कर अपने मनो-विश्लेषण मॉडल की खोज की। फ्रायड का कहना था कि अवचेतन प्रक्रिया से मानव व्यवहार प्रभावित होते हैं इसकी यथार्थता को जानने के लिए मनो-विश्लेषण विधि को उपयोग में लाया जा सकता है। फ्रायड के अनुसार व्यक्ति का व्यवहार मूल तीन उप-व्यवस्थाओं:

इदं(ID), अहम् (EGO) एवं विवेक (SUPEREGO) के बीच होनेवाली अंतःक्रियाओं का परिणाम है।

व्यक्ति के जीवन के ऊर्जा स्रोत के रूप में फ्रायड 'लिबिडो' को मान्यता देते हैं। व्यक्ति के व्यवहार के परिणामों को फ्रायड 'जीवन प्रवृत्ति' (Life Instinct) एवं 'मृत्यु प्रवृत्ति' (Death Instinct) के रूप में परिभाषित करते हैं इसके अलावा 'जीवन प्रवृत्ति' एवं 'मृत्यु प्रवृत्ति को वह अपने पूरे साहित्य में क्रमशः 'इरोस' (Eros) तथा 'थैनेटोस'(Thanatos) के रूप में उपयोग करते हैं। उनके अनुसार व्यक्ति के कुछ कार्य जो उसके हित में है वह 'जीवन प्रवृत्ति' से प्रभावित होते हैं और जो स्वयं को हानि पहुँचाने वाले व्यवहार होते है वह 'मृत्यु प्रवृत्ति' को दर्शाते हैं।
आगे वह अपने दूसरे मॉडल पर बात करते हुए लिखते हैं कि व्यक्ति का संपूर्ण व्यवहार तीन प्रक्रियाओं:
अवचेतन (Unconscious), अर्धचेतन (Sub-Conscious) और चेतन (Conscious) प्रक्रिया का उत्पाद है।

मनोविश्लेषण मानव व्यवहार की सामान्य दशा का पता लगाने में मदद करता है। मानव व्यवहार को प्रभावित करने वाले कारकों का पता इस प्रक्रिया द्वारा मनोविश्लेषण से सहज साध्य बन गया। मनोविश्लेषण के अतंर्गत मानवी व्यवहारों को नियंत्रित करने वाले दबावों(प्रेशर्स) का अध्ययन किया जाने लगा। सामाजिक वैयक्तिक कार्य में इस सिद्धांत का उपयोग मनुष्य को समझने के लिए किया जाता है। साथ ही सामाजिक वैयक्तिक कार्य प्रणाली में इस सिद्धांत की जरूरत प्रत्येक चरण में होती है।

1.3.2 मनो-सामाजिक सिद्धांत

मनोविज्ञान की गेस्टाल्टीयन विचारधारा पर आधारित इस सिद्धांत में मनुष्यके व्यवहार को संपूर्णता में देखने की कोशिश की गयी। मानव व्यवहार के लिए जितने आंतरिक कारक महत्वपूर्ण होते हैं उतनी ही बाहरी दुनिया उसके लिए जिम्मेदार होती है। इन्हीं विचारों को आधार बनाकर गौर्डन हेमिल्टन ने इस दृष्टिकोण को अपने आलेख The Underlying Philosophy of Social Case Work (1941) में विश्लेषित किया है। सामाजिक वैयक्तिक कार्य की प्रक्रिया में सेवार्थी की समस्या से सम्बन्धित तथा संकलन में इस सिद्धांत का बेहतरी से उपयोगकिया जाता है और इसी आधार पर व्यवस्था का अध्ययन करते हुए सेवार्थी की समस्या का गत्यात्मक निदान भी किया जाता है। सेवार्थी

के विभिन्न आयामों, कारकों, प्रकार्यों का वर्गीकरण कर किए गए निदान को पुष्टि मिल जाती है। जिससे चिकित्सा कार्य आसान हो जाता है।

1.3.3 व्यवहारवादी सिद्धांत

मनोविज्ञान में व्यवहारवादियों की एक पूरी परंपरा चली है जिसमें बी.एफ. स्किनर,पावलव एवं वाटसन महत्वपूर्ण व्यवहारवादी हैं जिनका कहना था कि मानवीय व्यवहार को निश्चित (Constant) एवं नियंत्रित किया जा सकता है। सामाजिक वैयक्तिक कार्य में सेवार्थी के व्यवहार में परिवर्तन या परिष्कृत करने का काम किया जाता है। इस प्रक्रिया में व्यवहारवाद की व्यवहार परिष्करण(Behavior Modification) की विधि को सामाजिक वैयक्तिक कार्य ने एक दृष्टिकोण एवं उपागम के तहत स्वीकार किया और सेवार्थियों के उपचार में इसका उपयोग भी किया जाने लगा है।

1.3.4 प्रकार्यवाद

ओटो रैंक के व्यक्तित्व विश्लेषण के सिद्धांत पर आधारित मनोविज्ञान में प्रकार्यवाद का उद्गम होता है। रैंक नेफ्रायड के सिद्धांत में से कुछ विश्लेषणों का विरोध करते हुए संकल्प शक्ति को व्यक्तित्व विकास की प्रक्रिया में महत्वपूर्ण माना। रैंक का मानना था कि व्यक्ति के व्यक्तित्व में ही संगठनात्मक शक्ति (Organizing Force) पायी जाती है, रैंक इसी को संकल्प शक्ति के रूप में परिभाषित करते हैं। यह सिद्धांत व्यक्ति के व्यक्तित्व में सभी मूल प्रकृतियों एवं आवश्यकताओं के बीच होनेवाली अंत:क्रिया तथा बाह्य पर्यावरण संबंधी उस व्यक्ति के अनुभव को महत्व देता है। रैंक का मानना था कि यही अंतक्रिया संकल्प शक्ति (Will power) द्वारा आत्म विकास के लिए संगठित एवं निर्देशित होती है। इस दृष्टिकोण से अहम्(Ego)तथा आत्म (Self) का विकास संकल्प शक्ति साधनों द्वारा आतंरिक तथा बाह्य अनुभवों में इसके रचनात्मक उपयोग द्वारा होता है।

इन सिद्धांतों को बुनियाद मानकर सामाजिक वैयक्तिक कार्य में एक अलग संप्रदाय भी काम कर रहा है।

1.3.5 चिकित्सा विज्ञान (Medical Science)

सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य एवं चिकित्सा विज्ञान दो अलग-अलग विधाएँ है बावजूद इसके सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य में ऐसे बहुत सारे साक्ष्य मिलेंगे जिससे चिकित्सा विज्ञान के साथ संबंध दृढ़हो जाता है। सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य प्रणाली की पूरी शब्दावली परचिकित्सा विज्ञान के प्रभाव को देखा जा सकता है, जैसे- निदान (Diagnosis), उपचार(Treatment), उत्तर कार्य (Follow up), समापन (Termination) यह सारे शब्द मूलत: चिकित्सा विज्ञान के हैं साथ ही सामाजिक वैयक्तिक कार्य की प्रणाली का हृदय भी है। इस तरह चिकित्सा विज्ञान की प्रणाली एवं सामाजिक वैयक्तिक कार्य की प्रणाली की तुलना हम करेंगे तो इसमेंज्यादा अंतर नहीं दिखायी देता।

1.3.6 मनोचिकित्सा (Psychiatry)

मनोचिकित्सा मनोविज्ञान के बुनियादी सिद्धांतों पर आधारित और चिकित्सा विज्ञान की उपशाखा में प्रचलित ज्ञानशाखा या व्यवसाय है। इसमें व्यक्ति की मानसिक बीमारियों का अध्ययन एवं उपचार किया जाता है। मानसिक बीमारियों को न्यूरोसिस (Neurosis) एवं सायकोसिस (Psychosis) के रूप में विभाजित कर अध्ययन किया जाता है। मनोचिकित्सा एवं सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य का संबंध निदान केचरण में खास बनता है। मनोचिकित्सा ने मानसिक बीमारियों का अच्छा खासा वर्गीकरण किया है और इन रोगों जैसे-चिंता, तनाव, भय (Phobia) आदि रोजमर्रा के जीवन में आनेवाली मानसिक बीमारियों के लक्षण (Symptom) एवं रोगलक्षण समूह (Syndrome) तैयार किए है। इसमें Diagnostic statistical manual for mental Disorder (DSM) महत्वपूर्ण है आज इसकी

श्रृंखला में DSM–IV आ गया है, साथ ही मनोचिकित्सा अन्य कुछ मैन्युएल्स प्रदान करता है जिससे सामाजिक वैयक्तिक कार्य में सेवार्थी की समस्या को (खासकर मानसिक) समझने में मदद मिल जाती है।

1.3.7 अन्य स्रोत

सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य मूलत: सेवार्थी केन्द्रित होता है इसलिए इस प्रक्रिया में व्यक्ति एवं उसकी समस्या को जानने के लिए उसे प्रभावित करने वाले आंतरिक एवं बाह्य सभी कारकों का अध्ययन इसमें किया जाता है। इस प्रकार के अध्ययन में सामाजिक वैयक्तिक कार्य व्यक्तिकेन्द्रित समस्याओं के प्रति अपनीसमझ बेहतर बनाने के लिए आंतरिक कारकों में मनोविज्ञान, चिकित्सा विज्ञान एवं मनोचिकित्सा के क्षेत्र से प्राप्त ज्ञान को अपना आधार बनाता है जिसे हमने ऊपर देखा है। साथ ही वह बाह्य कारकों जैसे- सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक कारकों का अध्ययन करने के लिए समाज विज्ञान, अर्थशास्त्र, मानवशास्त्र, राजनीतिक विज्ञान आदि ज्ञानशाखाओं सेसेवार्थी से प्राप्त अनुभवों से जोड़कर समझने में इन ज्ञानशाखाओं की मदद लेता है। सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य का क्षेत्र विस्तार जिस तरह हो रहा है उससे लगता है कि उसने समयानुरूप विकसित सिद्धांतों से अपने ज्ञान को पुष्ट किया है।

उक्त सभी स्त्रोतों से उपलब्ध ज्ञान का समेकित उपयोग सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य में किया जाता है, इसे हम चित्र में स्पष्ट रूप से देख सकते हैं।

चित्र: ०१

1.4 सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य की मूल मान्यताएँ

शुरूआत से ही समाजकार्य मानववाद पर आधारित रहा है। यह सदैव से लोगों के कल्याण की बात करता है। सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य भी इससे परे नहीं हैं। व्यक्ति के जीवन में आनेवाली सामाजिक, मानसिक समस्याओं के आंतरिक एवं बाह्य कारकों की खोज कर उसे समाज में समायोजित करने की क्षमता सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य रखता है। लेकिन इस पूरी प्रक्रिया में वह कभी सेवार्थी पर हावी नहीं होता, न ही उसके मूलभूत अधिकारों के क्षेत्र में हस्तेक्षेप करता है, उसका सम्मान बनाए रखते हुए सामाजिक वैयक्तिक कार्य सेवार्थी को स्वयं अपनी समस्या सुलझाने

में सहयोग करता है। सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्यकर्ता सेवार्थी को समस्या सुलझाने के लिए विकल्प प्रस्तुत करता है न कि लादता है। वह उसके निर्णय लेने की क्षमता को मजबूत करता है न कि उस पर निर्णय लादता है।

सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य प्रणाली को निश्चित करने में इसकी मूल मान्यताओं कीमहत्वपूर्ण भूमिका रही है। कुछ विद्वानों ने सामाजिक वैयक्तिक कार्य की मूल मान्यताओं पर बात की है जिसमें प्रमुखतासे एच.एच.पर्लमन और ग्रेस मैथ्यू (Grace Mathew) की मान्यताएँ हमारे सामने आती है:-

एच.एच.पर्लमन के अनुसार-

1. व्यक्ति और समाज परस्पर निर्भर है और वह एक-दूसरे के सम्मपार्ध है।
2. समाज में मानव व्यवहार एवं अभिवृत्ति(Attitude) विभिन्न कारकों की सक्रियता से प्रभावित होते हैं।
3. कुछ समस्याएँ अपनी प्रकृति में मनोवैज्ञानिक और कुछ अंतर वैयक्तिक होतीहैं।
4. सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य प्रक्रिया सेवार्थी के उद्देश्य प्राप्ति के लिए सचेतन एवं नियंत्रित संबंधप्रस्थापित करती हैं।
5. सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य सेवार्थी की व्यक्तिगत समस्या सुलझाने में उसकी (his/her) ऊर्जा और क्षमता को सकारात्मक दिशा निर्देशित करता है।-
6. सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य प्रत्येक को प्रगति का समान अधिकार मुहैया कराता है। साथ ही यह प्रत्येक आवश्यकता आकांक्षी और जो असमर्थ है ऐसे व्यक्तियों को सहायता प्रदान करता है।

उक्त मान्यताओं ने सामाजिक वैयक्तिकसेवाकार्य प्रणाली को निश्चित रास्ता प्रदान किया है जिसके अवलंबन के बाद सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्यकर्ता सेवार्थी को उचित सेवाएँ प्रदान कर सकता है। बावजूद इसके ग्रेसमैथ्यू (Grace Mathew) ने सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य की कुछ दार्शनिक मान्यताएँ भी दी है। जो ज्यादातर मानववाद से प्रभावित है।

1.5 सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य प्रणाली

इकाई की शुरूआत में ही हमने देखा कि समाज कार्य की छ: प्रणालियाँ है इसमें से सबसे महत्वपूर्ण और प्राथमिक प्रणाली के रूप में सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य को देखा जाता है। यहाँ हम सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य को एक प्रणाली के रूप में समझने की कोशिश करेंगे। सबसे पहले हमारेसामने सवाल आता है प्रणाली क्याहै? क्या वह विचार है क्रिया है या प्रक्रिया?

प्रणाली शब्द अंग्रेजी के Methodका हिंदी रूपांतरण है। अंग्रेजी शब्दMethod ग्रीक के Methodos का रूपांतर है जिसकासंधि विच्छेद करें तो Meta (महान)+Hodos(रास्ता) 'महान रास्ता' होता है। यह ग्रीक शब्द भी लैट्रिन के Methodus से बना है। मध्यकालीन अंग्रेजी में, पंद्रहवी शताब्दी में Method शब्द का उपयोग Prescribed Treatment (निर्दिष्ट उपचार) के रूप में किया जाता रहा। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि प्रणाली शब्द से सीधा तात्पर्य रास्ते/मार्ग से हैं। ऐसा मार्ग जो निर्दिष्ट हो। प्रणाली शब्द के विश्लेषण से इसका अर्थ और भी स्पष्ट हो जाएगा। शब्दकोशों में प्रणाली से तात्पर्य किसी ज्ञानशाखा के गुणवत्तापूर्ण विचार या क्रियासे है जो सुगठित एवं व्यवस्थित हो। साधारण भाषा में हम कहेंगे किसी एक ज्ञानशाखा द्वारा वूयवस्थित प्रक्रिया एवं तकनीक के माध्यम से की गयी जाँच पड़ताल को उचित रूप से प्रयोग में लाना। इसी तरह सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य एक प्रणाली है तो यह अपनी निश्चित प्रक्रियाओं एवंतकनीकों के माध्यम से सेवार्थियों की समस्याओं की जाँच पडताल के

बाद उसका उचित उपयोग कर निदान एवं उपचार करती है। सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य को एक प्रणाली के रूप में समझना है तो हमें उसकी निश्चित प्रक्रिया और तकनीकों को समझना पड़ेगा।

सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य प्रणाली को विद्वानों द्वारा दी गयी परिभाषाओं के आधार पर समझे तो वह एक व्यक्ति को सामाजिक कार्यकर्ता द्वारा दी जाने वाली सेवा है, उपचारात्मक या सहायता परक दोनों हो सकती है। अब हम यहाँ समझेंगे कि यह सेवा कैसे दी जाएगी? सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य प्रणाली की अपनी एक निश्चित प्रक्रिया है, इस प्रक्रिया में सेवार्थी की समस्याओं काअध्ययन करने के लिए इसके निश्चित उपागम (Approach) है साथ ही इन उपागमों के अंतर्गत सेवार्थियों को समझने एवं उनको सहयोग प्रदान करने की निश्चित तकनीक एवं उपकरण भी है। इन सभी के साथ सहायता प्रदान करनेवाले कार्यकर्त्ताओं को अपने में निश्चित कौशल को निर्माण करना पड़ेगा।

1.5.1 सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य प्रक्रिया के अंग

एच. एच. पर्लमन ने सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य प्रक्रिया के चार प्रमुख अंगोंकी चर्चा की है:

1. व्यक्ति (Person)
2. समस्या (Problem)
3. स्थान (Place)
4. प्रक्रिया (Process)

इन्हें हम निम्न चित्र के माध्यम से भी समझ सकते हैं-

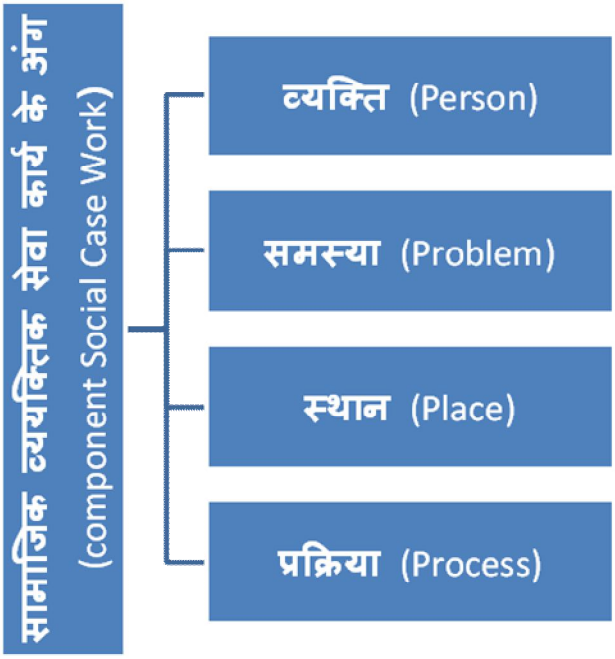

अ. व्यक्ति (Person) :- प्रत्येक व्यक्ति चाहे वह स्त्री, पुरूष, वृद्ध, बालक आदि सामाजिक पहचान के साथ समाज में रह रहा हो और यह अगर अपनी समस्याओं में सहायता प्राप्ति के लिए संस्थामें आता है तो वह सेवार्थी के रूप में परिभाषित किया जाता है। पर्लमन के अनुसार एक हीसंस्कृति, भाषा और समाज में रहने वाले सभी व्यक्ति समान नहीं हो सकते इसलिए सेवार्थी को बाकी व्यक्तियों से अलग कर व्यक्तिवादी दृष्टिकोण से देखना होगा। प्रत्येक का व्यक्तित्व

दूसरे व्यक्ति से भिन्न होता है, उसके सांवेगिक और मानसिक गुण भी अलग होते हैं। प्रत्येक व्यक्ति की अपनी अलग क्षमता होती है उसी मानसिक और शारीरिक क्षमता के आधार पर वह समाज में प्रत्यक्षीकरण, अनुभव, समझना आदि क्रियाएँ करता है। व्यक्ति के इन क्रियाकलापों को भूत, वर्तमान में बाँटकर नहीं देखा जा सकता, यह चक्र सदैव उसके साथ रहता है। व्यक्ति समाज में अपनी भूमिका के अनुसार व्यवहार करता है। यह भूमिका और व्यवहार प्रत्येक दूसरे व्यक्ति से अलग होते हैं। इसी भिन्नताओं कोध्यान में रखते हुए समस्याग्रस्त व्यक्ति को सेवार्थी के रूप में परिभाषित किया जाता है। इसमें सेवार्थी की व्यक्तिगत श्रेष्ठता और सम्मान को भी ध्यान में रखा जाता है।

ब. समस्या (Problem) :- पर्लमन (1957) *सोशल केसवर्क:एप्रॉब्लम सोल्विंग प्रोसेस* में समस्या को परिभाषित करते हुए लिखते हैं-

"समस्या व्यक्ति की कुछ आवश्यकताओं, बाधाओं या आशाओं के भंग होने की स्थितिके एकीकरण या समायोजन आदि से संगठित होकर व्यक्ति के जीवन स्थिति पर या समाधान प्राप्ति के लिए किए गए प्रयत्नों की उपयुक्तता पर संकट बन के खड़ी होती है या उसपर आक्रमण कर चुका होता है, इससे समस्या उत्पन्न होती है।''

विलियम जेम्स एवं अन्य ने मानवीय समस्याओं को मानसिक रूप से मनोविज्ञान मेंस्पष्ट किया है। इनके अनुसार जब एक व्यक्ति अपने नियत उद्देश्य तक पूर्व से सीखी हुई आदतों, संप्रेरणाओं तथा नियमों से नहीं पहुँच पाता है तब समस्या की स्थिति उत्पन्न होती है। समाजशास्त्रीय रूप से देखें तो समस्या का सीधा संबंध व्यक्ति की उन आवश्यकताओं से है जिसकी आपूर्ति वह्यक्ति नहीं कर पा रहा हो। इसी से व्यक्ति के जीवन में व्यवधान एवं कष्ट उत्पन्न होते हैं। समस्या किसी तरह का दबाव भी हो सकती है। यह दबाव मानसिक, शारीरिक एवं सामाजिक किसी भी प्रकार का हो सकता है। इस दबाव के कारण व्यक्ति समाज में अपनी भूमिकाओं और भूमिका से संबंधित क्रियाकलाप में अप्रभावकारी सिद्ध होता है। पर्लमन (1957) *सोशल केस वर्क:एप्रॉब्लम सोल्विंग प्रोसेस* में बताते हैं कि ''सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य की परिधि में उन्हीं समस्याओं को सम्मिलित किया जाता है जो व्यक्ति की सामाजिक कार्यात्मकता को प्रभावित करती है या सामाजिक कार्यात्मकता द्वारा प्रभावित होती है। सेवार्थी की समस्या की गत्यात्मक प्रकृति को ध्यान में रखते हुए सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य अगली कार्यवाही करता है।

स. स्थान (Place) :- सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य प्रणाली में सेवार्थी को सहायता प्रदान करने के लिए निश्चित स्थान की आवश्यकता होती है। ऐसे स्थान पर उन मौलिक सुविधाओं एवं विशेषज्ञों की अनिवार्यता होती जो सेवार्थी की समस्या के समाधान में सहायक हो। साथ ही एक खास वातावरण की आवश्यकता होती है जिसमें सेवार्थी स्वयं को अनुकूलित कर सके। ऐसे स्थान को सामाजिक संस्था या वैयक्तिक सेवाकार्य संस्था कहा जाता है। पर्लमन के लेखन में दो प्रकार की संस्थाओं का वर्णन मिलता है

1. सार्वजनिक संस्था (Public Agency)
2. निजी संस्थाएँ (Private Agency)

आज इसके कई स्वरूप हमारे सामने हैं, बहुउद्देशीय संस्था एक विशेष प्रकार की सामाजिक संरचना है जिसका उद्देश्य न केवल सामाजिक समस्याओं का निवारण करना है बल्कि उनकी भी सहायता करना है जो समस्या का अनुभव कर रहे हैं जिससे वे अपने जीवन को पुनर्गठित कर सकें। सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य के अतंर्गत संस्थाका मुख्य उद्देश्य व्यक्ति की सामाजिक बाधित अवस्था को दूर करना है तथा मनोसामाजिक समस्याओं का निराकरण एवं समाधान करना है जिससे वह व्यक्ति या सेवार्थी अपने व्यक्तिगत एवं पारिवारिक जीवन को पुनःसुखमय बना सके।

ड. प्रक्रिया (Process) :- सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य में प्रक्रिया से तात्पर्य ऐसे घटनाओं से हैजिनसे विशिष्ट परिणाम प्राप्त होता है और इन दोनों (घटना एवं परिवर्तन) के बीच एक संबंध हो। घटनाक्रमों और परिणाम केबीच अगर तादात्म्य नहीं हैं तो वह प्रक्रिया नहीं हो सकती। जैसे कि हम जानते है सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य प्रणाली में व्यक्ति की सभी समस्याओं का समाधाननहीं किया जा सकता है। यह प्रक्रिया व्यक्ति के आंतरिक तथा बाह्य समायोजन से संबंधितसमस्याओं तक सीमित है। पी. डी. मिश्र (2003) *सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य* में लिखते हैं,सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य प्रक्रिया व्यक्तियों की समस्याओं से संबंधित दो प्रकारसे सहायता करता है-

1. असंतोष के स्थान पर संतोष प्रदान करना।
2. वर्तमान स्थिति से अधिक संतोष प्राप्त करना।

इसे प्राप्त करने में तीन प्रकार के साधन सेवार्थी की सहायता करते है:-

1. चिकित्सात्मक संबंध
2. कार्यप्रणाली का एक निश्चित स्वरूप
3. समाधान के अवसर

सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य प्रक्रिया का उद्देश्य व्यक्ति की मनोसामाजिक समस्याओं को सुलझाने तक सीमित नहीं है बल्कि व्यक्ति की क्षमताओं को इस स्तर तक पहुँचाना जहाँ व्यक्तिस्वयं यथा संभव अधिकतम सुख एवं संतोष के साथ जीवनयापन कर सके। सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य प्रणाली की प्रक्रिया में कार्यकर्ता द्वारा सेवार्थी की सहायता प्रदान करने के उद्देश्य से तीन प्रमुख कार्य करने होते हैं:

1) सेवार्थी की समस्या का अध्ययन
2) समस्या का निदान
3) बाह्य तथा आंतरिक सहयोग द्वारा संगठनमें उपचार।

इन तीन चरणों से होकर सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य प्रणाली की प्रक्रिया पूर्ण होती है। इसे विस्तार से हम यहाँ समझेंगे।

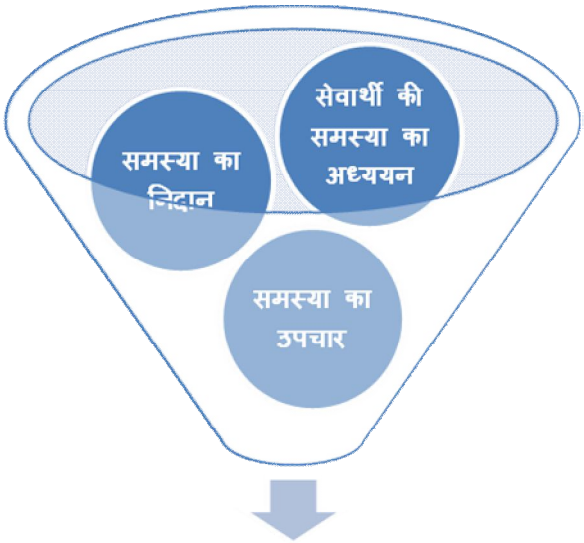

सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य प्रणाली

सेवार्थी की समस्या का अध्ययन (Problematization of Client):- सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य प्रक्रिया के प्रथम चरण में वैयक्तिक सामाजिक कार्यकर्ता सेवार्थी की समस्या का अध्ययन करता है। इसमें भी दो अवस्थाओं में यह काम किया जाता है:-

1. इतिहास वृत्त (Case History)
2. आंकलन (Assessment)

इतिहास वृत्त (Case History) :- किसी संस्था में सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्यकर्ता सेवार्थी का इतिहास वृत्त देखता है। इतिहास वृत्त में भी वह समस्याकेन्द्रित इतिहास वृत्त का अध्ययन पहले करता है। इससे ठीक से समस्या का ज्ञान हो रहा है तो ठीक है अन्यथा सेवार्थी के परिवार से संबंधित इतिहास वृत्त का अध्ययन कार्यकर्ता द्वारा किया जाता है। इसमें कार्यकर्ता विभिन्न तकनीकों एवं उपकरणों की मदद लेता है जिसमें निरीक्षण, अन्वेषण एवं साक्षात्कार आदि मुख्य है। साधारण भाषा में कहें तो सामाजिक कार्यकर्ता इस चरण में समस्या से संबंधित इस सवाल का जवाब ढूँढ रहा होता है कि अब तक क्या हुआ है ?

आंकलन (Assessment) :- पहले चरण में सेवार्थी की समस्या के विषय में अधिक से अधिक बहुआयामी बहुकारणीय जानकारी एकत्रित की जाती है। तब द्वितीय चरण में प्रवेश होता है। इस समय कार्यकर्ता के सामने समस्या निर्धारण का सवाल होता है। एक सेवार्थी को एक या एक से अधिक समस्याएँ भी हो सकती है। ऐसे में सेवार्थी के साथ दृढ़ संबंध बनाते हुए कार्यकर्ता उसकी समस्याओं का एक क्रम बनाता है और सेवार्थी के हिसाब से उसकी प्राथमिकता तय करता है। साथ ही इसमें उस सेवार्थी की मुख्य समस्या का निर्धारण किया जाता है क्योंकि बहुत बार व्यक्ति की समस्याएँ जटिल स्वरूप की होती है या तो एक दूसरे से अंतसंबंधितहोती है। ऐसे में इस चरण में सामाजिक कार्यकर्ता सेवार्थी से सलाह मशविरा कर मुख्य समस्या का निर्धारण करता है।

समस्या का निदान (Diagnosisof Problem):- सेवार्थी की समस्या को प्राथमिक तौर पर निर्धारित करने के बाद निदान की प्रक्रिया शुरू हो जाती है। चिकित्साशास्त्र में निदान को लक्षणों के समूह के रूप में परिभाषित किया जाता है। लेकिन सामाजिक वैयक्तिक कार्य में निदान केवल लक्षणों के समूह तक सीमित न रहकर सेवार्थी की समस्या का समग्र रूप का ज्ञान होता है। निदान सेवार्थी द्वारा प्रस्तुत समस्या की वास्तविक प्रकृति से संबंधितव्यावसायिक मत है जिसे वैयक्तिक सामाजिक कार्यकर्ता सेवार्थी से संबंध स्थापित कर उसकी समस्या को निश्चित करता है। सामाजिक वैयक्तिक अध्ययन प्रणाली की निदान प्रक्रिया के अंतर्गत दो प्रमुख प्रश्नोंके उत्तर प्राप्त किए जाते है:

1) समस्या या समस्याओं के कारक क्याहै?

2) सेवार्थी की सहायता किस प्रकार की जा सकती है?

पर्लमन ने तीन प्रकार के निदान की चर्चा की है:-

1. गतिशील निदान (Dynamic Diagnosis) :- इस प्रक्रिया के अंतर्गत सेवार्थी की समस्या, उसके व्यक्तित्व तथा पर्यावरण से संबंध स्थपित करते हुए इस निष्कर्ष पर पहुँचा जाता है कि सेवार्थी की समस्याओं की उत्पत्ति में उसकीवर्तमान स्थितियां तथा व्यक्तित्व कहाँ तक प्रभाव डाल रहा है?
2. कारणात्मक निदान (Etiological Diagnosis) :- इसके अंतगर्त सेवार्थीके विगत जीवन की घटनाओं पर ज्यादा ध्यान दिया जाता है और यथाशक्ति सेवार्थी के समस्यामूलक व्यवहारों का संबंध उसके विगत जीवन की धारणाओं के साथ जोड़दिया जाता है।

3. उपचारात्मक निदान (Clinical Diagnosis) :- वास्तविक समस्या को समस्या के आधार पर वर्गीकृत करने की प्रक्रिया को क्लीनीकल या उपचारात्मक निदान कहते हैं। तथ्यों के परीक्षण तथा अन्वे्षण से जब यह ज्ञात हो जाता है कि सेवार्थी का व्यक्तित्व उसकी समस्या के लिए स्वयं उत्तरदायी है तो उसके व्यक्तित्व असमायोजन तथा व्यक्तित्व अकार्यात्मकता को मूल्यांकित किया जाता है जिसे उपचारात्मक निदान कहा जाता है। इस निदान प्रक्रिया में सेवार्थी के व्ययक्तित्वम असमायोजन के गुणों तथा व्यवहारों का वर्णन होता है।

समस्या का उपचार (Treatment of Problem):- उपचार को साधारणत: चिकित्सा सेवा के साथ जोड़कर देखा जाता है जिसमें रोग मुक्तिया रोग नियंत्रण से अर्थ लगाया जाता है। ठीक इसी तरह सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य में उपचार को लिया जाता है किन्तु यहाँ उपचार का निर्धारण सीधे मनो-सामाजिक समस्याओं का निर्धारण, सेवार्थी की समस्या,उसकी इच्छा, उसकी आशा,आंतरिक क्षमता तथा कार्य करने की शक्ति, बाह्य पर्यावरण में उपलब्ध साधन,संस्था की नीति तथा कार्यकर्ता के ज्ञान एवं कुशलता के आधार पर किया जाता है।

आप्टेकर ने (1955) *दि डायनामिक्स ऑफ केस वर्क एंड काऊंसीलिंग* में सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य प्रणाली के दो मुख्य उद्देश्य बताए हैं:-

1. वर्तमान जीवन परिस्थितिकी प्राप्ति करने के लिए क्षमता तथा स्त्रोतों में गतिशीलता प्रदान करने में सहायता द्वारा सेवार्थी की वर्तमान शक्तियों को बनाए रखना अथवा उन्हें आत्मबल प्रदान करना।
2. सेवार्थी को अपने विषय में, अपनी समस्या के विषय में एवं इस समस्या को उत्पन्न करने में स्वयं की भूमिका के संबंध में ज्ञान दृष्टिप्रदान करना तथा उसकी मनोवृत्तियों एवं व्यवहार के तरीकों में परिवर्तन लाना।

समस्या उपचार के दौरान सामाजिक वैयक्तिक कार्यकर्ता निम्न उपकरणों को उपचार के साधनों के रूप में उपयोग में लाता है-

1. परिस्थितियों में सुधार
2. आलम्बन
3. तादात्मीकरण
4. स्वीकृति
5. पुष्टीकरण
6. प्रोत्साहन
7. सामान्यीकरण
8. संक्षिप्तीकरण
9. व्याख्या
10. पुनर्विश्वासीकरण
11. निर्देशन
12. शिक्षण
13. स्पष्टीकरण
14. अंतर्दृष्टि का विकास

15. सामूहिक चिकित्सा
16. पुनर्वासन अदि

1.5.2 सामाजिक वैयक्तिक सेवा का कौशल और सिद्धांत

विभिन्न विव्दानों ने सामाजिक वैयक्तिक कार्यकर्ता के कौशल विचार प्रस्तुत किए हैं। उन्होंने बताया कि वैयक्तिक कार्यकर्ता के पास कौन से कौशल होने चाहिए? कुछ प्रमुख कौशल पर हम यहाँ बात रखेंगे:

1. संबंध स्थापना का कौशल
2. समस्या का गहराई के साथ अन्वेषण करने का कौशल
3. मानव व्यवहार के ज्ञान का कौशल
4. उपलब्ध संसाधनों के उपयोग का कौशल
5. समस्या समाधान-ढूँढने का कौशल

इन कुशलताओं के साथ कर्म्यकर्ता और सेवार्थी के बीच संबंध निश्चित करने हेतु एफ.बी. बीस्टेक (1957) ने The Casework Relationship में कार्यकर्ता –सेवार्थी संबंध के निम्नलिखित सिद्धांत बताएँ है-

1. वैयक्तिकरण का सिद्धांत
2. भावनाओं का उद्देश्यूर्ण प्रगटन
3. नियंत्रित संवेगात्मक संबंध
4. स्वीकृति
5. अनिर्णयात्मक मनोवृत्ति
6. सेवार्थी का आत्म निर्धारण का-अधिकार
7. गोपनीयता

कुशलताओं, सिद्धांतों एवं उपकरणों केमाध्यम से सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य प्रक्रिया को प्राप्त होती है किन्तु खत्म नहीं होती क्योंकि उपचार के बाद सेवार्थी के साथ संबंध खत्म नहीं होता है इसलिए उपचार के बाद मूल्यांकन (Evaluation) एवं उत्तर कार्य (Follow up) भी किया जाता है। सेवार्थी को दी गयी सेवाओं एवं उपचारों का मूल्यांकन इसमें किया जाता है, सेवार्थी की समस्या के निवारण के बाद भी सेवार्थी से समय-समय पर प्रतिपुष्टि ली जाती है, इसे उत्तर कार्य के रूप में देखा जाता है।

1.6 भारत में सामाजिक वैयक्तिक कार्य प्रणाली की सीमाएँ

सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य औद्योगीकरण एवं नगरीकरण की देन मानी जाती है। इस प्रणाली का उद्गम एवं विकास ज्यादातर पश्चिमी अवधारणाओं पर आधारित होने के कारण भारत में इसका वांछित विकास नहीं हो पाया है। इसके कारणों में से कुछ निम्नलिखित हैं-

- सामाजिक वैयक्तिक सेवा की कार्य प्रणाली का आधार पश्चिम से उधार लिया गया है;
- स्वदेशी साहित्य का अभाव;
- सामाजिक कार्य के क्षेत्र की मान्यता का अभाव;
- शहरी परिवेश पर अधिक ध्यान केन्द्रित होने के कारण ग्रामीण क्षेत्रों में अपनी प्रासंगिकता पर चुप्पी;

- सामाजिक वैयक्तिक सेवा प्रणाली समस्या सुलझाने की प्रक्रिया में काफी समय लेती है।

इन सीमाओं के बावजूद भारत में महानगरों एवं बड़े शहरों में सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य का क्षेत्रव्यापक बनता जा रहा है।

1.7 सारांश

प्रस्तुत इकाई में हमने सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य के सभी अंगों को समाहित करने का प्रयास किया है। जिसमें सामाजिक वैयक्तिक कार्य की अवधारणा और इसके निर्माण में सहयोगी विभिन्न ज्ञानशाखाओं काअध्ययन इस इकाई में किया है। साथ ही सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य की मूल मान्यताओं पर भी प्रकाश डाला है और इसके अंग जिसमें व्यक्ति,समस्या, स्थान एवं प्रक्रिया निहित है, का विस्तार से अध्ययन किया है। इस इकाई में सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य को प्रणाली के रूप में समझने की कोशिश की है, सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य को एक प्रणाली के रूप में समझने योग्य सामग्री का यथासंभव विश्लेषण किया है।

1.8 बोध प्रश्न

१. वैयक्तिक सेवाकार्य की अवधारणा को स्पष्ट कीजिए।
२. वैयक्तिक सेवाकार्य के ज्ञान निर्माण में सहयोगी स्त्रोतों की चर्चा कीजिए।
३. सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य के अर्थ को स्पष्ट करते हुए इसकी मूल मान्यताओं को विश्लेषित कीजिए
४. सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य के अंगभूततत्वों की संक्षेप में चर्चाकरें।
५. सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य एक प्रणाली है। व्याख्यायित करें।

1.9 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

Felix Paul Biestek. (1957). The Casework Relationship.Chicago: Loyala University Press.

Gorden Hemilton. (1948). Theory and Practice of Social Case Work .Colambia University Press.

H. H. Aptekar. (1955). The Dynamics of Case Work and Counselling .Newyork: Hathton Miclin Co.

H.H. Parlman. (1957). Social Case Work: A Problem Solving Process .Chicago: The University of Chicago Press.

Wiliam Jems,&Others. (1955). Psychology.Fransisco Newyork: Freeman and Co.

पी. डी. मिश्र. (2003). सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य. लखनऊ: उत्त र प्रदेश हिंदी संस्थान.

उपयोगी वेब लिंक

http://www.historyofsocialwork.org/PDFs/1922,%20Richmond,%20what%20is%20social%20casework%20OCR%20C.pdf (10-09-2015)

http://www.yourarticlelibrary.com/sociology/social-casework-nature-values-principles-and-trends/36541/(10-09-2015)

http://christcollegemsw.blogspot.in/

इकाई -2 सेवार्थी को समझने के लिए व्यवहारगत अवधारणाएं

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य
2.1 प्रस्तावना
2.2 मानव व्यवहार
2.3 मानव की आवश्यकताएं
2.4 मानवी व्यक्तित्व
2.5 व्यक्तित्व के निर्धारक और कारक
2.6 समायोजन एवं बचाव तंत्र
2.7 सामाजिक भूमिका एवं प्रस्थिति
2.8 बोध प्रश्न
2.9 सारांश
2.10 सन्दर्भ एवं उपयोगी ग्रन्थ

2.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप -

१. मानवीय व्यवहार के प्रतिसमझ विकसित कर पाएंगे॥
२. मानवीय आवश्यकताओं के पदानुक्रम की जानकारीहासिल कर सकेंगे।
३. मानवीय व्यक्तित्व की अवधारणा को समझते हुए उसके निर्धारकों एवं कारकों का विश्लेषण कर सकेंगे।
४. व्यक्ति के जीवन में आने वाली तनाव जन्यस्थितियों में समायोजन प्राप्ति के तंत्रों को समझ पाएंगे॥
५. व्यक्ति की सामाजिक प्रस्थिति एवं भूमिका की व्याख्या कर सकेंगे।

2.1 प्रस्तावना

व्यक्ति, प्रकृति का सबसे जटिलतम निर्माण है जिसे समझना आज भी एक अबूझ पहेली है। धर्म, दर्शन, विज्ञान आदि का निर्माण करने वाले को विश्लेषित करना सबसे जटिल काम हो सकता है। अनेक विज्ञानों ने इसे संरचना, गत्यात्मकता, आकार के आधार पर विश्लेषित करना चाहा है फिर भी इसमें पूरी तरह सफलता प्राप्त नहीं हुई है। चिकित्सा विज्ञान ने इसे जैविकीय आधार पर, मनोविज्ञान ने इसे मानसिक तौर पर समझने में काफी हद तक सफलता प्राप्त की है। किन्तु व्यक्ति के व्यवहार को समझने के लिए आज भी पूरी तरह से सफलता प्राप्त नहीं हुई है। व्यक्ति को समझने के लिए व्यक्ति के सभी अंगों को समझना होगा॥ मनोसामाजिक दृष्टिकोण से जब हम किसी व्यक्ति को देखते है तो उसकी वृद्धि, विकास और व्यवहार इन तीन अंगों से उसे हम समझने की कोशिश कर रहे होते हैं। मनुष्य की वृद्धि से संबंधित अध्ययन जीव विज्ञान में किया जाता रहा है, उसके विकास और व्यवहार संबंधी अध्ययन मनोविज्ञान में किया जाता है। व्यक्ति को व्यक्तिगत तौर पर समझने के लिए इन तीनों को एकत्रित कर देखना बहुत ही जरूरी होता है। हो सकता है कि किसी व्यक्ति का मानसिक विकास हो गया हो किन्तु शारीरिक वृद्धि न हो पायी हो या किसी की शारीरिक वृद्धि हो गयी है॥ परन्तु मानसिक विकास न हो पाया हो, या इस से अलग मनो-शारीरिक विकास एवं वृद्धिके बावजूद व्यवहार में गलतियाँ होती हो, जब किसी व्यक्ति का तीनों अंगों से सामान्य विकास हुआ हो, तो वह एक

सामान्य व्यक्ति कहलाता है या मनोविज्ञान की भाषा में सामान्य व्यक्तित्व कहलाता है। प्रस्तुत इकाई में हम मनुष्य के इन तीनों अंगों का अध्ययन करेंगे साथ ही इन तीनों के समाकलन में अवरोध पैदा करने वाले विभिन्न कारकों एवं प्रभाव कों; मानवीय आवश्यकताएं, व्यक्तित्व, व्यक्तित्व के निर्धारक, सुरक्षा तंत्र एवं सामाजिक भूमिका एवं प्रस्थिति का अध्ययन यहाँ करेंगे।

1.4 मानव व्यवहार

मानव 'विकास' के प्रत्येक चरण में कुछ न कुछ हरकत (Movement) जरूर करता रहता है। मानव और समाज के बीच अंतर्संबंध होते है बावजूद इसके कुछ व्यवहार वैयक्तिक व्यवहार कहलातें हैं और कुछ सामाजिक व्यवहार। हम समाज को चार स्तरों में, व्यक्ति, समूह, समुदाय एवं समाज के रूप में अब तक देखते हुए आ रहे हैं। किन्तु आज के समय में व्यक्तिवादिता का बोलबाला है इसलिए व्यक्ति के हितों में भी बदलाव दिखाई देते हैं। अत: व्यक्ति ज्यादा से ज्यादा उन्हीं चीजों को जानने की कोशिश करता है जिसमें उसका स्वहित हो। इसी आधार पर हम उसे अलग-अलग स्तरों में बाँटने की कोशिश करते हैं जिसमें मनुष्य के व्यवहार को जानने के लिए व्यक्ति का वैयक्तिक व्यवहार, व्यक्ति का समाज में व्यवहार और व्यक्ति का संगठन में व्यवहार के रूप में वर्गीकृत कर देखा जा सकता है।

ब्रिटेनिका विश्वकोश के अनुसार मानव व्यवहार को "मानव जीवन में शारीरिक, मानसिक, एवं सामाजिक स्थितियों में किये जाने वाले क्रियाकलापों की अभिव्यक्ति क्षमता" के रूप में परिभाषित किया गया है।

मानव व्यवहार का महत्वपूर्ण कार्य है व्यक्ति का संज्ञान, भावना एवं सामाजिक योग्यताओं को बढ़ाना या उसमें परिवर्तन लाना। जीवन के प्रवेश से लेकर जीवन विस्तार तक जिसमें शैशवावस्था, बाल्यावस्था, किशोरावस्था के साथ प्रौढ़-अवस्था भी निहित है। सामान्यत: शरीर के अंतर्गत बदलाव बाल्यावस्था से वृद्धावस्था तक रहते हैं। इसलिए यह कहना मुश्किल है कि किस स्थिति या अवस्था में मानव व्यवहार का आगमन होता है?

मानव विकास या विकासात्मक मनोविज्ञान ऐसा क्षेत्र है जिसके अंतर्गत मानवीय जीवन विस्तार (Life Expansion) से अंत तक मानवीय व्यवहारों में आने वाले बदलावों को विश्लेषित व वर्णन करना शामिल है।

मानव व्यवहार की प्रक्रिया (process of human behavior)

मानव व्यवहार को अब तक अलग-अलग विचारकों ने अलग-अलग ज्ञानशाखाओं मेंविश्लेषित किया है। वर्तमान में मानव व्यवहारों को वैज्ञानिक दृष्टिकोण से जानने की कोशिश मनोविज्ञान ने की है इसलिए हम मानव व्यवहारों को मनोविज्ञान के परिदृश्य में जानने की कोशिश करेंगे।

मनोविज्ञान मानव के मानसिक अध्ययन से सम्बन्ध रखता है और यह मान्यता है कि मानव के व्यवहार लगभग मानसिक स्तर पर होते है इसलिए मानव व्यवहार प्रकटीकरण के पूर्व मस्तिष्क में व्यवहार का ढांचा बना लेता है। जिसमें यह निहित होता है कि किसके साथ कैसा व्यवहार करना है? मनोविज्ञान में एक दौर चला जिसमें मानव व्यवहार को अलग सोच के अंतर्गत देखा जाने लगा। जिसे व्यवहारवाद के नाम से जाना जाने लगा इसमें अग्रणी विद्वान पावलाव, स्किनर आदि थे। इन्होंने कुछ तथ्यों एवं तर्कों के आधार पर मानवीय व्यवहार को समझाने की कोशिश की है।

मानव जीवन से मृत्यु तक व्यवहार करता है और हर बार उसका कोई-न-कोई उद्देश्य जरूर होता है। उदाहरण के लिए अलग-अलग धर्मों में मोक्ष को प्राप्त करना मानव जाति का मूल उद्देश्य माना गया है लेकिन यह 'अंतहीन' उद्देश्य है। किन्तु व्यक्ति रोज एक नए उद्देश्य के साथ व्यवहार करता रहता है। उक्त आकृति में मनुष्य द्वारा किए जाने वाले व्यवहारों को समझाने की कोशिश की है। आकृति में उद्दीपक, अनुक्रिया एवं पुनर्बलन इन तीन स्तरों से गुजर कर मानव व्यवहार की प्रक्रिया पूरी होती है, को दर्शाया गया है। उक्त प्रक्रिया को संक्षिप्त में जानने की कोशिश करेंगे।

उद्दीपन (Stimulus) – उद्दीपन से तात्पर्य एक प्रक्रिया से है जिसमें एक उद्दीपक होता है। उद्दीपक एक वस्तु, घटना, क्रिया, भौतिक एवं अभौतिक आदि हो सकता है।

अनुक्रिया (Response) – अनुक्रिया से तात्पर्य किसी भी उद्दीपक के प्रति हरकत होना अनुक्रिया माना जाएगा ।उक्त में से किसी भी उद्दीपन से उद्दीपित होना ही अनुक्रिया कहलाएगा ।

पुनर्बलन (Reinforcement) - उद्दीपक के प्रति अनुक्रिया के बाद अगर कोई व्यक्ति कुछ बल लगा रहा है और वह क्रिया पूर्ण कर रहा है तो वह पुनर्बलन कहलाएगा ।

उक्त प्रक्रिया को हम एक उदाहरण से समझ सकते हैं: फोन की घंटी बजी (उद्दीपन), व्यक्ति का आकर्षण के साथ फोन को देखना (अनुक्रिया), फोन रिसीव कर बातचीत करना (पुनर्बलन)। मनोविज्ञान में मानव व्यवहार को इसी रूप में दर्शाया गया है। इस प्रकार से हम देख सकते हैं कि एक व्यक्ति का व्यवहार किस तरह से होता है।

2.3 मानव की आवश्यकताएं

जीवन से मृत्यु तक मनुष्यअपनी आवश्यकताओं को पूरा करने मेंजुटा रहता है, इसमें उसे कितनी सफलता प्राप्त हुई इसका मूल्यांकन तो उस समाज के मानको के आधार पर किया जाता है। आवश्यकताओं की पूर्तिसंबंधीजो भी व्यवहार व्यक्ति करता है वह व्यवहार उसे समाज में आगे की ओर बढ़ने के लिए प्रेरित करता है। जैसा कि माना जाता है भूखे व्यक्तियों से अनुशासन की मांग जायज नहीं होगी, क्योंकि जिसकी शारीरिक आवश्यकताओं कीशर्ते नहीं हो पा रही हो उससे अच्छे व्यवहार की कल्पना नहीं की जा सकती। भूख, प्यास, मैथुन, नींद यह सब मनुष्य की बुनियादी आवश्यकताएं मानी गयी है। इन आवश्यकताओं की पूर्ति के बाद ही कोई व्यक्ति सोच पायेगा। अब्राहम मस्लो (Abraham Maslow) ने मानवीय आवश्यकताओं को पदानुक्रम में रखकर मानवीय आवश्यकताओं को क्रमबद्ध करने की कोशिश की है:

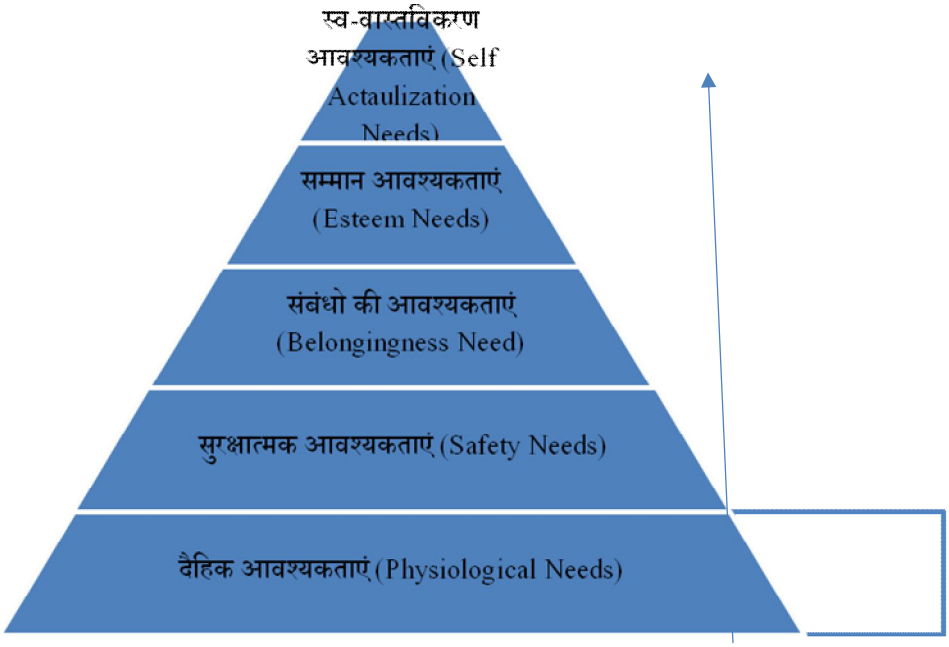

दैहिक आवश्यकताएं (Physiological Needs):- इन्हें भौतिक आवश्यकताओं के रूप में भी देखा जाता है यह आवश्यकताएं मानवीय जीवन के अस्तित्व के लिए महत्वपूर्ण है। जैसे- भूख, प्यास, मैथुन, नींद, हवा आदि।

सुरक्षात्मक आवश्यकताएं (Safety Needs):- दैहिक आवश्यकताओं की पूर्ति के बाद ही मनुष्य अपनी और अपने परिवार की सुरक्षा के बारे में सोचेगा जैसे कि मनुष्य भरपेट खाने के बाद सोने के लिए सुरक्षित जगह चाहता है।

संबंधों की आवश्यकताएं (Belongingness Need) :- संबंधों की आवश्यकता से तात्पर्य है दूसरों के साथ संबंध स्थापना याउनसे स्नेह, प्रेम प्राप्त करना।

सम्मान आवश्यकताएं (Esteem Needs) :- प्रत्येक व्यक्ति जीवन में मान-सम्मान, प्रतिष्ठा प्राप्त करना चाहता है। इस क्रम में व्यक्ति के समाज में आवश्यक संबंध बन जाते है तो वह अपने आप को सम्मानित किए जाने प्रशंसित किए जाने, पहचाने जाने, तथा लोगों द्वारा स्वीकारे जाने की आवश्यकता को महसूस करेगा और उसकी पूर्ति के लिए वह कार्यरत होगा।

स्व-वास्तविकरण आवश्यकताएं (Self-Actualization Needs):- इस क्रम में व्यक्ति अपने आपको पहचान लेता है, अपने दायित्वों एवं योग्यताओं के प्रति समझ विकसित हो जाती है।

चित्र में हम देख सकते हैं कि मानवीय आवश्यकताओं का क्रम नीचे से ऊपर की ओर जाता है। पहली दो आवश्यकताएं, दैहिक आवश्यकताएं (Physiological Needs), सुरक्षात्मक आवश्यकताएं (Safety Needs) बुनियादी आवश्यकताएं है इसलिए मास्लो इसे निम्न क्रम आवश्यकता के रूप में परिभाषित करते हैं और बाकी की तीन आवश्यकताएं; संबंधों की आवश्यकताएं (Belongingness Need), सम्मान आवश्यकताएं (Esteem Needs), स्व-वास्तविकरण आवश्यकताएं (Self-Actualization Needs) सामाजिकता से जुड़ी हुई है इसलिए उन्हें उच्च क्रम आवश्यकता के रूप में परिभाषित किया जाता है। व्यक्ति हो या अन्य कोई भी प्राणी, इसमें उक्त में से दो आवश्यकताएं बुनियादी होती है और बाकी की तीन आवश्यकताओं के कारणही मनुष्य को मनुष्यत्व, व्यक्तित्व प्राप्त होता है।

समाज कार्य में व्यक्ति और उसकी समस्या को समझने के लिए यह सिद्धांत कारगर है। उदाहरण के तौर पर सामाजिक कार्यकर्ता के पास कोई व्यक्ति अपनी समस्या के निवारण के लिए आ जाता है तो हो सकता है कि उसकी आवश्यकताओं कीपूर्ति वह नहीं कर पा रहा हो, या यह भी हो सकता है कि उसकी आवश्यकताएं बहुत सारी है किन्तु उसमें से किसको पहले प्राप्त करे? प्राथमिक आवश्यकता क्या हो सकती है? इन सवालों के प्रति वह अनजान हो। ऐसे में वैयक्तिक सामाजिक कार्यकर्ता इस पदानुक्रम के आधार पर उस व्यक्ति की आवश्यकताओं की स्थितियों को जांच सकता है और उसकीसमस्या का निवारण करने में उसकी मदद कर सकता है।

2.4 मानव व्यक्तित्व

व्यक्तित्व एक ऐसी अवधारणा है जिसे विभिन्न विद्वानों ने अपने-अपने ढंग से प्रस्तुत किया है इस कारण इसके अनेकानेक दृष्टिकोण उपलब्ध है। व्यक्तित्व शब्द की उत्पत्ति लैटिनभाषा के Persona शब्द से हुई है। इस शब्द का अर्थ कृत्रिम या मिथ्या आभास है। व्यक्तित्व की समझ के लिए दो दृष्टिकोण उपलब्ध है, पहला सतही दृष्टिकोण है जिसमें यह माना गया है कि व्यक्ति जैसे लगता है वैसा ही उसका व्यक्तित्व है। व्यक्तित्व की व्याख्या के लिए जो दूसरा दृष्टिकोण उपलब्ध है उनके अनुसार, विकास की किसी भी अवस्था में व्यक्ति का समग्र मानसिक संगठन ही उसका व्यक्तित्व होता है। इसमें व्यक्ति के चरित्र के सभी आयाम, बुद्धि, स्वभाव, कौशल, नैतिकता एवं अभिवृत्तियां आदि जो कि विकासात्मक प्रक्रिया के कारण प्रदर्शित होती है, सब सम्मिलित है। इन दृष्टिकोणों के बावजूद व्यक्तित्व को आज तक ठीक-ठाक परिभाषित नहीं किया है या जो दृष्टिकोण उपलब्ध है उनमें कई खामियां है फिर भी मनोविज्ञान में इस पर लगातार काम चल रहा है। इसमें से कुछ विद्वानों में मानव व्यक्तित्व के विकास को अवस्थाओं में बांटकर समझने की कोशिश की है जिसमें सिग्मंड फ्रायड, एरिक एरिक्सन, कार्लयुंग आदिनाम प्रमुखता से आते है। पहले हम यहाँ एकत्रित रूप से सामान्यत: किसी भी व्यक्ति के व्यक्तित्व विकास को समझने के लिए उसके जीवन क्रम में व्यक्तित्व के विकास को समझने की कोशिश करेंगे।

जन्मपूर्व अवस्था से लेकर वृद्धावस्था तक मानव व्यक्तित्व का विकास एवं परिवर्तन चलता रहता है जन्मपूर्व अवस्था में होनेवाली घटनाओं का परिणाम जन्म के उपरांत उस बच्चे के व्यक्तित्व पर पड़ता है। २८० दिनों तक चलनेवाली इस प्रक्रिया में विभिन्न अवस्थाओं सेगुजरकर अंडाणु भ्रूण की अवस्था प्राप्तकरते हैं। ऐसे में उस भ्रूण पर उसकी माता के स्वास्थ्य का परिणाम होता है और साथ ही कई प्रकार की शारीरिक और मानसिक विकृतियों का शिकार बच्चा बन सकता हैं। गर्भकालीन प्रतिकूल परिस्थितियों का भ्रूण पर घातक परिणाम होता है। इस तरह से व्यक्तित्व का विकास गर्भकाल से ही प्रारंभ हो जाता है किन्तुबाह्य पर्यावरण में **शैशव अवस्था** से ही व्यक्तित्व का विकास शुरू होता है। शैशव अवस्था बहुत ही कम समय की होती है इसके बावजूद बाह्य वातावरण में समायोजन इसी अवस्था से शुरू होता है या समायोजन करना सीखता है। यदि अनुवांशिकविशेषताओं को विकसित होने का अवसर मिलता है तो बच्चे का समुचित विकास हो जाता है अन्यथा अनेक प्रकार की समस्याएँ पैदा होती है। मिलर ने इस अवस्था के बारे में लिखा है कि शैशव अवस्था मौलिक समायोजन का समय है और इससे व्यक्ति के भविष्य के बारे में उसी प्रकार से झलक मिलती है जिस प्रकार पुस्तक के स्वरूप के बारे में उसकी प्रस्तावना से झलक मिलती है।

बचपन की अवस्था जो जन्म के द्वितीय सप्ताह से दो वर्ष तक मानी जाती है। इस अवस्था में बच्चे को आत्म या स्व का ज्ञान होने लगता है इसलिए इस समय में माता-पिता के व्यवहार का प्रभाव बच्चे के व्यक्तित्व पर देखा जाता है। व्यक्तित्व विकास के दृष्टिकोण से यह महत्वपूर्ण समय (क्रिटिकल पीरियड) होता है क्योंकि इस समय जो नींव पड़ती है उसी पर प्रौढ़ व्यक्तित्व का निर्माण होता है। दो वर्ष के बाद **बाल्यावस्था** का समय आता है जो लगभग १२ साल तक होता है। इस समय में बालक में व्यापक परिवर्तन होते हैं। सामाजिक अंत:क्रिया बढ़ने के कारण बच्चे परिवार से बाहर

द्वितीयक समूह में जाने लगते है ऐसे में माता-पिता के साथ-साथ मित्र समूह आदि का प्रभाव उस पर दिखाई देता है। इसी समय में बच्चे में व्यक्तिवादिता को बढ़ावा मिलता है। यह मेरा है, का बोध उसे होने लगता है ऐसे में उसकी जिज्ञासा, अन्वेषण बढ़ने लगता है। और उसपर रोक लगाने से उसका विपरीत परिणाम उसके व्यक्तित्व पर हो सकता है क्योंकि इसी समय में उसके व्यक्तित्व पर सामाजिक कारकों का प्रभाव भारी मात्रा में देखा जाता है। शांत, वाचाल, गुमसुम् चुपचाप, नेतृत्व आदि गुणों को यहाँ परिलक्षित किया जा सकता है।

पूर्व किशोरअवस्था एवं किशोरावस्था का समय १३ साल से १८ साल तक माना जाता है। इस अवस्था में लड़कों अथवा लड़कियों में लैंगिक गुण विकसित होने लगते है साथ ही उनकी सामाजिक गतिविधियोंके भागीदारी में भी वृद्धि होने लगती हैं। इस अवस्था में सामाजिक क्षेत्र में उन्हें नवीन प्रकार की समायोजन प्रक्रियाओं को सीखना पड़ता है। चपलता, अस्थिरता एवं जिज्ञासा की प्रवृत्ति बढ़ने लगती है ऐसे में वह सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों तरह से विकसित हो सकती हैं। उन्हें नकारात्मक स्थितियों से बचाने का कार्य परिवार, मित्र समूहों द्वारा किया जाना चाहिए अगर ऐसा नहीं हो पाता है तो उनमें विकृतियाँ उत्पन्न हो सकती हैं। किशोरावस्था में व्यक्ति का दृष्टिकोण अवास्तविक होने लगता है। वे अपनी भावनाओं, संवेगों, इच्छाओं को अधिक महत्त्व देते हैं। किशोरावस्था में व्यक्ति गन्दी एवं अच्छी आदतों के प्रति सजग होता जाता है और अपना मूल्यांकन करने लगता हैजिसके आधार पर वह सामाजिक अनुमोदन प्राप्त करने की कोशिश करता है। बाल्यावस्था में विकसित व्यक्तित्व प्रतिमानों का स्थिरीकरण होने लगता है। इसलिए किशोरों की स्वयं अपने प्रति जो धारणा है उसका उसके समायोजन पर अत्यधिक प्रभाव पड़ता है। अगर वह खुद को कमजोर महसूस करता है तोउसके समायोजन में बाधाएं उत्पन्न हो जाएगी।

प्रौढ़ावस्था का समय १८ से ४० तक माना गया है। इस अवस्था में युवा अवस्था भी निहित होती है। किशोरावस्था में विकसित प्रतिमानों का स्थिरीकरण इस अवस्था में होने लगता है। साथ ही कुछ नए शीलगुण भी विकसित होने लगते है। इस अवस्था में व्यक्ति पारिवारिक, सामाजिक प्रत्याशाओं के अनुरूप कार्य करना सीखता है। जिम्मेदारी के अहसास के कारण वह तनावयुक्त हो जाता है। वह स्वतन्त्र रूप से सोचना शुरू करता है जिसके कारण उसमें सर्जनात्मकता को बढ़ावा मिलता है। इसके बाद आने वाली **मध्यावस्था** जो ४० से ६० साल तक होती है इस अवस्था में शारीरिक योग्यताओं का ह्रास होने लगता है जिसके कारण मानसिक कमजोरी का एहसास उसे होने लगता है। जीवन में बढती चिंता के कारण उसमें उदासी बढ़ने लगती है। इस समय में व्यक्तित्व विकास में कमी आने लगती है और व्यक्ति वृद्धावस्था की ओर झुकने लगता है **वृद्धावस्था** का प्रारम्भ ६० साल से शुरू होता है जो उसके मृत्यु तक बनी रहती है। इस अवस्था में ह्रास की गति तीव्र हो जाती है और व्यक्ति विभिन्न दुर्बलताओं का शिकार हो जाता है विस्मरण शक्ति कमजोर पड़ने लगती है, हीनता की भावना बढ़ने लगती है,नयी पीढ़ियों के साथ उनके संबध बिगड़ते जाते है जिसके कारण उनमें एकाकीपन आने लगता है। धीरे-धीरे व्यक्तित्व प्रतिमानों का ह्रास होने लगता है।वृद्धावस्था में किसी नए व्यक्तित्व प्रतिमान का उभार नहीं होता है इसलिए माना जाता है कि व्यक्तित्व विकास किशोरावस्था तक ही पूर्ण होता है आगे की अवस्थाओं में केवल उनको स्थिरता प्राप्त होने लगती है, उनमें बदलाव आने लगते है या कुछ नए शीलगुण जुड़ जाते है। यह प्रक्रिया व्यक्ति के मृत्यु तक चलती रहती है।

व्यक्तित्व की व्याख्या करनेवाले कई सारे सिद्धांत आज उपलब्ध है किन्तु समाज कार्य ने जिस सिद्धांत को बुनियाद बनाया है वह मूल सिद्धांत सिगमंड फ्रायड द्वारा दिया गया है। इसे *मनोविश्लेषणात्मक सिद्धांत* भी कहा जाता है।समाज कार्य में वैयक्तिक सेवाकार्य की प्रणेता मेरी रिचमंड की पुस्तक *'सोशल डायग्नोसिस'* पर इसका काफी असर देखा जाता है। सिग्मंड फ्रायड ने अपने पास आनेवाले विभिन्न रोगियों का अध्ययन कर अपने मनोविश्लेषण मॉडल की खोज की। फ्रायड का कहना था कि अवचेतन प्रक्रिया से मानवीय व्यवहार प्रभावित होते हैं इसकी यथार्थता को जानने

के लिए मनोविश्लेषण विधि को उपयोग में लाया जा सकता है। फ्रायड के अनुसार व्यक्ति का व्यवहार मूल तीन उप अवस्थाओं- इदं (Id), अहम् (Ego) और पराहम्(Super Ego) के संमिश्रण से होता है। इसका ऊर्जा स्त्रोत है लिबीडो (लैंगिक इच्छाएं)। व्यक्ति के व्यवहार के परिणामों को फ्रायड 'जीवन प्रवृत्ति' एवं 'मृत्यु प्रवृत्ति' के रूप में परिभाषित करते हैं। उनके अनुसार व्यक्ति के कुछ कार्य जो उसके हित में है वह जीवन प्रवृत्ति से प्रभावित होते हैं और जो स्वयं को हानि पहुँचाने वाले व्यवहार होते है वह मृत्यु प्रवृत्ति को दर्शाते हैं। फ्रायड का मानना था कि किसी भी व्यक्ति के व्यक्तित्व विकास में शुरुआत के पांच वर्ष महत्वपूर्ण है। फ्रायड ने व्यक्तित्व विकास कीअवधारणा को मनोलैंगिक विकास की अवस्थाओं में बांटकरप्रस्तुत किया है। फ्रायड के अनुसार व्यक्तित्व मनोगत्यात्मक होता है। उन्होंने व्यक्ति के व्यक्तित्व विकास की मनोलैंगिक विकास की अवस्थाओं कोनिम्नवत वर्गीकृत किया है-

१. मुखवर्ती अवस्था (Oral Stage):- जन्म से एक वर्ष तक
२. गुदा अवस्था (Anal Stage) :- द्वितीय वर्ष तक
३. लैंगिक अवस्था (Phalic Stage) :- तीन से छह वर्ष तक
४. अव्यक्त अवस्था (Latent Stage) :- छह वर्ष से किशोरावस्था के प्रारंभ तक
५. जननिक अवस्था (Genitial Stage) :- किशोरावस्था

फ्रायड ने लैंगिकता का व्यापक अर्थों में उपयोग कर उक्त अवस्थाओं के साथ व्यक्ति के व्यक्तित्व विकास की अवधारणा को प्रस्तुत किया है। बच्चा मुँह में अंगूठा डालता है जिससे उसे संतुष्टि का अनुभव होताहै। गुदावस्था में वह गंदगी में खेलना चाहता है रोक लगाने पर प्रतिक्रिया देता है। लैंगिक अवस्था में वह लैंगिक अवयवों को स्पर्श करके आनंद प्राप्त करता है। अव्यक्त अवस्था में उसका ध्यान लैंगिक आनंद से भटककर बाहरी वातवरण पर जाता है जिससे उसकी इन भावनाओं का दमन हो जाता हैऔर अंत की अवस्था में वह भिन्न लिंगियों के प्रति आकर्षित होने लगता है।

फ्रायड का मानना था कि बच्चे को जिस तरह से अनुभव होंगे उसी प्रकार से उसका व्यक्तित्व भी विकसित होगा। फ्रायड की अवधारणा में, व्यक्तित्व संरचना के अंतर्गत तीन घटक पाए जाते हैं, इदं(Id), अहम्(Ego), और पराहम(Super Ego)।

इदं(Id) :- फ्रायड के अनुसार व्यक्तित्व का मूल स्त्रोत इदं ही है। इदं के बाद अहम् और पराहम का विकास होता है। बाह्य एवं आंतरिक कारणों की वजह से तनाव में बढ़ोतरी होती है तो इदं तनाव को यथाशीघ्र कम करके व्यक्ति को संतुलन की दशा में लाने का प्रयास करता है इसलिए इसे इच्छाओं का भंडार भी कहा जाताहै। इदं सदैव से सुखानुभूति के सिद्धांत के आधार पर कार्य करताहै, इसलिए व्यक्ति के व्यक्तित्व में इदं का क्षेत्र सबसे बड़ा होता है।

अहम्(Ego) :- यह वास्तविकता को अधिक महत्व देता है। अहम् ही व्यक्तित्व प्रणाली में नियंत्रक का काम करता है। वह यह निश्चित करता है कि आवश्यकताओं कीपूर्ति कब और कैसे होगी तथा आवश्यकताओं और उससे संबंधित संतुष्टियोंका क्रम निर्धारित करता है। इस प्रकार से वह सांसारिक वास्तविकताओं तथा नैतिक मन की आवश्यकताओं के बीच मध्यस्थता करता है और दोनों के बीच तालमेल बिठाने का कार्य करता है।

पराहम् (Super Ego) :- व्यक्तित्व में सबसे महत्वपूर्ण घटक पराहम् है। इसे नैतिक मन या विवेक बुद्धि भी कहा जाता है। यह सामाजिक मान्यताओं, मूल्यों, आदर्शों तथा प्रचलनों का प्रतिनिधित्व करता है। नैतिक मन आदर्श सिद्धांत का अनुसरण करता है। अंतरात्मा, आत्मनियंत्रण जैसी अवधारणाओं के साथ इसका ज्यादा जुड़ाव होता है।नैतिक मन की तीन प्रकार की भूमिकाएं होती है-

१. इदं के उन कार्यों को प्रतिबंधित करना जो समाज द्वारा वर्जित या अवांछित है

२. अहम् को आवश्यक होने पर वास्तविक लक्ष्यों के स्थान पर नैतिक लक्ष्यों से कार्य चलाने के लिए प्रेरित करना।

३. पूर्णता को प्राप्त करने का प्रयत्न करना।

फ्रायड के अनुसार यह घटक; इदं(Id), अहम्(Ego), और पराहम् (Super Ego) अलग-अलग होते हुए भी इनके सामंजस्य से ही एक सही व्यक्तित्व तय होता है। इसे इस तरह से समझ सकते है। एक गरीब व्यक्ति का सपना है कि एक बड़ा घर बनाए, उसके लिए यह दिवास्वप्न से कम नहीं है (इदं-सुखानुभूतिके लिए इच्छित)। बड़ा घर बनाने के लिए पैसा चाहिए (अहम्-सांसारिक सोच जो वास्तविकता पर आधारित है)। इतना पैसा जुटाना क्षमता से बाहर है इसलिए क्षमता के अनुसार छोटा घर बनाएंगे (नैतिक मन- आदर्श सिद्धांत जो सामाजिक मान्यताओं का प्रतिनिधित्व कर रहा है)। समग्रता में इस सिद्धांत को देखे तो यह व्यक्ति के सभी अंगों को छूता है। व्यक्ति समाज में विभिन्न भूमिकाओं का निर्वहन करता है ऐसे में उसके सामने बहुत सारे द्वंद्व उभरते है ऐसे में उक्त तीन घटक उसके व्यक्तित्व को बनाए रखने और मौजूदा हल ढूँढने में उसकी मदद करते है। अगर इसका संतुलन गड़बड़ हो जाए तो व्यक्ति में विकृतियाँ उत्पन्न होने लगती है जिससे समस्याओं का उद्भव होता है

2.5 व्यक्तित्व के निर्धारक और कारक (Determinants and Factor of Personality)

व्यक्ति का व्यक्तित्व उसकी योग्यता, कार्यक्षमता, बौद्धिकता, सोचने की क्षमता, और अन्य के प्रति प्रतिक्रिया आदि का समग्ररूप होता है। ऐसे में सवाल यह होना चाहिए कि इन सब का निर्धारण कैसे होता है? और वह कौन-से कारक है? जिनके प्रभाव में आकर व्यक्तित्व में बदलाव आता है? मनोविज्ञान में प्रकृति (Nature), पोषण (Nurture), अनुवांशिकता(Heridity), पर्यावरण (Environment), और स्थितिपरकता (Situational) को निर्धारक माना गया है जिसके अंतर्गत विभिन्न कारक है जो व्यक्तित्व पर प्रभाव डालते है। इसके बावजूद शारीरिक, सामाजिक कारक एवं निर्धारक भी व्यक्तित्व निर्धारण में अपनी अहम् भूमिका निभाते हैं। एक संतुलित व्यक्तित्व के लिए आवश्यकताओं की पूर्ति और परिवेश की अनुकूलता अत्यधिक महत्वपूर्ण होती है।

प्रकृति (Nature) एवं अनुवांशिकता (Heridity) :- व्यक्ति का जैविकीय विकास प्राकृतिक रूप से होता है जिसमें यह माना जाता है कि मनुष्य का निर्माण सेल (Cell) एवं अवयवों के संगठित होने से होता है। सेल में महत्वपूर्ण होते है जिन्स (Genes), इन जिन्स से मिलकर बनी गुणसूत्रों की जोड़ियों के सही मिलान से एक अच्छा शरीर व्यक्ति को प्राप्त होता है। यह सारी प्रक्रिया एक समय तक प्राकृतिक मानी जाती थी किन्तु मेंडलीयन सिद्धांत के बाद अनुवांशिकता को आधार बनाया गया जो व्यक्ति को अपने माता-पिता से प्राप्त होता है। यह माना जाने लगा है कि अनुवांशिकता द्वारा ही व्यक्ति में अनेक प्रकार की जन्मजात योग्यताएं तथा गुण आते हैं अनुवांशिकता से प्राप्त विशेषताएं जन्मजात होती है और कुछ विद्वानों के अनुसार यही जन्मजात योग्यताएं व्यक्तित्व विकास की गति तथा दिशा को निर्धारित करती है।

पोषण (Nurture) एवं पर्यावरण (Environment) :- शुरूआती समय में माना गया कि व्यक्ति के व्यक्तित्व निर्धारण में पोषण का महत्व अधिक है। व्यक्ति की जिस परिवेश में परवरिश होती है वैसे ही उसका व्यक्तित्व उभरता है। बाद के समय में पोषण को वृहत अर्थो में लिया जाने लगा जिसमें भौगोलिक, सांस्कृतिक तथा भौतिक (Physical) पर्यावरण को इसमें समाहित किया गया। जन्म के समय असहाय दिखने वाला बच्चा धीरे-धीरे पर्यावरण से समायोजन स्थापित कर लेता है जिससे वह सक्षम बन जाता है। परन्तु उचित वातावरण न मिलने के कारण उसका व्यक्तित्व विकास अवरुद्ध भी हो जाता है। जैसे, माता-पिता के तनाव का परिणाम संतान पर पड़ता है, पारिवारिक मसलों के साथ-साथ, विद्यालय, मित्र-समूह, कार्य की स्थितियां आदि का प्रभाव व्यक्ति के व्यक्तित्व पर पड़ता है। मनोविज्ञान में

व्यवहारवादी विचारधारा से जुड़े विद्वान पर्यावरणीय निर्धारकों पर जोर देते है। उनके अनुसार व्यक्ति को जिस तरह का पर्यावरण उपलब्ध कराया जाए उसी तरह उसका व्यक्तित्व उभरेगा, अच्छे पर्यावरण में अच्छा व्यक्तित्व और बुरे पर्यावरण में बुरा व्यक्तित्व।

स्थितिपरकता (Situational) :- उक्त दोनों अवधारणाएं; अनुवांशिकता एवं पर्यावरण मूल रूप से व्यक्तित्व निर्धारण में महत्वपूर्ण मानी गयी है। कौन कितनी महत्वपूर्ण है यह विवादित है किन्तु इनके समग्र से व्यक्तित्व उभरता है।इसके बावजूद व्यक्ति के व्यक्तित्व पर समकालीन स्थितियों का भी ख़ासा प्रभाव देखा गया है। व्यक्ति का व्यवहार स्थिति अनुरूप होता है। इसका अच्छा उदाहरण है महात्मा गांधी उनके विचारों में हम देखतेहै कि उन्होंने पहले कहा था कि ईश्वर ही सत्य है यह उनकी मान्यता थी किन्तु बाद में उन्होंने कहा कि सत्य ही ईश्वर है। जब पत्रकारों ने यह सवाल उठाया कि ऐसा क्यों? या आप अपनी बात से मुकर रहे हैं तब गांधीजी का जवाब थाकि कोई भी वैश्विक सत्य नहीं होता, पहले जो मैंने कहा था उस वक्त तक मेरी समझ के अनुसार वह मेरा वक्तव्य था और अब जो कह रहा हूँ वह मेरी विकसित समझ से दिया गया वक्तव्य है। इसलिए आप मेरी अंतिम बात को सही माने। इसमें हम देख सकते हैं कि गांधी के उक्त सभी वक्तव्य स्थितिपरक है उन्होंने जिस तरह से अनुभव प्राप्त किया उसी तरह से वह औरो को बता रहे थे लेकिन सामान्य व्यक्तियों में इस तरह की तार्किक क्षमता का विकास नहीं हो पाया हो तो वह द्वंद्व में फंस जाएगा और उसका परिणाम उसके व्यक्तित्व निर्धारण में हो जाएगा। इसलिए एरिक एरिक्सन का कहना है कि व्यक्ति के व्यक्तित्व विकास में जैविक कारकों की अपेक्षा सामजिक कारकों की भूमिका महत्वपूर्ण हैं।

उक्त निर्धारकों एवं कारकों के बावजूद विभिन्न सांस्कृतिक एवं सामाजिक कारक है जो व्यक्ति के व्यक्तित्व निर्माण में अपनी भूमिका निभाते है जिसमेंभाषा, ख़ास अनुभव, संस्थागत ढाँचा आदि प्रमुख है। सांस्कृतिक कारकों के बारे में तो यहाँ तक कहा जाता है कि एक ख़ास तरह की संस्कृति एक ख़ास तरह के व्यक्तित्व को उभारदेती है।

2.6 समायोजन एवं बचाव तंत्र (Adsjustment and Coping Machanism)

किसी परिस्थिति में सामंजस्य बनाए रखने के लिए उचित हो, ऐसा व्यवहार करना समायोजन कहलाता है। समायोजन की समस्या अनेक कारणों से पैदा होती है। इन समस्याओं का समाधान प्राप्त करना ही समायोजन कहलाता है। एक स्वस्थ जीवन के लिए यह बहुत ही आवश्यक होता है।अगर कोई व्यक्ति संयोजन स्थापित करनेमें अक्षम पाया जाता है तो वह असमायोजित हो जाता है। सामंजस्य स्थापित न होने की दशा में व्यक्ति तनाव, कुंठा, चिंता आदि से ग्रस्त होकर असमयोजित होने लगता है। इससे न केवल समाज में उसकी प्रभाविता घटेगी, बल्कि उसका निजी जीवन भी अस्त-व्यस्त हो जाएगा। इसलिए जीवन को खुशहाल बनाने के लिए समायोजित व्यवहार बहुत ही आवश्यक है। एक व्यक्ति विभिन्न प्रकार से समायोजन कर सकता है जैसे-

१. **रचनात्मक समायोजन**:- लक्ष्य प्राप्ति के प्रयत्नों में वृद्धि करना, समस्या पर विभिन्न दृष्टिकोणों से विचार करना, अन्य लोगों से सलाह लेना तथा समाधान का प्रयास करना आदि।
२. **प्रतिस्थापित समायोजन** :- जिस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए व्यक्ति प्रयत्नरत हो वह लक्ष्य प्राप्त नहीं हो रहा हो तो संबधित लक्ष्य का प्रतिस्थापन कर, उसके बदले विकल्प का चयन कर, खुद को समायोजित करता है।
३. **मानसिकतंत्र**:- कठिनाइयों से बचने के लिए इच्छा का दमन, क्षतिपूर्ति, उदात्तीकरण आदि का उपयोग कर व्यक्ति समायोजन स्थापित कर लेता है।
४. **प्रत्यक्ष बचाव** :- लक्ष्य प्राप्त न होने पर क्रोधित होकर आक्रमण कर देना, उदासीन हो जाना या प्रतिगमन व्यवहार करना आदि।

तनाव, कुंठा, निराशा आदि के चलते या इनसे बचने के लिए कुछ बचाव के तरीके व्यक्ति अपनाता है जो समायोजन में उसको मदद करते है। फ्रायड की अवधारणा में इसे बचाव तंत्र (Coping Mechanism)के रूप में परिभाषित किया जाता है। व्यक्ति रोजमर्रा के जीवन में आनेवाली समस्याएं, आवश्यकताओं की पूर्ति न होने के कारण या आत्मसंतुष्टि प्राप्त न होने की दशा मेंऐसे बचाव तंत्रों का उपयोग करता है। यहाँ हम उसमें से कुछ तंत्रों का उल्लेख करेंगे जो निम्नवत है-

१. **दमन** :- दमन से तात्पर्य है ऐसा कोई विचार, इच्छा, आवश्यकता, अनुभव को चेतना में से निकाल देना जो दुखदया कष्टकर है। साथ ही इससे बचने के लिए अपना ध्यान अन्य पर केन्द्रित करता है।

२. **उदात्तीकरण**:- एक लक्ष्य प्राप्त करने में असफल हो जाने के बाद उसी तरह के किसी दूसरे लक्ष्य का चयन कर अपनी इच्छा पूर्ति करने का प्रयास उदात्तीकरण कहलाता है।

३. **क्षतिपूर्ति** :- वांछित लक्ष्य प्राप्ति न होने के कारण व्यक्ति में हीन भावना विकसित होती है उसकी क्षतिपूर्ति के लिए वह किसी अन्य लक्ष्य को प्राप्त कर संतुष्टि करेगा।

४. **तादात्मीकरण**:- इस मानसिक तंत्र के आधार पर व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति या आदर्श की विशेषताओं के अनुरूप अपने अन्दर विशेषताएं विकसित करने का प्रयास करेगा तादात्मीकरण अपनी कमजोरी छिपाने का एक तरह का प्रयास भी माना गया है। कभी-कभी व्यक्ति संभावित कष्ट से बचने के लिए उस व्यक्ति के अनुसार कार्य करने लगता है जो उसे कष्ट देने में सक्षम है

५. **युक्तिकरण**:- जब व्यक्ति अपनी असफलताओं को छुपाने के लिए वास्तविक कारण की जगह अवास्तविक कारणों के आधार पर किसी बात का औचित्य सिद्ध करने लगता है, इस प्रक्रिया को युक्तिकरण कहते हैं।

६. **प्रक्षेपण** :- इस तंत्र के अंतर्गत व्यक्ति अपने असफल परिणामों, कमजोरियों को दूसरों पर आरोपित करता है या उसको माध्यम बनाता है।

७. **बौद्धिकीकरण**:- व्यक्ति भयपूर्ण, दु:खद या कष्टकर परिस्थितियों के प्रति विमुखता या तटस्थता की भावना विकसित करता है ताकि उसका कार्य-व्यवहार समस्या से संबंधित संवेगात्मक दशाओं से प्रभावित न हो सके।

८. **अकृतन(Undoing)** :- जब कोई व्यक्ति गलत काम करता है या उसका आभास होता है तो वह उसका प्रायश्चित करता है जिससे उसे यह लगता है कि मैं वही हूँ जहाँ यह गलत काम करने से पहले था॥

९. **प्रतिक्रिया संरचना** :- व्यक्ति अपनी किसी तीव्र इच्छा को छुपाने के प्रयास में एकदम उसके विपरीत व्यवहार करने लगता है। जैसे कोई व्यक्ति अवांछित कार्यों में लिप्त है वह अचानक समाज सेवा का कार्य शुरू कर देगा॥

१०. **विस्थापन** :- समस्या, तनाव, कुंठा को नियंत्रित या कम करने के लिए इस तंत्र को उपयोग में लाया जाता है। जैसे- ऑफिस में बॉस का गुस्सा चपरासी पर उतारना।

उपर्युक्त तंत्रों के बावजूद और कईबचाव तंत्र एवं सुरक्षा तंत्रों का उपयोग व्यक्ति अपने आप को समाज में समायोजित करने के लिए करता है। किन्तु महत्वपूर्ण बात यह है कि इनमें से कई ऐसे तंत्र है जिनका बार-बार, आवश्यकता से ज्यादा उपयोग व्यक्तित्व में गड़बड़ी पैदा कर सकता है या व्यक्ति के सामाजिक मूल्य को कम कर सकता है। इसलिए यह राय दी जाती है कि व्यक्ति को सदैव वास्तविकता को महत्व देना चाहिए।

2.7सामाजिक भूमिका एवं प्रस्थिति(Social Status and Role)

समाज में सभी व्यक्तियों की एक ख़ास उम्र में ख़ास भूमिका होती है जो जन्म से प्राप्त होती है जिसे **आरोपित भूमिका**(Ascribed Role) भी कहा जाता है। जैसे- माँ, पिता, भाई, बहन, पति-पत्नी आदि इसके बावजूद कुछ व्यावसायिक भूमिकाएं भी व्यक्ति को अदा करनी पड़ती है जिसे **अर्जितभूमिका**(Achived Role) भी कहा जाता है, इसका चुनाव उसे स्वयं करना होताहै, या उसे अपने कुशलता के आधार पर कमाना पड़ता है। जैसे-डॉक्टर, इंजीनियर, नेता, पुलिस आदि। व्यक्तित्व विकास की प्रक्रिया के दौरान अस्थिरता के कारण कुछ व्यक्तियों में व्यावसायिक भूमिकाओं का चयन पूर्ण नहीं हो पाता या देर से होता है। विद्वानों के अनुसार किसी व्यक्ति की भूमिका सामाजिक व्यवहार का संरूप या प्रकार है जो समूह के सदस्यों की मांगों और प्रत्याशाओं के सन्दर्भ में उस स्थिति की दृष्टि से समुचित प्रतीत होता है। बालक एक ख़ास अवस्था में आने तक उसको स्वयं जिन भूमिकाओं को निभाना है उन भूमिकाओं सेपरिचित होता है तथा वह उन भूमिकाओं से भी परिचित हो जाता हैजो दूसरे लोगों द्वारा निभायी जा रही है। दूसरे शब्दों में कहे तो व्यक्तित्व विकास की प्रक्रिया में बच्चा अन्यान्य भूमिकाओं से परिचित हो जाता है कहने का तात्पर्य यह है कि व्यक्ति अपनी भूमिकाओं के अधिकारों के प्रति जितना सजग होता है उतना ही अन्य लोगों के कर्तव्यों के प्रति जानकारी भी रखता है। उदाहरण के लिए एक विद्यार्थी से यह अपेक्षा की जाती है कि वह पढ़े-लिखे इसके बाद ही वह खेलने जाए। अगर वह केवल खेलता रहता है तो शिक्षक या परिवार के लोग उसे उसकी भूमिकाओं का बोध कराने की कोशिश करते है साथ ही वह अपनी भूमिका भी निभा रहे होते हैं। समाज में इसी तरह की संरचना पर आधारित भूमिकाओं का वहन व्यक्ति करता है भूमिका प्रत्याशित व्यवहार करने में व्यक्ति अक्षम पाया जाता है तो उसकी भूमिका खतरे में आ जाती है। व्यक्ति को एक समय में एक से अधिक भूमिकाओं कानिर्वहन करने में तकलीफ हो सकती है या अकार्यक्षम होने के कारण वह उसे पूरा नहीं कर पा रहा हो, इसे **भूमिका संघर्ष**(Role Conflict) भी कहा जाता है। कभी-कभी एक भूमिका निभाते समय बहुत ज्यादा कष्टदायी स्थितियां उत्पन्न होती हैउसे **भूमिका भार** (Role Strain) कहते हैं। जैसे- एक शिक्षक किसी ख़ास विषय का विशेषज्ञ है और उसे उस विषय से अलग दूसरे विषय पढ़ाने के लिए संचालक मंडल मजबूर कर रहा है ऐसे में बच्चों को विषय का सही ज्ञान देना और संचालकों की मर्जी संभालना बड़ा ही पीडादायी होता है जिससे तनाव की स्थितियां भी उत्पन्न होती है।

सामाजिक प्रस्थिति और सामाजिक भूमिका ऊपरी तौर पर एक जैसी प्रतीत होती है इसके बावजूद इसमें अंतर है। प्रस्थिति एक समाज में ख़ास समूह के सदस्यों द्वारा मिलने वाला सम्मान या प्रतिष्ठा की तरह होता है। व्यक्ति इसे प्राप्त करना चाहता है या अधिकार में लेना चाहता है। इसे प्राप्त करने के लिए व्यक्ति को उस समाज या समूह की आवश्यकताओं को पूरा करना पड़ता है साथ ही एक ख़ास तरहकी प्रस्थिति के लिए एक ख़ास तरह की जीवन शैली होती है उसे भी अपनाना पड़ता है। साधारण शब्दों में कहें तो प्रस्थिति प्राप्त करने, अधिकृतता (Occupy) से संबंधित होती है और **भूमिका का निर्वहन** (Playing) किया जाता है।प्रस्थिति की कुछ मुख्य विशेषताएं निम्नवत है-

१. समाज के हितों और आवश्यकताओं का परिणामप्रस्थिति है।
२. प्रस्थिति कुछ दशाओं मेंअन्य के ऊपर प्राधिकार है।
३. प्रस्थिति सापेक्ष है।
४. प्रस्थिति कभी-कभी सामाजिक स्तरीकरण को दर्शाती है।
५. प्रस्थिति को भूमिका से अलग नहीं किया जा सकता।

इस आधार पर देखे तो प्रस्थिति में लिंग, जाति, नस्ल आदि भी महत्वपूर्ण आधार होते हैं। प्रस्थिति में सांस्कृतिक कारक भी अपनी भूमिका बखूबी निभाते है इसमें भी जन्मजात और अधिकृत (Occupy) दोनों तरह की प्रस्थिति होती है। जैसे उच्च जाति में पैदा होने वाला अपने आप ही एक अच्छी सामाजिक स्थिति प्राप्त कर लेता है, उदाहरण के

तौर पर ब्राह्मण।दूसरी ओर निम्नवर्गीय लोगों को प्रस्थिति प्राप्ति के लिए कड़ा संघर्ष करना पड़ता है इसका अच्छा खासा उदाहरण डॉ. अंबेडकर है।

अत: यह कहा जा सकता है कि सामाजिक भूमिका और प्रस्थिति दोनों एक-दूसरे से जुड़े हुए है। उन्हें अलग करके नहीं देखा जा सकता। इसलिए व्यक्ति में इससे संबंधित आनेवाली समस्याओं को देखने का नजरिया एकांगी नहीं बल्कि दोनों को एक साथ मिलाकर देखने वाला होना चाहिए।

2.8 सारांश

दिन-प्रतिदिन जिस तरह से दुनिया जटिल होती जा रही है वैसेवैसे व्यक्ति और व्यक्ति के व्यवहार भी जटिल बनते जा रहे है। समाज कार्य की बुनियाद इसी बात पर टिकी हुई है कि वह इन्हें इन जटिलताओं में भी अपने स्व को बनाए रखने में मदद करे, सहयोग प्रदान करें। इस पूरी इकाई में हमने व्यक्ति को समझने के लिए उपयोगी व्यवहारगत अवधारणाओं के बारे में समझ विकसित करने की कोशिश की जिसमें हमने मानवीय व्यवहार, व्यक्ति एवं उसका व्यक्तित्व, व्यक्तित्व को निर्धारित करने वाले कारको का अध्ययन भी किया तथा व्यक्ति की समायोजन की दशाओं एवं उसके सुरक्षातंत्रों पर भी हमने यहाँ बात की है और अंत में सामाजिक प्रस्थिति एवं भूमिका पर भी प्रकाश डाला है।

वैसे तो व्यक्ति को समझने के लिए इतनी अवधारणाएं काफी नहीं है उसे किसी अवधारणाओं में बाँधनासंभव नहीं है रोजमर्रा के जीवन से प्रभावित होने वाले लोग और उनमें आने वाले नव-नवीन परिवर्तनों को समाज में ही प्रत्यक्ष रूप से अधिक गहराई से देखा जा सकता है किन्तु वैयक्तिक समाजिक कार्यकर्ताओं के लिए व्यक्ति की सामान्य समझ विकसित करने के लिए उक्त अवधारणाएं मदद कर सकती है। इसके उपयोग से सामाजिक कार्यकर्ता सेवार्थी और उसकी समस्या की प्राथमिक जांच-पड़ताल कर सकता है जो उसके लिए बहुत उपयोगी हो सकती है।

2.9 बोध प्रश्न

1. मानव व्यवहार प्रक्रिया को विश्लेषित करें।
2. फ्रायडियन व्यक्तित्व विकास सिद्धांत पर प्रकाश डालिए।
3. व्यक्तित्व पर प्रभाव डालने वाले विभिन्न कारकों की चर्चा करें।
4. मानवीय आवश्यकताओं के पदानुक्रमको सोदाहरण समझाएं।
5. भूमिका और प्रस्थिति पर चर्चा करें।
6. समायोजन पर चर्चा करते हुए व्यक्ति के रक्षा तंत्रोंको विश्लेषित करें।

2.10 सन्दर्भ एवं उपयोगी ग्रन्थ

Mathew Grace. .(1987) *Encyclopedia of Social Work In India* .New Delhi: MInistry of Welfare, Gov. of India.

R. A. And Others Skidmore. .(1994) *Introduction to Social Work* .Iglewood Clifs .

W. A. Frindlender. .(1982) *Introduction to Social Welfare* .New Delhi: Prentice Hall of India .

आर. एन. सिंह. (2010). आधुनिक सामान्य विज्ञान . आगरा : अग्रवाल पब्लिकेशन्स .

इ .(विलियम्स एंड विलियम्स कंपनी) .डेविडसन .एच .*सोशल केस वर्क* . बल्टीमोर .

बी .(1972) .कुप्पुस्वामी.*समाज मनोविज्ञान* . पंचकुला. हरियाणा साहित्य अकादमी :

http://www.yourarticlelibrary.com/personality/personality-meaning-and-determinants-of-personality/24336/15/10/2015.

https://blog.udemy.com/determinants-of-personality/15/10/2015

http://download.nos.org/331courseE/L9%20STATUS%20AND%20ROLE.pdf15/10/2015

इकाई -3 सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य का कार्यक्षेत्र

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य
3.1 प्रस्तावना
3.2 व्यक्ति
3.3 परिवार
    3.3.1 परिवार नियोजन कार्यक्रम
    3.3.2 जनसंख्या नियंत्रण
    3.3.3 बाल कल्याण
3.4 विद्यालय में सामाजिक वैयक्तिक सेवा-कार्य
3.5 अपराध/जेल
    3.5.1 जेल
    3.5.2 बाल अपराध
3.6 चिकित्सा सेवा
3.7 मनोचिकित्सा सेवा
3.8 श्रमिक सेवाएं
3.9 आपदा प्रबंधन
3.10 सारांश
3.11 बोध प्रश्न
3.12 संदर्भ एवं उपयोगीग्रंथ

3.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

१. सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य के कार्यक्षेत्र की पहचान करना सीख सकेंगे।
२. सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य के विभिन्न कार्यक्षेत्रों को समझने में कुशल हो पाएंगे।
३. व्यक्ति और उसकी आवश्यकता पूर्ति के लिए तैयार संरचना कोविश्लेषित कर सकेंगे।
४. विभिन्न कार्यक्षेत्रों में सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य की उपयोगिता को स्पष्ट कर सकेंगे।

3.1 प्रस्तावना

प्रत्येक ज्ञानानुशासन एवं व्यवसाय की बुनियाद इसी पर टिकी होती है कि उसे कैसे ज्यादा से ज्यादा मनुष्यता के लिए उपयोग में लाया जाए। समाजकार्य एक ज्ञानानुशासन एवं व्यवसाय दोनोंके रूप में मनुष्योपयोगी ही रहा है। इसका पूरा इतिहास याद दिलाता है कि यह कितना मानवतावादी है।

सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य इस परिधि से भिन्न नहीं है। सिद्धातों एवं व्यक्ति की समस्याओं को सुलझानेके स्वरूप में ही इस प्रणाली का कार्यक्षेत्र निहित है। बदलते परिवेश में इसके कार्यक्षेत्रों में लगातार बढ़ोतरी होती दिखाई देती है। मानवीय समस्याओं की जटिलता के कारण समाज-व्यवस्था की बदलती संरचना में इसके कार्यक्षेत्र और भी व्यापक बनते जा रहे हैं। जैसा कि सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य प्रणाली के इतिहास में हम देखते हैं, कि इसकी

शुरूआत निर्धनता उन्मूलन संबंधी गतिविधियों से हुईथीं किंतु आज इसका कार्यक्षेत्र इतना व्यापक हो गया है कि चिकित्सालय, मनोरूग्नालय एवं आपदा प्रबंधन जैसेक्षेत्र भी इससे अछूते नहीं रह पाए हैं। समाज को परिभाषित करते हुए कहा जाता है कि ''समाज मानवीय अंत:संबधों का जाल है।'' यह जाल जितना जटिल और व्यापक होगा व्यक्ति की समस्याएँ भी उतनी ही व्यापक और जटिल होगी। इस परिस्थिति में सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य एक बेहतर विकल्प के रूप में उभर रहा है। व्यक्ति के जीवन में जन्म से लेकर मृत्यु तक विभिन्नअवस्थाओं में भिन्न-भिन्न प्रकार की समस्याएँ उत्पन्न होती है। इसे दार्शनिक प्रश्न की तरह लिखा जा सकता है कि व्यक्ति का जीवन क्या है ? व्यक्ति का जीवन समस्याओं की श्रृंखला है जो उसके मरने के बाद हीखत्महोगी। ऐसे में वैयक्तिक समाजकार्य का महत्व और भी बढ़ जाता है।

नवजागरण के पश्चात व्यक्ति और व्यक्तिवादिता केन्द्र में आ जाती है। जागृति के इस समय में व्यक्ति को देखने का नजरिया बदल जाता है। व्यक्ति और समाज के बीच संबंध अधिक जटिल बन जाते है। औद्योगिक क्रांति इसमें और इजाफा कर देती है। उद्योग अपने आस-पास नए समाज को स्थापित करना शुरू कर देते है ऐसे में शहरीकरण का जोर बढ़ता जाता है और शहर अपना विस्तार ग्रहण कर लेते है। गांवके सामुदायिक संबंध खत्महोने की कगार पर पहुँचते हैं और व्यक्ति केन्द्र में आ जाता है। पुरानी सामाजिक संरचनालड़खड़ा जाती है और व्यक्तिवादिता के जोर के आगे नयी संस्थाओं का निर्माण होता है। इनमें नर्सरी, युवागृह, वृद्धाश्रम, महिला आश्रम आदि संस्थाएंनिहितहै, इनकी कमी को अब तक संयुक्तपरिवार पूरा करता था लेकिन इसकी टूटन ने नयी संस्थाओं के उद्गम का रास्ताबना दिया।

सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य शुरूआत में व्यक्ति और परिवार तक ही सीमित था लेकिन नयी तरह की व्यवस्था निर्माण में नयी तरह की संस्थाओं का उभार होता है जिससे व्यक्ति अपनी विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति करता देखा जाता है। सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य का मुख्य अंग या विषय-वस्तु ही व्यक्ति है, इस कारण व्यक्ति से संबंधित सभी संस्थाओं और व्यक्ति की आवश्यकता पूर्ति करने वाले सभी क्षेत्र सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य के कार्यक्षेत्र में समाहित होते देखे जाते हैं।

कार्यक्षेत्र

प्रत्येक व्यवसाय का एक खास कार्यक्षेत्र होता है जिसमें उस व्यवसाय की प्रणालियों का अभ्यास होता है। यहाँ कार्य क्षेत्र से तात्पर्य अभ्यास या संचालन के क्षेत्र से है। सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य व्यक्ति की सहायता उन सभी स्थानों एवं दशाओं में करता है जहाँ पर व्यक्ति वैयक्तिक एवंअंतर-वैयक्तिक समस्याओं से घिर जाता है।

3.2 व्यक्ति

सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य के अभिन्न अंगो में से सबसे महत्वपूर्ण अंग के रूप में व्यक्ति को परिभाषित किया जाता है। सामाजिक रूप से व्यक्ति को सामाजिक प्राणी(Social Being) के रूप में विश्लेषित किया जाता है साथ ही अन्य सामाजिक संस्थाओं के साथ उसके संबंधों के आधार पर उसकीसामाजिकता का निर्धारण किया जाता है। मनोविज्ञान में व्यक्ति को अनुवांशिकी एवं पर्यावरण के उत्पाद के रूप में देखा जाता है इसमें व्यक्ति व्यवहार एवं व्यक्तित्व के आधार पर उसकी मानसिकता का निर्धारण किया जाता है। व्यक्ति की आंतरिक समस्याओं में उसकी सामाजिकता और मानसिकता का अत्यधिक प्रभाव माना जाता है।

सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य के प्रमुख उद्देश्यों में व्यक्ति को ज्यादा महत्व दिया गया है। जैसे कि इसके उद्देश्य है : व्यक्ति को समझना, व्यक्ति के अहम् को मजबूत करना तथा व्यक्ति की आंतरिक समस्याओं को सुलझाना, सामाजिक प्रकार्यात्मकता के अंतर्गत समस्या के उपायों को ढूँढना, सामाजिक प्रकार्यात्मकता के अंतर्गत समस्या का निवारण करना, और व्यक्ति की सामाजिक प्रकार्यात्मकता को सुदृढ़ करने के लिए संसाधनों काविकास करना। इससे

यह बात समझ में आती है कि व्यक्ति ही वैयक्तिक सेवाकार्य का प्रमुख क्षेत्र है, इसके आंतरिक एवं बाह्यसमस्याओं से सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य का घनिष्ठ संबंध है। सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य में व्यक्ति से संबंधित सभी मनो-सामाजिक समस्याओं का अध्ययन किया जाता है। इसमें भी व्यवहारात्मक समस्याएँ एवं व्यक्तित्व की समस्याएँ महत्वपूर्ण हैं।

ग्रेस मैथ्यू(Grace Mathew) ने भारत में 200 वैयक्तिक अध्ययन (Case Study) दस्तावेजों को आधार बनाकर सर्वे किया जिसमें दर्शाया कि भारत में किस तरह की समस्याएँ है इसे हेमा मेहता ने निम्न रूप से वर्गीकृत कर दिया है:-

1. बीमारी (illness) और असमर्थता से संबंधित समस्याएँ;
2. भौतिक संसाधनों की कमी के कारण उत्पन्न समस्याएँ;
3. स्कूल संबंधी समस्याएँ;
4. संस्थानीकरण से संबंधित समस्याएँ;
5. व्यवहार (Behavior) समस्याएँ;
6. वैवाहिक मतभेद संबंधी समस्याएँ;
7. समस्याजन्य परिस्थितियों में उत्तर कार्य-(Follow Up) सेवा की आवश्यकता संबंधी समस्याएँ
8. असमर्थता के कारण अपाहिज लोगों के पुनर्वास से संबंधित आवश्यकता;
9. सामाजिक समस्याओं जैसी समस्याएँ जैसे चोरी, वेश्यावृत्ति, मद्यपान, नशा, और यौन हिंसा आदि समस्या में सेवार्थी की दुर्दशा और कठिनाईयों केगिरफ्त में बने रहने की समस्या;

उक्त वर्गीकरण में दिखने वाली समस्याओं के बावजूद कुछ खास संरचनाओं, परिघटनाओं एवंसंस्थाओं में भी व्यक्ति को समस्याएँ उत्पन्न होती है। जहाँ सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य की काफी आवश्यकता की पहचान की गयी है।

3.3 परिवार

परिवार मानवीय जीवन की बुनियादी इकाई है। समाजशास्त्री इसे प्राथमिक समूह के रूप में परिभाषित करते है। मानवीय जीवन में परिवार का अपना अलग एक महत्व है। जीवन से मृत्यु तक व्यक्ति इसी सामाजिक संस्था का सदस्य होता है। शुरूआत में परिवार का स्वरूप संयुक्त होता था जिसमें बच्चों, वृद्धों एवं असमर्थ व्यक्तियों की देखभाल तथा सहज रूप से समायोजन हो जाता था। किन्तु आधुनिक समय ने व्यक्ति के इस प्राथमिक समूह को अपनी चपेट में ले लिया जिसके कारण इसका भार वहन करने के लिए फिर से नयी अलग-अलग संस्थाओं का निर्माण करना पड़ रहा है, जैसे :- नर्सरी, वृद्धाश्रम आदि। अब कुछ ही परिवार ऐसे होगे जिसमें निर्धारित मूल्योंका वहन किया जाता रहा हो। धीरे-धीरे परिवार नामक संस्था से व्यक्ति की आस्था खत्म होती जा रही है। इसी कारण सदस्यों में पारस्पारिक सामंजस्य की स्थिति में रूकावट आ रही है, जिससे दिन-प्रतिदिन आपसी मतभेद बढ़ते जा रहे है। फ्रायडीयन विचारधारा से संबंध रखने वाले सुधीर कक्कड जैसे विद्धान भारतीय परिवारों की हालत देखकर अपनी किताब *हम भारतीय* में लिखते है ''भारतीय परिवार असांमजस्यता के बावजूद एकत्रित रहने का स्थान है, यहाँ सदस्य एक-दूसरे से बात भी नहीं करते फिर भी एक साथ रहते है।'' इस तरह की अलगाव की स्थितियों को आज के परिवारों में देखा जाता है।

ऐसे में पारिवारिक सदस्यों के बीच सामंजस्य स्थापित कर समायोजन करने का भार सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य पर आता है। सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य ऐसी समस्याओं में सहायताकर सकता है। अपनी विभिन्न तकनीकों,

परामर्श, व्यवहार, परिवर्तन परिस्थितियों में सुधार, शिक्षण, अंतर्दृष्टि का विकास, पुनर्वास, प्रोत्साहन सामान्यीकरण आदि साधनों के माध्यम से पारिवारिक सदस्यों में एकरूपता बनाए रखने में उनकी मदद कर सकता है। इससे परिवार विभाजन, सदस्यों में मतभेद एवं वैवाहिक असमायोजन के साथ-साथ तलाक, घरेलू हिंसा आदिसमस्याओं पररोक भी लग सकती है।

वर्तमान समय में परिवार की परिभाषा में फिर से परिवर्तन आ रहा है। अब तक परिवार या एकल परिवार को पति-पत्नी और बच्चे के रूप में परिभाषित किया जाता था वहीं नई परिभाषा के अनुसार केवल दो व्यक्ति, वह दोनों पुरूष हो सकते है या दोनों स्त्री या एक स्त्री और एक पुरूष हैं, तो वह परिवार माना जाएगा जरूरी नहीं हैं कि इसमें उनके बच्चे हों ही। इन परिवर्तनों को ध्यान में रखे हुए सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य को अपनी कार्य की प्रक्रिया में और परिवार को देखने के नजरिए में बदलाव लाने की आवश्यकता पड़ेगी।

परिवार से सम्बन्धित दो प्रमुख समस्याएँ हमारे सामने आती है: परिवार नियोजन एवं जनसंख्यानियंत्रण। इन दो कार्यक्रमों ने परिवार को सुरक्षितता प्रदान करने में अहम भूमिका निभाथी है। इन कार्यक्रमों में सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य की भी प्रमुख भूमिका रही है।

3.3.1 परिवार नियोजन कार्यक्रम

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद जनसंख्या नियंत्रण के अंतर्गत परिवार नियोजन कार्यक्रम भारत में चलाया गया। परिवार नियोजन का मुख्य उद्देश्य था कि परिवार के सदस्यों की संख्या अपने साधनों के अनुसार सीमित रखी जाए। अशिक्षा के कारण भारतीय परिवारों में आमतौर पर क्षमता से ज्यादा ही सदस्य परिवार में पाए जाते थे जिसके कारण वह परिवार सभी सदस्यों के आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर सकता था। आवश्यकता पूर्ति न होने के कारण गरीबी, भूखमरी, कुपोषण, बेरोजगारी आदि समस्याएँ उत्पन्न होती थी जिसका भार सरकारों को उठाना पड़ता था। अन्वेषण के बाद बढ़ती जनसंख्या के रूप में समस्या की पहचान की गयी जिसके निवारण हेतु सरकारी नीतियों के अंतर्गत परिवार नियोजन कार्यक्रम चलाया गया जो आज भी स्वरूप परिवर्तन के साथ जारी है। विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) ने परिवार नियोजन के अंतर्गत निम्न कार्यों को शामिल किया है:

1) दो संतानों के बीच योग्य अंतराल तथा जन्म-दर पर रोक लगाना।
2) संतान विहीन (childless) परिवारों को चिकित्सकीय सेवा सुविधाएँ प्रदान करना।
3) परिवारों को संतानों की देख भाल संबंधित ज्ञान प्रदान करना।
4) यौन शिक्षा देना।
5) प्रजनन संबंधी दोषी परिवारों कीस्क्रीनिंग करना।
6) जेनेटिक परामर्श प्रदान करना।
7) विवाह पूर्व परीक्षण तथा सलाह प्रदान करना।
8) गर्भावस्था में परीक्षण करवाना।
9) विवाह संबंधी परामर्श।
10) पहली संतान के जन्म के समय संबंधित ज्ञान माताओं को प्रदान करना तथा आवश्यक सुविधाएँ मुहैया करना।
11) अविवाहित माताओं को सुरक्षा एवं सेवाएँ प्रदान करना।
12) घरेलू तथा पोषण संबंधित शिक्षा देना।
13) गोद लेने में सहायता करना।

भारत में इस कार्यक्रम के स्वरूप में काफी कुछ परिवर्तन आया है। इस कार्यक्रम का नाम बदलकर अब इसे परिवार कल्याण के रूप में व्याख्यायित किया जाने लगा है।

3.3.2 जनसंख्या नियंत्रण

किसी भी देश की भौगोलिक सीमाओं में रहनेवाले व्यक्तियों को उनकी संपूर्णता में जनसंख्याके रूप में परिभाषित करते है। देश की जनसंख्याकी असमान बढ़ोतरी का आर्थिक-सामाजिक विकास पर प्रभाव पड़ता है। खास कर विकासशील देशों में जनसंख्या और उपलब्ध संसाधनों के बीच असमानता देखी जाती है। संसाधनों के रूप में प्राकृतिक संसाधन महत्वपूर्ण होते हैं और यहसीमित होते है ऐसे में जनसंख्याऔर तेजी से बढ़ेगी तो दोनों के बीच में अंतर आना स्वाभाविक ही है। इन संभावनाओं को जानते हुए नीतिनिर्माताओं ने जनसंख्यानियंत्रण की बात रखी। यह परिवार से संबंधित होने के कारण जनसंख्यानियंत्रण की प्रक्रिया में परिवारों को केन्द्र बनाया गया जिसमें दम्पतियों को संतानों की संख्या नियंत्रित रखने के लिए उपयोगी विचारों, शिक्षण एवं संसाधनों का प्रचास्प्रसार किया जाने लगा।

इस तरह से जनसंख्या नियंत्रण एवं परिवार नियोजन एक दूसरे से अंतसंबंधित है। परिवार नियोजन होगा तभी जनसंख्या नियंत्रित होगी और जनसंख्यानियंत्रित होगी तभी परिवार सुखी होंगे याउन्नति कर सकेंगे।

सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य ने इस समस्या का भार अपने ऊपर लिया है। सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य का प्रथम दायित्व है कि वह व्यक्ति की मनो-सामाजिक समस्याओं का समाधान करें। परिवारव्यक्ति से संबंधित प्राथमिक समूह है जहाँ व्यक्ति अपने जीवन का ज्यादातर समय गुजारता है अगर परिवार की स्थितियाँ ठीक हैं वहाँ का माहौल, पर्यावरण ठीक है तो व्यक्ति की समस्याओं में कमी आ सकती है। इसलिए सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य उक्त समस्याओं में भी, जैसे –परिवार नियोजन को स्वीकार करने में विभिन्न समाजों एवं सांस्कृतिक परिवेशों में बाधाएँ उत्पन्न होती है, ऐसी बाधाओं को दूर करने का कम करता है। परिवार संबंधितव्यावहारिक ज्ञान सेवार्थियों को देना और उन उपायों जो निश्चित किए गए हैं, के सकारात्मक और नकारात्मक दोनों प्रभावों के बारे में सेवार्थी को परामर्श देना महत्वपूर्ण हैं। ध्यान रहे सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य का सिद्धांतव्यक्ति की श्रेष्ठता में विश्वास रखता है इसलिए आप सलाह दे सकते है लेकिन 'यह करना ही पडेगा' इस तरह का दबाव नहीं बना सकते।

परिवार के साथ कार्य करते समय या परिवार कल्याण के क्षेत्र में हस्तक्षेप करते समय सामाजिक वैयक्तिक कार्यकर्ता ऐच्छिक तरीके का उपयोग करता है। इससे तात्पर्य है कि वह उन दम्पत्तियों के अधिकार क्षेत्र या निर्णय प्रक्रिया में हस्तक्षेप के स्थितियों का विश्लेषण करने के बाद उन्हें स्वयं निर्णय लेने को प्रोत्सहित किया जाता है।

3.3.3 बाल कल्याण

बच्चे/बच्चियाँ देश का भविष्य होते हैं। आगे चलकर देश की कमान इन्हीं के कंधों पर होगी। ऐसे में सशक्त मानसिकता एवं उचित समायोजित व्यवस्था में उनका भरण-पोषण होना जरूरी होता है। मनोविज्ञान में माना जाता है कि व्यक्ति के विकास में उसकी बाल्य-अवस्था महत्वपूर्ण होती है। लगभग 10-12 वर्ष की उम्र तक व्यक्ति का 75% विकास हो जाता है और आम तौर पर बहुत से व्यक्तियों की समस्या का सीधा संबंध उसके बाल-अवस्था के साथ जुड़ जाता है। इसलिए भी यह क्षेत्र सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य के लिए महत्वपूर्ण बन जाता है। एक तरह से बच्चों/बच्चियों पर ध्यान केन्द्रित कर सामाजिक वैयक्तिक कार्य दो तरह के काम; सुधारात्मक और निवारणात्मक एक साथ कर रहा होता है। सुधारात्मक दृष्टिकोण से बच्चों/बच्चियों की तात्कालिक समस्याओं को समझते हुए उनको असमायोजन से बचाया जाता है इसके साथ ही भविष्य में आनेवाली समस्याओं के साथ जूझने की क्षमता भी वह प्राप्तकर रहा होता है। जिससे भविष्य में आनेवाली समस्याओं सेस्वयं निपटने के तरीके वह खुद तय कर सकता है।

बच्चों से संबंधित अस्मायोजन की समस्याएँ ज्यादातर पायी जाती है। परिवारों की दशा और दिशा का बच्चों पर अत्यधिक प्रभाव देखा गया है। बच्चों के साथ आने वाली शारीरिक, मानसिक एवं अन्य प्रकार की समस्याएँ शुरूआत में पारिवारिक क्षेत्र में ही सुलझाने का प्रयास किया जाता था लेकिन अब इन विभिन्न समस्याओं के लिए समाज में विभिन्न संस्थाओं का उभार हुआ है जैसे-शिशु-बाल विद्यालय, बाल-पुस्तकालय, मातृ-शिशु रक्षा केन्द्र, दिवस शिशु पालनगृह, अनाथाश्रम, मूक बधिर विद्यालय, विकलांग आश्रम, बाल चिकित्सालय, बाल परामर्श, बाल अपराधी सुधार गृह, मानसिक रूप से मंद बालकों के लिए विशिष्ट व्यवस्था के विद्यालय आदि।

पर्यावरण के साथ सामंजस्य स्थापना में बच्चों को समस्याएँ आती है। एक तरह की सांवेगिक कठिनाई उनमें पायी जाती है। परिवार में दम्पत्तियों में होने वाली अनबन का बच्चों पर गलत प्रभाव पड़ जाता है। परिवार में बड़ों द्वारा बच्चों के साथ किए जाने वाले व्यवहारों का भी बच्चों की समस्या से संबंध होता है। आधुनिक व्यवस्था में चार-पाँच साल की उम्र के बाद बच्चे परिवार से दूर हो जाते हैं या उनके अच्छेविकास के लिए निर्मित संस्थाओं शिशु गृह विद्यालय से वह संबंधित हो जाते है। युवा अवस्थाके पहले तक बच्चों के व्यक्तित्व विकास में विद्यालय की अहम भूमिका होती है। यही वह जगह होती है जहाँ परिवार के बाहरी दुनिया से संपर्क होता है।

3.4 विद्यालय में सामाजिक वैयक्तिक सेवा-कार्य

प्रचलित शिक्षा प्रणाली को देखकर ऐसा लगता है कि क्यों बच्चे/बच्चियों को वहाँ पर कुछ सिखाया नहीं जाता बल्कि सीखने के लिए मजबूर किया जाता है। पाओलो फ्रेरे के शब्दों में कहें तो शिक्षक विद्यार्थी को खाली घड़ा समझता है और वह घड़े में कुछ भरने का काम कर रहा होता है। इस तरह का व्यवहार अमानवीय है। शिक्षक विद्यार्थियों की विकासशील अवस्था को बिना सोचे समझे उसे स्थिर(constant) करना चाहते हैं जो गलत है। वर्तमान समय में इस व्यवस्था में कुछ परिवर्तन आया है जैसे विद्यालयों को No punishmentzone में डाला गया है वरना दंड के नाम पर बच्चों को बहुत सारी प्रताड़नाओं को झेलना पड़ता था जिससे बच्चों में पलायन की वृत्ति का उभार होता है और इससे वह गलत संगत में पड़कर असमायोजित हो जाते है।

बच्चों का अधिकांश जीवन विद्यालयों में ही गुजरता है इसलिए विद्यालय की संरचना, वातावरण, पाठ्यक्रम, शिक्षकों की प्रवृत्ति आदि का ध्यान रखा जाना चाहिए। विद्यालय क्योंकि पढ़ाने तक सीमित नहीं है बल्कि उनकी रूचि,पढ़ने के तरीके, सीखने के तरीके, क्रियाकलाप एवं अन्य के साथ संबंध भीमहत्वपूर्ण है। इन सभी चीजों को समझते हुए दी गयी शिक्षा ही समेकित शिक्षा होगी वरना हो सकता है वह पढ़ने में तो तेज है लेकिन असामाजिक व्यवहार की गिरफ्त में फंस सकता है। शिक्षाशास्त्रियों के अनुसार विद्यालय के प्रवेश के पहले दिन से ही समस्या का अनुभव होता है। गरीब परिवार से आने वाली संतान अपने परिवेश से 200-250 शब्दों के साथ विद्यालय में प्रवेश पाती है तो एक संभ्रात परिवार की संतान500 से 560 शब्दों के साथ विद्यालय में प्रवेश प्राप्त करती है। ऐसे में सहज ही शिक्षकों का पूरा ध्यान संभ्रात परिवार की संतानअपनी ओर खींच लेती है और गरीब परिवार की संतान उपेक्षित हो जाती हैं। ऐसे में सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य का यह दायित्व बनता है कि वह उन संतानों में क्षमता निर्माण के अंतर्गत समानता बनाएरखे।

आधुनिक समय में विद्यालय जिस तरह से व्यक्ति के जीवन के बाल्यकाल में व्यक्तित्व विकास पर प्रभाव डालने वाले प्रमुख कारक के रूप में उभर कर आया है, ऐसे में यह संस्थागत स्थान बच्चों के विकास में आनेवाली समस्याओं के निवारण एवं उपचार का अच्छा माध्यम बना है। सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य इस क्षेत्र में अपनी प्रणाली के माध्यम से बाल-कल्याण का कार्य बखूबी कर सकता है।

3.5 अपराध/जेल

जन्म से कोई व्यक्ति अपराधी नहीं होता है। सामाजिक पर्यावरण के साथ सामंजस्य न होने के कारण व्यक्ति के व्यवहार में परिवर्तन आ जाता है और उसकी प्रवृत्ति अपराधिक हो जाती है। अपराध से सीधे तात्पर्य है नियम कानून का उल्लंघन। तब सवाल आता है कि व्यक्ति सामाजिक नियमों का उल्लंघन क्यों करता है? इसके कारणों की खोज के बाद पता चला कि व्यक्ति सामान्य रूप से अपने कुसमायोजन, गलत संगत आदि कारणों से अपराधिक व्यवहारों के गिरफ्त में आ जाता है।

विभिन्न देशों में अपराध के लिए संवैधानिक दंड निर्धारितकिया गया है। भारतीय परिदृश्य में हम देखते हैं कि अपराध एवं आपराधिक प्रवृत्तियों पर रोक लगाने के लिए पुलिस, न्यायालय एवं जेल है। इस संरचना का उपयोग अपराधी को दंड दिलाने के लिए किया जाता है। दंड देने के पीछे यह धारणा थी कि दंड के भय से व्यक्ति अपराध करना या उस प्रवृत्ति को छोड़ देगा परंतु इसका परिणाम उल्टा ही हुआ। नियमों और कानूनों के चलते जेल एक ऐसी जगह बन गयी जहाँ दो जून की रोटी नसीब होती थी। इस कारण छुट-पुट अपराध में बढ़ोतरी ही हुई। अपराध पर किए गए अध्ययनों के बाद यह तय हुआ कि दंड के साथ-साथ सुधार को भी अपनाया जाए जिससे वह फिर इन गतिविधियों में न पड़े। इन्हीं सेवाओं को सुधारात्मक सेवाओं के रूप में भी जाना जाने लगा।

सुधार आपराधिक न्यायव्यवस्था का ही एक हिस्सा है जिसमें बार-बार होने वाले आपराधिक व्यवहारों को ढूँढना और असामाजिक व्यवहारों के कारणों को रेखांकित कर समझ बनाते हुए उसकी रोकथाम करना। इस प्रक्रिया का मूल उद्देश्य अपराधियों का पुन: समाज में पुनर्वास करना है। पुलिसऔर न्यायालय की धीमी प्रक्रिया और साथ ही अधिनियमों में दोष के कारण इनकी पुर्नबलन की प्रकिया बहुत ही धीमी और बोझिल(lengthy) हो जाती है। ऐसे में कई सारे मामले देरी के कारण खारिज भी हो जाते हैं या कभी-कभी अपराधी को अपराध से ज्यादा दंड मिल जाता है। ऐसे में सुधारात्मक प्रक्रिया के अंतर्गतसामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य अपराधियों के सुधार की जिम्मेदारी ले लेता है।

3.5.1 जेल

जेल एक सुधारात्मक संस्थान है। इसके क्रम में केंद्रीय एवं स्थानीय जेल निहित है। भारत में अपराधी के अपराध को जाँचने-परखने एवं दंड के लिए भारतीय दंड संहिता(The Indian Penal code, 1880), (The code of Criminal procedure, 1898, Revised in 1973) और The Indian Evidence act, 1872) का उपयोग किया जाता है। विद्वानों का मानना है कि यह बहुत पुराने हैं। जेलों के रखरखाव के मेन्युएल्स भी बहुत आदिम है। 1960 में इसके मेन्युएल्स में परिवर्तन लाया गया है जिसे All India Jail Manual Committee निर्धारित करती है।

जेल के कैदियों के साथ सुधारात्मक प्रतिवेश (correctional setting) की जरूरत होती है जिसे एक वृहत वैश्विक मानव अधिकार के परिप्रेक्ष्य में देखना पडेगा। यू.एन. चार्टर में राज्य नीतियों के निर्देशक तत्व और मूलभूत अधिकारों की बात रखी गयी है। इसे आपराधिक न्याय व्यवस्था की वास्तविकता के साथ जोड़कर देखना पड़ेगा। सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य अपराधियों की जेल में एक बड़ी जनसंख्याको किसी भी प्रकार का शिक्षण, प्रशिक्षण, और कार्यक्रम आयोजन के अंतर्गत उनकी सृजनशीलता को बढ़ावा देकर सहायता कर सकता है।

3.5.2 बाल अपराध

बाल अपराध सुधारात्मक सेवाओं के क्षेत्रों में से एक है जिस परतत्काल ध्यान देना आवश्यक है। भारतीय दंड संहिता के अनुसार बाल अपराधी को उम्र के आधार पर व्याख्यायित किया गया है। 7 वर्ष से 21 वर्ष पहले नियत किया गया था जो फिलहाल 18 वर्ष पर सीमित किया गया है। बाल अपराध बच्चों द्वारा अनौपचारिक तरह से किया गया आपराधिक व्यवहार या असामाजिक कृत्य के रूप में परिभाषित किया जाता है। बाल अपराध के मुख्य कारणों में आमतौर पर परिवार से बच्चों का वंचित होना, तीव्र समाज-आर्थिक परिवर्तनों के दबाव में व्यक्ति और परिवारों का

शहरों की ओर पलायन, शहरों के अगल-बगल बसने वाली मलिन बस्तियों के उभार के साथ बच्चे अधिकतर इस मामले में भेद्दतापूर्ण (Vulnerable) बनते जा रहे हैं। बाल अपराधियों की तत्काल अमीर (Easy Money) बनने की लालसा, साहसिकता एवं मौज, और प्रेम की उत्तेजना आदि रास्ते इन्हें अपराध तक पहुँचाते हैं। वंचना की स्थिति बाल्यावस्था में सामाजिक प्रतिरोध को बढ़ावा देती है जिसके कारण मनोवैज्ञानिक एवं मानसिक दबाव पैदा होता है इसका सीधा संबंध अपराध सेहै।

भारत में 1974 में बाल नीति को सरकार ने अपनाया है और उसी आधार पर बच्चों की सहायता के लिए सरकारी व्यवस्था काम भी कर रही है। बाल अपराधियों के सुधार हेतु बालन्यायालयों की स्थापना एवं सुधारगृह जैसी संरचनाओं कोखड़ा किया गया है। बाल न्यायालयों को अपने निर्णय देने में बड़े विवेकाधिकार प्राप्त होते हैं।न्यायालय मुकदमों को रद्द कर सकता है, बालक तथा उसके माता-पिता को चेतावनी दे सकता है या उन पर जुर्माना लगा सकता है। बालक को किसी सुधार कार्य करने वाली संस्था की देखरेख में रहने का आदेश दे सकता है या बालसुधार संस्थाओं में रखे जाने का निर्णय दे सकता है।

बाल अपराधी तीव्र गति से आने-वाले परिवर्तनों के दबाव में जीवन यापन कर रहे परिवारों एवं इन सामाजिक परिस्थितियों के शिकार हो जाते हैं। बाल अवस्था में अपरिपक्वता, कानून का अज्ञान होने के कारण उत्तेजित व्यवहार आकस्मिक रूप से अपराध में बदल जाते हैं। ऐसे में दंड उचित नहीं होगा लेकिन उनके चारित्रिक पुनर्गठन के लिए सुधारों की आवश्यकता जरूरी है। ऐसे में सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य का यह उत्तरदायित्व है कि बाल अपराधियों को यथोचित, वांछित विकास में सेवा, सहायता प्रदान करें।

3.6 चिकित्सा सेवा

स्वस्थ शरीर ही व्यक्ति की सच्ची संपत्ति होता है। इससे तात्पर्य है कि इस संपत्ति को प्राप्त करने के लिए विशेष देख-भाल की आवश्यकता होती है। अगर शरीर निरोगी नहीं है तो उसके लिए सारी सुविधाए निरर्थक होगी। व्यक्ति का शरीर जब अस्वस्थ होता है तब मनुष्य अस्वस्थता का शिकार होता है जिससे उसके स्वास्थ्य में तब्दीली आ जाती है। स्वास्थ्य केवल शरीर तक सीमित नहीं है बल्कि मानसिकता, सामाजिकता भी उसमें निहित होती है। व्यक्ति की स्वस्थता के लिए उसके आसपास का परिवेश उतना ही जरूरी है जितना की उसकी मानसिकता। भारतीय इतिहास में हम देखते है कि मानवीय स्वास्थ्य को लेकर उस समय में लोग कितने सजग थे। चरक संहिता, सुश्रुत संहिता, आयुर्वेद के रूप में इसके साक्ष्य भी हमें मिलते हैं। दूसरी ओर एक तबका व्यक्ति के बुरे स्वास्थ्य को दैवी प्रकोप, भूतबाधा, पापों का परिणाम,साधु महात्माओं काप्रकोप या शाप का परिणाम मानता गया इसलिए इनके सामने अच्छे स्वास्थय प्राप्ति की भ्रामक संकल्पनाएं पायी जाती है जैसे –झाड फूँक, बलि चढाना , पूजा अर्चना आदि।

आधुनिक युग में, विज्ञान के प्रचार प्रसार के बाद चिकित्सा विज्ञान (Medical Science) का उभार अपनी विभिन्न उपशाखाओं के साथहुआ। इसमें व्यक्ति के बुरे स्वास्थ्य को रोग (Disease) के रूप में परिभाषित किया गया। रोग के उत्पन्न होने के कारकों की खोज लगातार जारी है क्योंकि प्रतिदिन नवीन रोगों एवं महामारियों (Epidemic) का प्रसार हो रहा है। भूमंडलीकरणके दौर में विश्व एक गांव की तरह बन गया है जैसेप्रत्येक चीज का लेन-देन बड़ी तीव्रता से हो रहा है। ऐसे में रोगों का लेन-देन भी तीव्रता से हो रहा है इसलिए एड्स, टी.बी. जैसे संक्रामक रोगियों की संख्या लगातार बढ़ती जा रही है। रोग से तात्पर्य होता है शरीर में कुछ अवांछित लक्षणों की उपस्थिति किंतु यह यहाँ तक सीमित नहीं होता है बल्कि उन प्रक्रियाओं कागतिशील समूह है जो लक्षणों द्वारा शारीरिक रोग को उत्पन्न करता है।

व्यक्ति के शरीर में रोग उत्पन्न करने में विभिन्न कारक सहायक होते हैं। इन कारकों की खोज लगातार जारी है। चिकित्सा विज्ञान DNA, RNA, एवं Stem Cell तक पहुँच गया है। व्यक्ति में रोग उत्पत्ति में सहायक कारकों में से कुछ इस प्रकार से हैं –जैविकीय, पोषण, रासायनिक, भौतिकीय, यांत्रिकीय, पर्यावरणीय, सामाजिक, आर्थिक, मनोवैज्ञानिक, सांस्कृतिक, मानव व्यवहार, और जेनेटिक आदि इन कारकों में कमी या ज्यादा होना रोग निर्माण में सहायक होता है। रोग के कारकों एवं कारणों संबंधी जानकारी के पश्चात ही उनका निदान, उपचार और पुर्नवास किया जाता है। ऐसा नहीं है कि केवल रोग होने के पश्चात ही चिकित्सा शुरू की जाए, इससे बचने एवं संतुलन बनाएं रखने से भी रोग का विरोध हो जाता है। इसे निवारणात्मक सेवा के रूप में देखा जाता है।

समाज कार्य में चिकित्सा प्रतिवेश (Medical setting) के अंतर्गत सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य द्वारा रोगियों की मदद की जाती है। इस प्रक्रिया को चिकित्सीय समाजकार्य के रूप में जाना जाता है। इस प्रक्रिया में चिकित्सीय सामाजिक कार्यकर्ता अस्पतालों में सेवार्थियों को, जो कि ऐसे व्यक्ति होते है जिनकी बीमारी और असमर्थता में विभिन्न प्रकार की बाधाएँ उत्पन्न हो रही हो, इन्हें मनो-सामाजिक सहायता की आवश्यकता होती है, को सहायता प्रदान करता है। चिकित्सीय कार्यकर्ता रोग के वर्गीकरण के आधार पर सेवार्थियों को सेवा प्रदान करता है, जैसे :-

1. आत्यंतिक बीमारी टी.बी., कुष्ठ रोगी,
2. विशेष रूप से सक्षम– दृष्टिहीन, अपाहिज,
3. अविवाहित माताएँ, मनोशारीरिक समस्याएँआदि,
4. भौतिक आवश्यकताओं के मामले–संस्थानीकरण आदि।

इन सभी मामलों में चिकित्सीय कार्यकर्ता मामले की प्रकृति के आधार पर, कम समय से लेकर लंबी अवधि तक सेवाएँ प्रदान करता है।

सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य प्रणाली इन मामलों में सीधे सेवार्थी के साथ जुड़कर सेवा प्रदान करती है। समाज कार्य की शब्दावली में इसे सीधी सेवा (Direct Service) के रूप में परिभाषित किया जाता है। इन सेवाओं में से कुछ निम्नलिखित है :-

1. रोग की प्रवृत्ति का निर्वचन कर उस रोगी एवं उसके परिवार को व्यक्तिगत तौर पर उसका निहितार्थ समझाना।
2. सेवार्थी की क्षमता की शर्तों पर व्यक्तिगत सामाजिक मूल्यांकन कर उसकी उपचार कार्यक्रमों में सहभागिता तय करना तथा इसके लिए संकटकालीन समय में सेवार्थी को आवश्यक भावनात्मक सहयोग प्रदान करना।
3. सेवार्थी के लाभ हेतु निश्चित उपचार के लिए उसके सामर्थ्य के मानकों की आवश्यकतानुसार जब जरूरी हो तब पर्यावरण परिवर्तन (EnvironmentModification) तैयार करना।
4. पैसा, दवाईयाँ, कपड़े, अभाव पूर्ति आदि भौतिक माँगों को उपलब्धकरना।
5. रोगी की मनो-सामाजिक समस्या का परिवार के अन्य सदस्यों एवं जिस समाज में वह रह रहा है, में निर्वचन करना, जिससे वह उसे मदद करेंगें, जब भी उसे जरूरत हो उनके लिए नयी जिम्मेदारियों का निर्वहन करेगें और वह जैसा भी है उसी रूप में स्वीकार कर लेंगे।
6. व्यवसाय एवं जॉब प्लेसमेंट के अंतर्गत पुनर्वास हेतु सेवार्थी एवं उसकेपरिवार के साथ मिलकर योजना बनाना।
7. उपचार के दौरान सुस्थिति ग्रहण करने तक रोगी और उसके परिवार के साथ साथ रहना।-

उक्त सीधी सेवाओं के साथसाथ चिकित्सीय सामाजिक कार्यकर्ता रोगी को उपचार पुनर्स्थापना तथा सामाजिक समायोजन, रोगों की रोकथाम एवं स्वास्थ्योन्नति में सहयोग और सेवा प्रदान करता है।

3.7 मनोचिकित्सा सेवा

विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार विश्व की 14 प्रतिशत आबादी आज दबाव एवं स्नायु-मनोचिकित्सीय (Neuropsychiatric) बीमारियों के प्रभाव में हैं इसमें से ज्यादातर लोग निराशा की प्रकृति से संबंधित है और अन्य सामान्य मानसिक बीमारियों, मादक पदार्थों का उपयोग तथा मनोविकृति संबंधी अन्य बीमारियों से ग्रस्त है।

प्राचीन समय में मानसिक बीमारियों से ग्रस्त लोगों को भूत-बाधा, प्रेत-बाधा के रूप में देखा जाता था। इन्हें 'पागलपन'(Insanity) के रूप में भी परिभाषित किया जाता था। प्राचीन से आधुनिक काल तक सभ्यता के प्रत्येक युग में 'पागलपन' की अवधारणाएँ अलग-अलग रही, इसमें उस युग के सामाजिक दर्शन और तर्क पद्धति का प्रभाव देखा जाता है। पागलपन को अमेरिकन सायकियाट्रिक एसोसिएशन द्वारा पहली बार मानसिक बीमारी घोषित किया। यहाँ तक पहुंचने के लिए अनेक विद्वानों का सहयोग रहा है जिसमें फिलीप पिनेल (Philip Pinnel) महत्वपूर्ण है। मानसिक बीमारीयों का दो तरह से वर्गीकरण मनोचिकित्सा में मिलता है। पहला **मनोस्नायु विकृति** (Neurosis) इसमें दबाव, कुंठा, तनाव आदि रोगों को रखा गया है। इस प्रकार के रोग व्यक्ति के जीवन में दैनंदिन रूप से होने वाले क्रियाकलापों में अड़चन निर्माण करते हैं। एक स्तर से ऊपर जाने के बाद ही इसका रूपांतरण बीमारी के रूप में होता हैं। इसलिए माना जाता है कि इससे बचने के लिए व्यक्ति अपने रक्षा तंत्र (Defense Mechanism) और बचाव तंत्र (Coping Mechanism) का उपयोग कर संतुलन बनाता है या जो इसकी समझ रखता हो, के द्वारा इसको हल किया जा सकता है। दूसरे प्रकार में **मनोविकृति**(psychosis) को रखा गया है। इस वर्ग में बायोपोलर पर्सनालिटी, स्किजोफ्रेनिया जैसे मानसिक बीमारियों को रखा गया है। इन बीमारियों से मुक्ति के लिए प्रशिक्षित मनोचिकित्सक द्वारा देख-रेख एवं विशेष देखभाल की आवश्यकता होती है। इन दो वर्गीकरणों के अलावा मानसिक मंदता या हीन बुद्धि और समाज विरोधी व्यक्तित्व के रूप में भी इसे देखा जाता है।

मेरी जाहोडा (Mary Jahoda) ने मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति के पाँच मानदण्ड बनाए हैं :-

1. मानसिक रोगों की अनुपस्थिति
2. व्यवहार की सामान्यता
3. परिवेश में समायोजन
4. व्यक्तित्व की एकता
5. वास्तविकता का ठीक प्रत्यक्षीकरण

उक्त मानदण्डों के आधार पर सामान्य व्यक्तित्व तो समझ में आता है लेकिन असामान्यता एवं मानसिक बीमारी की पहचान करने के लिए अन्य प्रारूपों का उपयोग भी करना पड़ेगा।

1. मनोगत्यात्मक प्रारूप सिग्मंड फ्रायड
2. मानववादी प्रारूप – मास्लो, रोजर्स आदि
3. अस्तित्ववादी प्रारूप – सोरेन किर्के, आरलैंग आदि .डी.
4. अंतर वैयक्तिक प्रारूप– हेरी स्टैक सुलीवन तथा एरिल हर्ने

उक्त चार प्रमुख प्रारूपों के बावजूद मनोविज्ञान के क्षेत्र में विभिन्नस्केलों का निर्माण किया गया है जिसके आधार पर सामान्यता एवं असामान्यता के बीच अंतर किया जाता है। मानसिक बीमास्यिों की पहचान करने में, डायग्नोस्टिक स्टैटिस्टिकल मेन्यूएल फॉर मेंटल डिसॉर्डर-4(DSM-IV) काफी मददगार है।

मानसिक रोग की उत्पत्ति में पर्यावरणीय और सामाजिक कारकों का उतना ही हाथ होता है जितना कि उस व्यक्ति का व्यक्तित्व। प्रेम का अभाव, मनो-आघात, तिरस्कार, अति-लाडप्यार, अवास्तविक आशाएँ , प्रतिद्वंदिता, वंचना, विरोध, प्रतिबन्ध, आशाओं कीभंग होने की स्थिति, दुर्घटना तथा रोग आदि महत्वपूर्ण कारक एवं कारण है जिससे मानवीय व्यवहार प्रभावित होते है। इन व्यवहारों का समायोजन न होने की लंबी अवधि में मानसिक बीमारी का उद्भव होता है। 'मन-शरीर समस्या' के अंतर्गत देखे तो मनोचिकित्सामें रोगों का क्रम शरीर से मन और मन से शरीर की ओर माना जाता है। इसका मतलब है कि शारीरिक व्याधियों से ग्रस्त होने के कारण भी कभी-कभी मानसिक बीमारियाँ उत्पन्न होती है जैसे कि पैर टूटने के बाद चलने में होने वाली तकलीफ या औरों पर निर्भर होना व्यक्तित्व विकार या व्यावहारिक विकार उत्पन्न कर सकता है।

समाजकार्य में मानसिक बीमारी से निबटने एवं सहयोग हेतु मनोचिकित्सीय समाजकार्य के अंतर्गत मनोचिकित्सीय प्रतिवेश(Psychiatric Setting) की व्यवस्था की गयी है। मनोचिकित्सीय समाज कार्य को परिभाषित करते हुए 1931 में Executive committee of the advisory on standards in USAने लिखा है ''मनोचिकित्सीयसमाजकार्य समाजकार्य की ऐसी शाखा है जिसने मनोचिकित्सा से संबंध विकसित किए है। यह मनोचिकित्सा के विशेष ज्ञान को ग्रहण किए एक प्रशिक्षित व्यक्ति द्वारा अभ्यास में लाया जाता है। इसने सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य अभ्यास को अपना लिया है जिसका उपयोग किसी संस्थान में जो समाज कार्य का एकत्रित भाग है,में मानसिक स्वास्थ्य कार्यक्रमों के लिए किया जाता है।'' आज मनोचिकित्सीय समाज कार्य विभिन्न ज्ञानशाखाओं; मनोविज्ञान एवं मनोचिकित्सा, मनोविज्ञान एवं समाजशास्त्र, मानसिक स्वच्छता और जनस्वास्थ्य एवं शिक्षण आदि क्षेत्रों को एकत्रित कर मानवीय संबंधों के सुधार में योगदान दे रहा है।

मानसिक बीमारों के साथ काम करते समय सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य का मुख्य उद्देश्य रोगी को समझते हुए उसमें बदलाव या परिवर्तन लाना है। यहाँ सामाजिक कार्यकर्ता अहम्-सहायक मापन, पर्यावरणीय परिवर्तन और अन्य सहायक उपचारों (थेरेपिज) का उपयोग करता है। अवचेतन विचारों को बिना हाथ लगाए कार्यकर्ता अपनी कुशलता से सेवार्थी के अवचेतन मन को समझते हुए उसकी दशा और दिशा के आधार पर समस्या की सही गत्यात्मकता तक पहुंचता है।

इस उद्देश्य तक पहुँचने के लिए सामाजिक कार्यकर्ता रोगी के साथ संबंध बनाते हुए रोगी की केस हिस्ट्री समझता है या उसे एकत्रित करता है और सेवार्थी की समस्या और खोजे गए समस्या सदृश्य कारकों के बीच नियत अंत:क्रिया करता है। रोगी और उसके परिवार से प्राप्त नियत समस्या-कथन समान होने के बाद प्राप्त जानकारी के आधार पर उसकी मनोगत्यात्मकता का पता लगाता है और मनोचिकित्सक के साथ मिलकर निदान को पूर्णता देता है। रोगी के निश्चित निदान एवं उपचार योजना के उद्देश्य से आयोजित चर्चाओं में मनोचिकित्सक, मनोवैज्ञानिक, मनोचिकित्सीय नर्स एवं अन्य सह-मनोचिकित्सीय (Para-Psychiatric) कर्मियों के साथ सहभागी होता है। जब कभी सेवार्थी की प्रकृति में द्वंद्व आता है तब सामाजिक कार्यकर्ता उसकी मनोवैज्ञानिक उपचार की पूरी जिम्मेदारी लेता है। मनोसामाजिक कार्यकर्ता इस काम में सहायक मनोचिकित्सा, परामर्श तकनीक, पर्यावरण निर्माण आदि को उपयोग में लाता है साथ ही वैयक्तिक सेवाकार्य तकनीकों का उपयोग केवल बातचीत करने के लिए ही नहीं बल्कि विभिन्न मुद्दों को विश्लेषित करने के उद्देश्य से करता है। सामाजिक कार्यकर्ता रोगी को भावनात्मक तनाव से मुक्ति में सहयोग प्रदान करता है। इस प्रक्रिया में सामाजिक कार्यकर्ता रोगी के पारिवारिक सदस्यों को परामर्श के माध्यम से रोगी और उसकी बीमारी से संबंधित दृष्टिकोण समझाता है और उसे हल करने की प्रक्रिया में वे किस तरह बेहतर भागीदारी कर सकते हैं, के बारे में बताता है। रोगी जब हॉस्पिटल से वापस परिवार में आता है तब वहां का वातावरण रोगी के अनुकूल बनाने के लिए,

पारिवारिक सदस्यों के तनाव को कम करने में उनकी मदद करता है जिससे रोगी जल्दी अपने परिवार में अन्य सदस्यों के साथ समायोजित हो सके।

3.8 श्रमिक सेवाएं

औद्योगिक क्रान्ति के बाद समाज में श्रमिकों के रूप में एक नए वर्ग का उभार हुआ।औद्योगीकरण के चलते पूँजीवादी व्यवस्था ने ज्यादा से ज्यादा मुनाफ़ा कमाने की मानसिकता से श्रमिकों के श्रम का अत्यधिक दोहन शुरू किया यह दोहन इस कगार पर पहुँच गया कि श्रमिकों को मशीन के रूप में देखा जाने लगा। उनके मानवीय पक्ष की खूब अवहेलना हुई। 12-14 घंटे तक या कभी-कभी 18 घंटो तक श्रमिकों से काम लिया जाने लगा था। ऐसे में श्रमिकों को सम्मान दिलाने एवं उनकी श्रम की गरिमा को स्थापित करने के उद्देश्य से श्रम कल्याण की शुरुआत होती है। 1875 में ब्रिटिश सरकार द्वारा कारखाना आयोग का गठन किया गया इसकी संस्तुति पर सन1881 में प्रथम कारखाना कानून बना। सन1895 में इस कानून में आवश्यक परिवर्तन किए गए। इन छिट-पुट बदलावों के बावजूद अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर एक प्रमुख बदलाव के रूप में अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की स्थापना हुई।

भारत में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद सन् 1948 में कारखाना अधिनियम पास हुआ जिसमें श्रमिक कल्याण की बात आयी है। इस कानून ने श्रम कल्याण अधिकारी के नियुक्ति की व्यवस्था की। जिन कारखानों में ५०० से अधिक श्रमिक हो वहां श्रम कल्याण अधिकारी को अनिवार्य कर दिया गया। इसी अधिनियम के अंतर्गत श्रमिकों के लिए स्वच्छ पानी व्यवस्था, मनोरंजन की व्यवस्था, प्राथमिक चिकित्सा आदि अनिवार्य कर दिया गया।

अत: इस अधिनियम के अनुसार वे कार्य जो ऐच्छिक है किन्तु उत्पादन की दृष्टि से महत्वपूर्ण है उन सभी को सम्मिलित किया गया। श्रमिकों की सुरक्षा, स्वास्थ्य रक्षा तथा उनकी कार्यक्षमता एवं पारस्पारिक दायित्व की भावना के विकास के लिए प्रोत्साहन इस अधिनिमय से मिला। श्रम कल्याण में श्रमकल्याण अधिकारी एक वैयक्तिक सामाजिक कार्यकर्ता होता है इस प्रणाली का उपयोग उद्योग प्रतिष्ठान और श्रमिकों का संबंध बनाएरखने में होता है। उद्योगों में श्रमिक और मालिक का संबंध महत्वपूर्ण होता है। सामाजिक वैयक्तिक कार्यकर्ता का संबंध अधीक्षकों के साथ काम करने वाले श्रमिकों तथा प्रबंधक वर्ग से होता है। इन्हींसंबंधों के आधार पर श्रमिक कार्य करता है। औद्योगिक नीतियों से श्रमिक कभी-कभी असंतुष्टहोते हैं इस कारण उनका अधीक्षक से व्यवहार अप्रसन्न होता है। श्रमिकों को कभी-कभी व्यक्तिगत परेशानियों, पारिवारिक विवाद भी परेशानियों का कारण बन जाते हैं। कभी-कभी अपनी योग्यता एवं क्षमता में कमी आने के कारण काम के प्रति अरूचि उत्पन्न होती है इन सभी समस्याओं के निराकरण के लिए वैयक्तिक सेवा कार्यकर्ता एक श्रम कल्याण अधिकारी के रूप में अपनी भूमिका निभाता है। श्रमिक प्रबंधकों से अपनी व्यक्तिगत समस्याएँ नहीं कह पाता परिणाम स्वरूप परेशानियों में बढ़ोतरी होती और इसका सीधा प्रभाव श्रमिक की कार्य क्षमता पर होता है। ऐसे में श्रमिक के समायोजन की समस्या को प्रमुख मानकर सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य सहायता प्रदान करता है।

सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्यकर्ता एवं श्रमिक कल्याण अधिकारी के रूप सामाजिक वैयक्तिक कार्य प्रणाली की प्रविधियों का उपयोग निम्नानुसार करता है:

1. समस्या की खोज करना - इस चरण में सामाजिक कार्यकर्ता समस्या:- से संबंधित प्रश्नोंके उत्तर खोजता है। समस्या क्या है? समस्या का स्रोत क्या है? समस्या कैसे बढ़ी तथा कौनकौन कारक सहायक है आदि की - खोजबीन कर समस्या का समाधान किस प्रकार से सम्भव हो सकता है, के बारे में खोज करता है।
2. परामर्श-सामाजिक वैयक्तिक :- कार्यकर्ता श्रमिकों की समस्या को ध्यान से सुनता है तथा स्थिति विश्लेषण बातचीत एवं सुझाव के आधार पर उसे समायोजित होने का अवसर प्रदान करता है। समस्या की प्रकृति के

अनुसार सामाजिक कार्यकर्ता प्रबंधकों तथा अधीक्षकों को भी परामर्श प्रदान करता है। वह श्रमिक और प्रबंधक के बीच एक कड़ी के रूप में काम करता है।

3. निर्देशन करना :- श्रमिकों की समस्याओं को देखते हुए उन्हेंअन्य संस्था के पास निर्देशित किया जाता है।
4. उत्तर कार्य :- समाधान के उपसमस्या को बताने के बाद उन व्यक्तियों की दशाओं में परिवर्तन को जाँचने का काम वैयक्तिक कार्यकर्ता करता है।

उक्त प्रक्रिया के अंतर्गत वैयक्तिक कार्यकर्ता श्रमिकों की समस्याओं में अपना उत्तरदायित्वनिर्वहन करता है।

3.9 आपदा प्रबंधन

आपदा प्रबंधन से संबंधित अध्ययन(1997) में 59 प्रतिशत जमीन भूकंप से प्रभावित दिखाई पड़ती है। 8.5 प्रतिशत जमीन चक्रवात एवं 5 प्रतिशत जमीन बाढ़ प्रभावित दिखाई जा रही है। आपदा प्रबंधन की राष्ट्रीय नीति-2009 के अनुसार इन आंकड़ों में और इजाफ़ा हो गया हैइसके अनुसार 58.6 प्रतिशत भूभाग उच्च भूकंप का है 40 मिलियन हेक्टर जमीन (12 प्रतिशत भूभाग) बाढ़ प्रभावित है, 5700 कि. मी. भूभाग सुनामी के चपेट में है, 68 प्रतिशत कृषि उपयोगी जमीन सूखा सदृश्य है और पर्वतों से भरी जमीन की फिसलन जारी है।

भारत जो विकासशील राष्ट्र माना जाता है, यहाँ पहले ही अनेक सामाजिक समस्याएँ है उसमें प्राकृतिक एवं मानवजन्य आपदाओं से होनेवाली संसाधनों के कमी के कारण देश और पिछड़ रहा है। गुजरात भूकंप में हुई क्षति के बाद सरकारी नियोजनकर्ताओं की सोच में परिवर्तन हुआ और इसी का प्रतिफल है कि आज भारतीय समाज आपदा को दैवी कार्य(Act of God) से अलग होकर देखने लगा है। यह जागरूकता के कारण ही संभव हो पाया है। किन्तु इसे अभी संस्कृति में ढालना बाकी है। भेद्यतापूर्ण(Vulnerable)व्यक्ति, समूह या समाज पर संकट का आ जाना आपदा का निर्माण करता है। जितनी बड़ी जनसंख्या भेद्यतापूर्णहोगी उतनी ही जान माल का नुकसान अधिक होगा। इसे निम्न सूत्र के आधार पर भी समझा जा सकता है-

संकट × भेद्यता = आपदा

संकट की स्थितियां प्राकृतिक या मानवनिर्मित दोनों हो सकती है किन्तुभेद्यतासे तात्पर्य अक्षमता से है जो नकारात्मक योग्यता है। यही तय करती है कि संकट का प्रभाव व्यक्ति, समूह या समाज पर कितना होगा। आपदा प्रबंधन का कार्य तीन स्तरों पर चलता है-

आपदा पूर्व तैयारी

आपदा के दौरान एवं

आपदा पश्चात

भारत में आपदा प्रबंधन अधिनियम 2005 एवं आपदा प्रबंधन नीति ने आपदा प्रबंधन का एक जाल बनाने की कोशिश की है जिसमें विभिन्न संस्थाओं को समाहित करतेहुए आपदा का मुकाबला करना शामिल है। आपदा पूर्व तैयारी में भेद्यतापूर्ण समूहों में जागरूकता एवं चेतावनी (Alert) तथा बचाव के तरीकों का प्रशिक्षण दिया जाता है। आपदा के दौरान और अधिक नुकसान न हो इसलिए आपदा के लिए जवाबी कार्यवाही की जाती है जैसे लोगों को सुरक्षित जगह पहुँचाना, जान माल के नुकसान को रोक लगाना आदि। आपदा के पश्चात पुनर्वास एवं पुनर्स्थापना का कार्य किया जाता है।

भारत में आपदा प्रबंधन की स्थितियों को देखते हुए वैयक्तिक सेवाकार्य प्रणाली इसमें तनाव प्रबंधन एवं परामर्श देने का कार्य उत्तम पद्धति से कर सकती है। किसी व्यक्ति के बने बनाए परिवार का एकाएक टूटना, अपनों से बिछड़ना, शरीर की जख्मी हालत, आघात आदि अनेक प्रकार की आपदा से पीड़ित व्यक्ति गुजर रहे होते हैं ऐसे में वैयक्तिक

सेवा कार्यकर्ता अपने चिकित्सकीय प्रतिवेश एवं मनोचिकित्सीय प्रतिवेश के अनुभवों के आधार पर उनकी बेहतर पुनर्स्थापना करता है।

3.10 सारांश

तीव्र सामाजिक परिवर्तनों के साथ समाज कार्य के क्षेत्रों में भी लगातार बढ़ोतरी होने लगी है, बाल कल्याण, महिलाकल्याण, वृद्धकल्याण, युवा कल्याण यहीं तक सीमित दायरे में कार्यरत वैयक्तिक सेवा कार्य आज व्यक्ति की प्रत्येक मनो-सामाजिक समस्याओं का अध्ययन कर रहा है और अध्ययन के पश्चात उनके पुनर्स्थापना का भी कार्य कर रहा है। समस्याओं के स्वरूपों में जिस तरह से परिवर्तन आए वैसे-वैसे कार्यकर्ताओं के कार्य के तरीकों में भी बदलाव आया है। इस पूरी इकाई में हमने सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य के विभिन्न कार्यक्षेत्रों को समझने की कोशिश की जिसमें एक सामाजिक कार्यकर्ता के रूप में सेवा प्रदान कर सकता हैं।चिकित्सीय प्रतिवेश एवं मनोचिकित्सीय प्रतिवेश के साथ-साथ आपदा प्रबंधन जैसे बहु-व्यवसायिक सेवा प्रतिवेशों में भी वैयक्तिक सेवा कार्य ने अपनी भूमिका निश्चित कर ली है।

3.11 बोध प्रश्न

१. सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य के कार्यक्षेत्र पर संक्षेप में चर्चा करें
२. परिवार में सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य की संभावनाओं पर प्रकाश डालिए।
३. शिक्षा संस्थानों में दी जानेवाली सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य प्रक्रिया का विश्लेषण कीजिए।
४. जेल में सामाजिक वैयक्तिक कार्यकर्ता की भूमिका का मूल्यांकनकीजिए।
५. चिकित्सालय और मनोरुग्णालय में वैयक्तिक सेवा कार्यकर्ताद्वारा दी जाने वाली सेवाओं की पहचानकरें।
६. आपदा प्रबंधन के क्षेत्र में सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य की संभावनाओं कोअभिव्यक्ति कीजिए।

3.12 संदर्भएवं उपयोगी ग्रंथ

Brill, N. I., & Levine, J. (2002). *Working with People: The Helping Process.* Boston : Allyn and Bacon.

Davies, M. (2002). *The Blackwell Companion to Social Work* (2nd ed.). Oxford: Blackwell Publishers.

Feltham, C., & Horton, I. (2000). *Handbook of Counselling and Psychotherapy.* London, New Delhi.: Sage Publications.

Macarov, D. (1995). *Social Welfare: Structure and Practice.* New Delhi: Sage Publications.

Mathew, G. (1987). *Casework in Encyclopedia of Social Work in India.* Delhi: Ministry of Social Welfare, Goverment of India.

Mathew, G. (1991). *An Introduction to Social Casework.* Mumbai: Tata Instisute of Social Sciences .

मिश्र, पी. डी. (2003). *सामाजिकवैयक्तिकसेवाकार्य.*लखनऊ: उत्तरप्रदेशहिंदीसंस्थान.

इकाई: 4 वैयक्तिक सेवा कार्य के घटक

इकाई की रूपरेखा

4.0उद्देश्य
4.1प्रस्तावना
4.2व्यक्ति
4.3समस्या
4.4स्थान
4.5प्रक्रिया
4.6सारांश
4.7बोध प्रश्न
4.8सन्दर्भ एवं उपयोगी ग्रन्थ

4.0उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप में -

- समाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य के घटकों के प्रति समझ को बेहतर बनेगी;
- व्यक्ति के मनोसामाजिक आयामों को विश्लेषित कर सकेंगे;
- मनोसामाजिक समस्याओं को देखने, समझने का दृष्टिकोण प्राप्त कर सकेंगे;
- संस्था की कार्य प्रणाली और उसमें सामाजिक कार्यकर्ता के रूप में किए जाने वाले क्रिया कलापों को समझ सकेंगे;
- व्यक्ति की समस्या को समझते हुए निश्चित प्रक्रिया एवं संस्था में उसके समाधान प्रणाली का ज्ञान विकसित कर सकेंगें।

4.1प्रस्तावना

मानवीय संबंधों में आ रही जटिलता के कारण व्यक्ति की समस्या में भी जटिलतादिखाई देती है। ऐसे में सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य के सामने इन जटिलताओं को सुलझाने का उत्तरदायित्व आताहै। जैसे कि सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य व्यक्ति की आतंरिक एवं बाह्य समस्याओं को सुलझाने मेंसहायता प्रदान करने वाली प्रणाली है तो व्यक्ति एवं उसकी समस्या का अध्ययन बहुत जरूरी है। इस अध्ययन में जटिलता आ रही है तो उसे समझते हुए सुलझाने का कार्य भी इसी प्रणाली को करना होगा। बदलते समय में सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य को भी अपना नवीनीकरण करना होगा।

सामाजिक वैयक्तिक कार्य के विकास की जड़ों में हम देखते हैं कि मेरी रिचमंड *सोशल डायग्नोसिस*(१९१७) के रूप में इसकी नींव रखती हैं। इस किताब में व्यक्ति और उसकी समस्या को समझने का वैज्ञानिक ज्ञान प्राप्त होता है। लेकिन सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य को प्रणाली के रूप में स्थापित करने में यह असमर्थ रही, तब इस कमी को पूरा करने की कोशिश उन्होंने 1922 में अपनी दूसरी किताब *व्हाट इस सोशल केस वर्क* में की, इस किताब में उन्होंने लगभग सफलता हासिल भी की जिसमें उन्होंने सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य को परिभाषित करते हुए लिखा है कि *सामाजिक*

वैयक्तिक सेवा कार्य में वे प्रक्रियाएं आती है जो एक-एक करके व्यक्तियों एवं उनके सामाजिक पर्यावरण के बीच सचेतन रूप से समायोजन स्थापित करती है। बावजूद इसके रिचमंड सामाजिक वैयक्तिक कार्य के मूलभूत घटकों पर स्पष्ट रूप से बात करती हुई नहीं दिखती। इस कमी को पूरा करने के लिए सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य को 1957 तक रूकना पड़ा। 1957 में *सोशल केस वर्क:ए प्रॉब्लम सोल्विंग प्रोसेस* में एच. एच. पर्लमन ने सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य को पूर्णता प्राप्त कराई। पर्लमन सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य को परिभाषित करते हुए लिखते है *यह एक प्रक्रिया है जिसका प्रयोग कुछ मानव कल्याण संस्थाएं करती है ताकि व्यक्तियोंकी सहायता की जाए जिससे वे सामाजिक कार्यात्मकता की समस्याओं का सामना उच्चतर प्रकार से कर सकें*
पर्लमन अपनी परिभाषा में सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य के **चार घटकों** का उल्लेख करते हुए दिखते हैं-

1. व्यक्ति (Person)
2. समस्या (Problem)
3. स्थान (Place)
4. प्रक्रिया (Process)।

4.2 व्यक्ति (Person)

साधारणत: व्यक्ति उसे कहा जाता है जिसकी अपनी निजता (Personal) होती है। व्यक्ति इस निजता को लेकर विभिन्न मनोसामाजिक समस्याओं से जूझता रहता है। स्वस्थ व्यक्ति उसे कहा जाता है जिसकी मनोसामाजिक प्रक्रियाएं, संवेदन, प्रत्यक्षीकरण, बोधगम्यता आदि सुव्यवस्थित हो और वह अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति कर संतोष प्राप्त कर जीवन में उन्नति की ओर अग्रसर होता है। किन्तु व्यक्ति का व्यवहार, व्यक्तित्व विकास पर प्रभाव डालने वाले कारकों (आंतरिक एवं बाह्य दोनों) के कारण कुछ व्यक्ति सुस्थिति को प्राप्त करने से वंचित होते हैं। ऐसा व्यक्ति, जो स्त्री, पुरुष, बालक, किशोर, युवा, वृद्ध कोई भी हो सकता है जिसे सहायता की आवश्यकता महसूस होती है। ऐसे समस्या ग्रस्त व्यक्ति वैयक्तिक सेवाकार्य में 'व्यक्ति' के रूप में परिभाषित होता है। यह व्यक्ति ठीक बाकी सब व्यक्तियों जैसा ही होता है किन्तु अपनी मनोसामाजिक समस्या के कारण विशेष बन जाता है। इस स्थिति में वह व्यक्ति जिन चीजों की खोज शुरू करता है उन्हें प्राप्त करना उस व्यक्ति के लिए अनिवार्य हो जाता है-

- कार्यात्मक संतुलन प्राप्त करना;
- आशा, इच्छाओं के भंग होने की स्थिति को दूर करना;
- समस्या का समाधान प्राप्त करना; और
- संतोष प्राप्ति।

उक्त उद्देश्य सभी व्यक्ति के लिए अनिवार्य रूप से आवश्यक बन जाते है। व्यक्ति जब किसी संस्था में वैयक्तिक कार्यकर्ता द्वारा सहायता प्राप्ति के लिए पहुँच जाता है और उस कार्यकर्ता द्वारा उसे सेवाएं मिलना शुरू हो जाती है तब वह व्यक्ति सेवार्थी के रूप में परिवर्तित हो जाता है। सेवार्थी से तात्पर्य है एक ऐसा व्यक्ति जो मदद चाहता है या जो किसी की सहायता लेना चाहता है जिन सेवाओं को कोई संस्था मुहैया करा सकती हो।व्यक्ति से सेवार्थी में परिवर्तित होने की प्रक्रिया बहुत ही निर्णायक स्थितियों से गुजरकर पूर्ण होती है।
डेविसलैंडी ने इस प्रक्रिया को रेखांकित किया है जो निम्नानुसार है-

1. सहायता चाहने वाले को यह निर्णय करना होता है कि कुछ गलत है;

2. सहायता चाहने वाले को इस संभावना का सामना करना चाहिए कि उसके परिवार, मित्र तथा पड़ोसी उसकी अक्षमता के बारे में जानेंगे;
3. सहायता चाहने वाले को सहायक के समक्ष स्वीकार करना चाहिए कि वह विपत्ति ग्रस्त है, विफल है या अपनी समस्या को हल करने में सक्षम नहीं हैं;
4. सहायता चाहने वाले को स्वयं को निर्भर की भूमिका मेंरखने के लिए पर्याप्त संप्रभुताऔर स्वायत्तता का समर्पण करने का निर्णय करना चाहिए;
5. सहायता चाहने वाले को अपने जानने वाले व्यक्तियों तथा संसाधनों में से सहायता हेतु अपनीखोज को निर्दिष्ट करने का निर्णय करना चाहिए;
6. सहायता चाहने वाले को सहायता प्राप्त करने के उद्देश्य से नौकरी अथवा अन्य उत्तरदायित्वों से अवकाश लेने का निर्णय करना चाहिए;
7. सहायता चाहने वाले को इस बात की अनुभूति करनी चाहिए कि सहायता प्राप्तकरने में दूसरों के साथ संबंधबिगड सकते हैं।

उक्त निर्णयों के बाद ही व्यक्ति सेवार्थी में परिवर्तित होता है। जाहिर है कि इस तरह के निर्णय लेना सामान्य व्यक्ति के बस की बात नहीं हैं। इन निर्णयों को वही व्यक्ति ले सकता है जो सही में समस्या से ग्रसित हो और जिसे मदद की आवश्यकता हो। हो सकता है कि ऐसा व्यक्ति सेवार्थी बनने के बाद समाज में अपना सम्मान खो दे या कलंकित भी हो सकता है, उदाहरण के तौर पर दबाव की स्थितियों से कोई व्यक्ति गुजर रहा हो और वह अपने आपको दबावजन्य स्थितियों से बाहर नहीं निकाल पा रहा हो ऐसे में समाज में उसका व्यवहार तनाव, चिडचिडापन से ग्रसित हो जाएगा, ऐसे में वह व्यक्ति चाहेगा कि अपनी स्थिति को और ख़राब होने से बचाए किन्तु इसके लिए उसे जिस संस्था में सेवा प्राप्त करनी है वह मनोरुग्णालय है। मनोरुग्णालय को भारतीय परिदृश्य में बहुत ही हीन भाव से देखा जाता है उस संस्था की सामाजिक छवि के कारण वह समस्याग्रस्त व्यक्ति समाज में कलंकित भी हो सकता है। इस कोलाहल की अवस्था में वह व्यक्ति जरूर ही उक्त अवस्थाओं से गुजरकर ही निर्णय लेगा। वह निर्णय लेगा कि भले ही आज मैं अपने समाज में कलंकित हो जाऊ किन्तु मेरा भविष्य ठीक करना है तो मुझेउस संस्था से सहायता लेनी ही होगी। सेवार्थी अपनी ओर से इस निर्णय प्रक्रिया में खरा उतरेगा तभी अपनी समस्या से समाधान प्राप्त कर सकेगा क्योंकि सेवार्थी की भूमिका में व्यक्ति को अपनी निजता को स्पष्ट करना होता है, ऐसे में शर्म, हया, अविश्वास आदि अडचनों से उसे बाहर निकलकर समस्या-समाधान में सक्रिय रूप से भागीदारी करनी होगी।

संस्था में मदद के लिए आने वाले व्यक्ति किसी खास समस्या-समाधान के उद्देश्य से आते हैं इन्को कई प्रकारों में वर्गीकृत कर देखा जाता है, इनमें से कुछ निम्नलिखित हैं-

1. यह सेवार्थी अपने लिए कुछ उपयुक्तसहायता माँगते हैं। (ऊपर दिया गया उदाहरण)
2. जो किसी और व्यक्ति या व्यवस्था के लिए सहायता माँगते हैं। (उदा. एक शिक्षक स्कूल से पलायन करने वाले बच्चों के लिए सहायता माँगता है)
3. जो सहायता नहीं माँगते, बल्कि किसी तरह अन्य व्यक्ति के सामाजिक क्रियाकलाप को अवरूद्ध करना या बिगाड़ना चाहते हैं। (उदा: बालक की रक्षा में लापरवाह माता-पिता)

4. जो सहायता का इस्तेमाल अपने खुद के लक्ष्यों या उद्देश्यों को पूरा करने के लिए करना चाहते है या करते हैं। (उदा. एक सेवार्थी जिसे न्यायालय ने अधिक गंभीर प्रतिबंधों से बचने के लिए सेवा प्राप्त करने का आदेश दिया है)
5. जो अनुपयुक्त या अनुचित लक्ष्यों के लिए मदद मांगते हैं।(उदा. वृद्ध माता-पिता को क्षमता होने के बावजूद वृद्धाश्रम सेवा के लिए मजबूर करना)

सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य व्यक्ति के अनूठेपन के साथ उसे स्वीकार करता है। इस व्यक्ति के अनूठेपन को समझने के लिए मुख्यतः उसके व्यक्तित्व, व्यवहार, भूमिका एवं दबाव को विश्लेषित करने की आवश्यकता होती है:

व्यवहार(Behaviour)

व्यक्ति के व्यवहार का सीधा अर्थ है, बाह्य पर्यावरण या किसी भी उद्दीपक (Stimulas) द्वारा उद्दीप्त किए जाने पर प्रत्युत्तर में की गयी प्रतिक्रिया है। व्यक्ति के व्यवहार अनेक सिद्धांतों पर अधारित है यहाँ उनमें से कुछ आधारभूत तत्वों का उल्लेख किया जा रहा है-

1. व्यक्ति का व्यवहार अर्थपूर्ण होता है।
2. व्यक्ति की मनोवैज्ञानिक स्थिति व्यवहार को प्रभावित करती है।
3. विगत अनुभव व्यवहार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।
4. सामाजिक पृष्ठभूमि व्यवहार के ढंग को प्रभावित करती है।
5. वंश परंपरा की विशेषताओं का व्यक्ति के व्यवहारोंपर प्रभाव पड़ता है।
6. व्यवहार चेतन और अचेतन दोनों प्रकार के होते हैं।
7. वर्तमान स्थितियों का प्रभाव व्यवहार पर पड़ता है।
8. भविष्य की आशाओं का भी व्यवहार में महत्वपूर्ण स्थान हैं।
9. संपर्क में आने वाले व्यक्तियों का व्यवहार व्यक्ति के व्यवहार को प्रभावित करता है।
10. कभी-कभी एक निश्चित आवश्यकता और लक्ष्य द्वारा परिचालित व्यवहार नवीन तथ्यों की जानकारी के पश्चात बदलता भी रहता है।

व्यक्तित्व (Personality)

व्यक्तित्व की संरचना तथा कार्यात्मकता की उत्पत्ति वंशानुगत तथा शारीरिक विशेषताओं से होती है तथा जो सदैव भौतिक, मनोवैज्ञानिक व सामाजिक पर्यावरण एवं वैयक्तिक अनुभवों से निरंतर अंतक्रिया करता है। वंशानुगत विशेषताएं व्यक्तित्व की विशेषताओं कोनिर्धारित करती है। ऐसा अनेक परीक्षणों तथा अनुभवों से सिद्ध किया जा चुका है। व्यक्ति की प्रारंभिक अवस्था में वंशानुगत गुण प्रभावकारी होते हैं परन्तु आगे धीरेधीरे पर्यावरण अपना प्रभाव डालता है। पर्यावरण में से प्राथमिक एवं द्वितीय समूह सभी व्यक्ति के व्यक्तित्व पर प्रभाव डालते हैं। बावजूद इसके व्यक्ति का व्यक्तित्व निरंतर परिवर्तित होता रहता है। मनोविज्ञान में माना जाता है कि बाल अवस्था में व्यक्ति में सीखने की क्षमता अधिक होती है इस कारण सबसे ज्यादा विकास इसी अवस्था में होता है। इसके बाद वह धीरे-धीरे एक समाज पुरस्कृत खाँचे में अपने आप को बिठाने की कोशिश करता हैं, वहीं खाँचा उसका व्यक्तित्व कहलाया जाता है। हालांकि मनोविज्ञान में व्यक्तित्व को दो रूपों- आतंरिक एवं बाह्य में विभाजित किया जाता है।आंतरिक व्यक्तित्व अभौतिक स्वरूप का होता है जिसे प्रकट व्यवहार से समझा जा सकता है तथा बाह्य व्यक्तित्व भौतिक स्वरूप का होता है जिसमें व्यक्ति की लंबाई, रंग आदि बाहरी चीजें निहित होती हैं। हमें दोनों प्रकारों को समाहित कर एकत्रित रूप में प्रकटीकरण को व्यक्तित्व को देखना होगा।

प्रस्थिति एवं भूमिका(Status and Role)

समाज में समाजीकरण की प्रक्रिया के साथ व्यक्ति की एक प्रस्थिति तैयार होती है या उस तक पहुँचने के लिए वह जीवन के प्रत्येक अवस्था में एक नयी भूमिका से जुड़ जाता है।बाल्यावस्था में पुत्र या पुत्री, भाई-बहन की भूमिकाओं का वहन पारिवारिक स्थितियों में करता है तथा द्वितीयक समूहों एवं अन्य प्रकार के समूहों में वह मित्र, विद्यार्थी आदि भूमिकाओं का निर्वहन करता हैं युवा अवस्था में करियर के जिम्मेदारियों के साथ भूमिकाओं एवं प्रस्थिति का संबंध जटिल बनता जाता है। प्रौढ़अवस्था में पति-पत्नी, माता-पिता या संस्थागत ढाँचे में अर्थार्जन हेतु प्राप्त किया गया पद आदि इसमें सम्मिलित होते हैं। वृद्ध अवस्था में दादा-दादी, नाना-नानी के बावजूद एक अनुभव संपन्न व्यक्ति और ज्येष्ठता व्यक्ति के साथ जुड़ जाती है। इस तरह प्रत्येक अवस्था में व्यक्ति किसी न किसी पद, प्रस्थिति एवं भूम्किा में बना रहता है और आने वाले समय में अगली अवस्था में वहाँ तक पहुँचने की इच्छा रखता है किन्तु वह कभी-कभी अपनी भूमिका निर्वहन में तकलीफ महसूस करता है जिसके कारणउन भूमिकाओं के कर्तव्य पालन मेंबाधाएं उत्पन्न होती है जिसका सीधा असर उसकी सामाजिक प्रस्थिति पर पड़ता है।

दबाव (Stress)

व्यक्ति सदैव से एक व्यवस्था से जुड़ा रहता है। वह एक सदस्य के रूप में होता हैं या किसी भूमिका के रूप में होता है। बदलती व्यवस्था के साथ समायोजित होने में व्यक्ति को समय लगता है कुछ व्यक्ति जल्दी समायोजन स्थापित कर लेते हैं कुछ देर से और कुछ व्यक्ति स्वयं समायोजन स्थापित करने में असमर्थ होते हैं। उदाहरणार्थ नई अर्थव्यवस्था का प्रभाव बहुत सारे व्यक्तियों पर पड़ा इस व्यवस्था ने व्यक्तियों के जीवन-यापन के साधनों तक पहुँचने में अवरोध खड़े कर दिए, यह एक तरह का व्यवस्था जनित दबाव है। इसमें सभी व्यक्ति अपने आप को समायोजित कर सकें, ऐसा नहीं हो सकता। ऐसा माना जाता है कि विकास के लिए यह जरूरी होता है किन्तु व्यक्ति इन तीव्र परिवर्तनों का प्रत्युत्तर देने में असमर्थ भी होता है जिसका समेकित परिणाम उसकी मनोगतिकी पर पड़ता है, इससे उस व्यक्ति के सारे व्यवहार प्रभावित हो जाते हैं, परिणामस्वरूप वह किसी मनो-सामाजिक समस्या का शिकार बन जाता है।

4.3 समस्या (Problem)

मरियम वेबस्टर डिक्शनरी के अनुसार समस्या से तात्पर्य है *किसी का सामना करने में, सुलझाने में या निपटान में आने वाली मुश्किलें* यह *'किसी का'से तात्पर्य* अवरोध, चिंता आदि का स्त्रोत हो सकता है, समझ में न आनेवाली मुश्किलें हो सकती हैं या ना पसंदगी या प्राप्ति की भावना कुछ भी हो सकती है।

पर्लमन के अनुसार *समस्या कुछ आवश्यकताओं, बाधाओं या आशा, इच्छाओं के भंग होने की स्थितिके एकीकरण या समायोजन आदि के एक या संयुक्त होकर व्यक्तिके जीवन पर या समाधान करने के प्रयत्नों की उपयुक्तता पर चोट करता है या उस पर आक्रमण कर चुका होता है, से उत्पन्न होती है।* विलियम जेम्स एवं अन्य ने मानवीय समस्याओं को मानसिक रूप से मनोविज्ञान में स्पष्ट किया है। इसके अनुसार *जब एक व्यक्ति अपने नियत उद्देश्य तक पूर्व से सीखी हुए आदतों, संप्रेरणाओं तथा नियमों से नहीं पहुँच पाता है तब समस्याकी स्थिति उत्पन्न होती है।* समाजशास्त्रीय रूप से देखें तो समस्या का सीधे संबंधव्यक्ति की उन आवश्यकताओं से है जिसकी आपूर्ति वहव्यक्ति नहीं कर पा रहा हो। इसी के चलते व्यक्ति के जीवन में व्यवधान एवं कष्ट उत्पन्न होते हैं। समस्या किसी तरह का दबाव भी हो सकता है। यह दबाव मानसिक, शारीरिक एवं सामाजिक किसी भी प्रकार का हो सकता है। इस दबाव के कारण व्यक्ति समाज में अपनी भूमिकाओं और भूमिका से संबंधित क्रियाकलाप में अप्रभावकारी सिद्ध होता है। पर्लमन के अनुसार ''सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य की परिधि में उन्हीं समस्याओं को सम्मिलित किया जाता है जोव्यक्ति की सामाजिक कार्यात्मकता को प्रभावित करती है या सामाजिक कार्यात्मकता द्वारा प्रभावित होती है।

इनसाइक्लोपीडिया ऑफ़ सोशल वर्क के खंड एक के अनुसार व्यक्ति के समस्याके कारणों को पांच वर्गों में बांटा गया है-

1. भौतिक संसाधनों की कमी;
2. संबंधोंएवं स्थितियों के बारे में भ्रांतियाँ और उचित जानकारी की कमी;
3. असमर्थता संबंधी स्वास्थ्य समस्याएं याबीमारी;
4. तनावपूर्ण परिस्थियों के परिणामस्वरूप भावनिक कष्ट;
5. व्यक्तित्व की विशेषता या अपूर्णता।

ग्रेस मैथ्यू (Grace Mathew) ने भारत में 200 वैयक्तिक अध्ययन (Case Study) दस्तावेजों को आधार बनाकर सर्वे किया जिसमें उसने दर्शाया कि भारत में किस तरह की समस्याएँ है इसे हेमा मेहता ने निम्न रूप से वर्गीकृत कर दिया है:-

10. बीमारी (Illness)और असमर्थता से संबंधित समस्याएँ।
11. भौतिक संसाधनों की कमी के कारण उत्पन्न समस्याएँ।
12. स्कूल संबंधी समस्याएँ।
13. संस्थानीकरण से संबंधित समस्याएँ
14. व्यवहार समस्याएँ।
15. वैवाहिक मतभेद संबंधी समस्याएँ।
16. समस्याजन्य परिस्थितियों में उत्तर-कार्य (Follow Up) सेवा की आवश्यकता संबंधी समस्याएँ
17. असमर्थता के कारण असहज लोगों के पुनर्वास से संबंधित आवश्कता।
18. सामाजिक समस्याओं जैसी समस्याएँ जैसे चोरी, वेश्यावृत्ति, मद्यपान, नशा, और यौन हिंसा आदि समस्यामें सेवार्थी की दुर्दशा और कठिनाईयों केगिरफ्त में बने रहने की समस्या।

उक्त सभी समस्याओं से एक व्यक्ति जूझता रहता है पर्लमन ने सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य के अंतर्गत व्यक्ति की समस्या को बेहतर समझने के लिए निम्नलिखित सुझाव दिए है जिसका अनुकरण कर वैयक्तिक सेवा कार्यकर्ता सेवार्थी की समस्या के प्रति बेहतर समझ बना सकता है-

1. सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य की परिधि उन्हीं समस्याओं को सम्मिलित किया जाता है जो सामाजिक कार्यात्मकता को प्रभावित करती है या सामाजिक कार्यात्मकता द्वारा प्रभावित होती है।
2. सेवार्थी की समस्या के अनेकानेक रूप तथा गत्यात्मक प्रकृति, समस्या के किसी एक अंग का चुनाव करने के लिए कार्यकर्ता एवं सेवार्थी को मजबूर करती है, समस्या के चुनाव में तीन बातों पर ध्यान देना आवश्यक होता है -
    - सेवार्थी क्या चाहता है या उसकी प्रमुख आवश्यकता क्या है?
    - सेवार्थी का व्यावसायिक निर्णय किस संभावित समाधान की ओर इंगित कर रहा है?
    - संस्था का क्या उद्देश्य है और कौन-सी सेवाएं उपलब्ध हैं?
3. समस्या सदैव श्रृंखलाबद्ध रूपमें प्रतिक्रिया करती है।
4. कोई भी समस्या जिससे व्यक्ति ग्रसित होता है वस्तुगत (बाह्य) तथा विषयगत (आतंरिक) दोनों प्रकार से महत्वपूर्ण होती है।

5. समस्या के बाह्य तथा आतंरिक तत्व न केवल एक साथ घटित होते हैं बल्कि इनमें से कोई भी एक दूसरे का कारण हो सकता है।
6. समस्या जिसके कारण सेवार्थी संस्था में जाता है उसकी प्रकृति कैसी भी हो परन्तु सदैव या अधिकांशत सेवार्थी होने की समस्या से जुडी रहती है।

समस्या समाधान करने के लिए सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्यकर्ता के पास कुछ आवश्यक योग्यताओं का उल्लेख मिलता है जो निम्नवत है-

1. समस्या के तथ्यों का पूर्ण ज्ञान होना
2. समस्या के सभी तत्वों के अंतर्संबंधों का ज्ञान होना
3. तत्वों को एकत्रित करने की योग्यता तथा विकास की गति का ज्ञान
4. परिस्थिति का उचित प्रत्यक्षीकरण
5. पूर्व अनुभवों का उचित उपयोग
6. संप्रेरणाओं कीजटिलता तथा प्रकार का ज्ञान

उक्त सभी क्रियाकलापों के अंतर्गत सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य में व्यक्ति की समस्या का जायजा लिया जाता है। इसके लिए सामाजिक कार्यकर्ता के पास उचित ज्ञान आवश्यक होता है जिसके आधार पर समस्या निर्धारण का कार्य पूर्ण किया जाता है।

4.4 संस्था (Place)

सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य प्रणाली में सेवार्थी को सहायता प्रदान करने के लिए निश्चित स्थान की आवश्यकता होती है। ऐसे स्थान पर उन मौलिक सुविधाओं एवं विशेषज्ञों की अनिवार्यतहोती जो सेवार्थी के समस्या समाधान में सहायक हो। साथ ही एक खास वातावरण की आवश्यकता होती है जिसमें सेवार्थी स्वयं को अनुकूलित कर सके। ऐसे स्थान को सामाजिक संस्था या वैयक्तिक सेवाकार्य संस्था कहा जाता है। ऐसा स्थान सामाजिक सेवा संस्था अथवा समाज सेवा विभाग या इसी प्रकार की मानव कल्याणकारी संस्था है। यह एक विशेष प्रकार की सामाजिक संस्था अथवा विभाग हो सकता है जिसका उद्देश्य न केवल सामाजिक समस्याओं का निराकरण करना ही नहीं बल्कि उनकी भी सहायता करना है जो समस्या का अनुभव कर रहे हैं जिससे वे अपने जीवन को पुनर्गठित कर सकें।इसका मूल उद्देश्य व्यक्ति की बाधित अवस्था को दूर कर मनोसामाजिक समस्याओं का समाधान करनाहै। इस पूरी प्रक्रिया में इस संस्था का उद्देश्य यही होता है कि कैसे व्यक्ति के व्यक्तिगत और पारिवारिक जीवन को सुखमय बनाया जा सकें। समाज कार्य के इतिहास में हम देखते है कि दान संगठन (CharityOrganization), फ़ॉस्टर होम, आदि का विवरण मिलता है जिसमें व्यक्ति की सहायता की जाती रही थी। पर्लमन के लेखन में दो प्रकार की संस्थाओं का वर्णन मिलता है, सार्वजनिक संस्था (Public Agency) एवं निजी संस्थाएँ (Private Agency)। आम तौर पर एजेंसी से तात्पर्य एक ऐसी जगह जो ख़ास तरह की सेवाएं प्रदान करता हो, जो एक कंपनी, संगठन या ब्यूरो हो सकता है। आज हम देखते है कि विभिन्न संस्थान (Institution) भी इस कार्य का भार संभाल रहे हैं। इसलिए यहाँ स्थान से तात्पर्य संगठन, संस्था या एजेंसी इन तीनों से लगाया जाता है, लेकिन शर्त यह है कि इसमें सामाजिक कार्यकर्ता कार्यरत हो और वह व्यक्तियों की समस्याओं को सुलझाते हुए उनकेसुखमय जीवन की प्राप्ति में सहयोग दे रहा हो।

किसी भी संस्था के स्थापना का उद्देश्य किसी एक ख़ास या अनेकसमस्याओं को सुलझाना होता है। कोई भी संस्था पहले अपने कुछ विशिष्ट उद्देश्यों को निर्धारित कर लेती है और उसी के आधार पर संस्था में कर्मचारियों की नियुक्ति भी करती है। प्रत्येक कर्मचारी का नियत कर्तव्य और अधिकारों का निर्धारण किया जाता है। किन्तु ऐसी संस्था

का स्वरूप एकरेखीय या सोपानीकृत नहीं होता है बल्कि वह बहुरेखीय या प्रबंधकीय ढाँचे जैसा होता है जिसमें सभी कर्मचारी एक दूसरे के साथ कार्यात्मक रूप से संबंधितहोते हैं तथा एक दूसरे के कार्यों में सहयोग भी करते हैं। ऐसी संस्थाओं में नीति निर्धारण का कार्य भी किया जाता है जिसका उपयोग सेवार्थी के लिए अधिक से अधिक किया जाता है। संस्था के कर्मचारी संस्था के नीतियों के आधार पर सेवार्थियों को सेवा मुहैया करते हैं।

पर्लमन ने संस्था के सामान्य लक्षणों की बात की है-

1. सामाजिक संस्था एक ऐसा संगठन है जो समाज कल्याण के रूप में समस्त समाजकी इच्छा या उस समाज के किसी एक समूह की इच्छा को स्पष्ट करता है।
2. प्रत्येक सामाजिक संस्था एक कार्यक्रम का विकास करती है जिसके द्वारा एक विशेष क्षेत्र की आवश्यकताओं को पूरा करती है जिसके लिए वह स्थापित की गयी है।
3. सामाजिक संस्था की संरचना ऐसी होती है जिसके द्वारा कार्यों, उत्तरदायित्वों, कार्यक्रमों के तरीकों, नियंत्रण की नीतियों आदि को प्राप्त करता है।
4. सामाजिक संस्था एक जीवित स्थिति है जैसे किदूसरे जीवित अवयव है, संस्था अनुकूलनात्मक अवयव है जिसको साझा किया जा सकता है तथा जिसमें परिवर्तन होता रहता है।
5. संस्था का प्रत्येक कर्मचारी संस्था के सभी या कुछ कार्यों को पूरा करता है तथा वैयक्तिककार्यकर्ता संस्था का प्रतिनिधित्व व्यक्तिगत अधिकार के रूप में समस्या समाधान के लिए करता है।
6. वैयक्तिक कार्यकर्ता संस्था का प्रतिनिधित्व करते हुए भी पहले वह अपने व्यवसाय का प्रतिनिधि होता है।

4.5 प्रक्रिया (Process)

सामाजिक वैयक्तिक कार्य में प्रक्रिया से तात्पर्य ऐसी घटनाओं से है जिसमें एक विशिष्ट परिणाम प्राप्त होता है और इन दोनों के बीच एक संबंधहो। घटनाक्रमों और परिणाम के बीच अगर तादात्म्य नहीं हैं तो वह प्रक्रिया नहीं हो सकती। जैसा कि हम जानते है सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य प्रणाली व्यक्ति के सभी समस्याओं का समाधान नहीं कर पाती हैं। यह प्रक्रिया व्यक्ति के आंतरिक तथा बाह्य समायोजन से संबंधित समस्याओं तक सीमित है। संक्षेप में सामाजिक वैयक्तिक कार्य प्रक्रिया व्यक्तियों की दो प्रकार की समस्याओं से संबंधित है असंतोष के स्थान पर संतोष प्रदान करना एवं वर्तमान स्थिति से अधिक संतोष प्राप्तकरना।

समाजकार्य में उपयोगी समस्या-समाधान (Problem-Solving) प्रक्रिया का स्रोत जॉन डेवी के क्लासिकल कार्य में मिलता है इसमें उन्होंने संकट में फंसे व्यक्तियों के द्वारा प्रयुक्त विचार प्रक्रिया की व्याख्या की थी। सामान्य तौर पर व्यक्ति के जीवन में समस्या के समाधान तक पहुँचने में कुछ रुकावटों का समना करना पड़ता है इन्हें छह श्रेणियों में बाँटा गया है-

1. यदि व्यक्ति के पास आवश्यक अभौतिक उपाय तथा संसाधन उपलब्ध नहीं है तो समस्या हल नहीं हो सकती।
2. कभी-कभी व्यक्ति समस्या या इसे हल करने के मौजूदा तरीकों के बारे में अज्ञानता या गलत धारणा की वजह से आपसी समस्याएं सुलझा नहीं पाते।
3. यदि समस्याग्रस्त व्यक्ति में भावनात्मक या शारीरिक ऊर्जा समाप्त हो जाती है तो समस्या का हल कठिन हो जाता है। उसे स्वयं को संचालित करने की जरूरत होती है।
4. जब समस्या व्यक्ति की विचार प्रक्रिया, भावों के संमिश्रण से उत्पन्न होती है तो उसकी भावनाएं धुंधली पड़ जाती है।
5. समस्या व्यक्ति के भीतर हो सकती है, अर्थात वह अपनी सोच और कार्य से संचालित करने वाली भावना के अधीन हो चुका होता है या उसका शिकार हो चुका होता है।
6. कुछ लोगों को समस्याएं हल करना कठिन लगता है क्योंकि उन्होंने कभी भी सिलसिलेवार और सुव्यवस्थित सोचने और योजना बनाने की आदत विकसित नहीं की होती है, इसलिए यहाँ समस्या मुख्यत: व्यक्ति की अपनी शक्तियों को संगठित करने में अनभव की कमी की वजह से है।

सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य की प्रक्रिया में निम्नलिखित विशेषताएँ प्रमुख रूप से है-

१. घटनाओं का संबंधित होना
२. घटनाओं की पुनरावृत्ति
३. घटनाओं मेंनिरंतरता
४. घटनाओं के परिणाम

सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य प्रक्रिया का मुख्य उद्देश्य व्यक्ति की मनोसामाजिक समस्याओं को सुलझाना है किन्तु इसकी पूर्ति के लिए व्यक्ति की क्षमताओं का यथासंभव अधिकतम विकास कर उसे इस योग्य बनाया जाता है कि वह अपनी समस्याओं को खुदसुलझाने में आत्म निर्भर हो सके और अधिकतम सुख प्राप्ति कर सके। इस प्रक्रिया के अंतर्गत तीन प्रमुख कार्य आते हैं

१. सेवार्थी की समस्या, व्यक्तित्व और सामाजिक पर्यावरण से संबंधित तथ्यों का अध्ययन
२. समस्या का निदान
३. बाह्य तथा आतंरिक सहयोग एवं हस्तक्षेप द्वारा समस्याका उपचार

> ***एच. एच. पर्लमन***के अनुसार सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य के अभ्यास के लिए जिन तार्किक चरणों की पहचान की गयी जिसमें अध्ययन (तथ्यों का शोध), निदान(संगठित तथ्यों के बारे में सोच विचार कर उद्देश्य आधारित अर्थपूर्ण विश्लेषण), और उपचार (निष्कर्षों का क्रियान्वयन; समस्या पर क्या और कैसे एक्शन लेनी है।) निहित है। किन्तु वैयक्तिक कार्यकर्ता अभ्यास करते समय इस फ़ॉर्मूले (तथ्यों का शोध-निदान-उपचार) के साथ काम करते समय बहुत सारे अवरोध और कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है इसलिए इन अवरोधों और कठिनाइयों से परे जाकर इस फॉर्मूले को उपयोगितापूर्ण बनाना है तो वैयक्तिक कार्यकर्ता को सेवार्थी के साथ काम करते समय समस्या-समाधान (Problem-solving) क्रियाकलापों के माध्यम से वैयक्तिक कार्य अभ्यास को बेहतर बनाना होगा।
>
> एच. एच. पर्लमन.*सोशल केस वर्क; ए प्रॉब्लम सोल्विंगप्रोसेस.* पृ.62

1.**सेवार्थी की समस्या, व्यक्तित्व और सामाजिक पर्यावरण से संबंधित तथ्यों का अध्ययन :-** व्यक्ति से सेवार्थी के रूप में परिवर्तित होने की प्रक्रिया में व्यक्ति को एक जटिल निर्णय प्रक्रिया से गुजरना पड़ता है। ऐसा व्यक्ति जब किसी संस्था या सामाजिक कार्यकर्ता के पास जाता है तो वह सेवार्थी के रूप में परिवर्तित हो जाता है। सेवार्थी से तात्पर्य ऐसा व्यक्ति जिसे सेवा दी जा रही हो। सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य प्रक्रिया के पहले चरण में सेवार्थी की समस्या को समझना जरूरी होता है। व्यक्ति की समस्या को बिना समझे कार्यकर्ता कुछ नहीं कर सकता इसलिए समस्या को सुव्यवस्थित ढंग से समझना कार्यकर्ता के लिए आवश्यक होता है। कोई भी कदम उठाने से पहले समस्या का स्पष्ट उल्लेख या समस्या से सम्बंधित विवरण कार्यकर्ता के पास होना आवश्यक है। समस्या से संबंधित विवरण सेवार्थी या समस्या ग्रस्त व्यक्ति को संस्था में प्रवेश दिलाने वाले व्यक्ति से प्राप्त किया जा सकता है। कभी-कभी सेवार्थी किसी और संस्था या कार्यकर्ता या किसी खास विशेषज्ञ से संदर्भित होता है ऐसे में उस सेवार्थीकी समस्या का विवरण आसानी से उसकी केस हिस्ट्री से प्राप्त किया जा सकता है जिससे सेवार्थी की समस्या की प्रकृति को जानने में सहयोग प्राप्त होता है। किन्तु हर बार सेवार्थी की बनी बनाई केस हिस्ट्री मिलना मुश्किल होता है। ऐसी अवस्था में वैयक्तिक कार्यकर्ता को समस्याग्रस्त व्यक्ति की केस हिस्ट्री नए सिरे से बनानी पड़ती है। वैयक्तिक कार्यकर्ता को समस्याग्रस्त की हिस्ट्री का पता लगाने के लिए उसके समेकित व्यक्तित्व और सामाजिक पर्यावरण से संबंधित तथ्यों का अध्ययन

करना पड़ता है। इस प्रक्रिया की शुरुआत समस्याग्रस्त व्यक्ति द्वारा अपनी समस्या के संदर्भ में दिए गए पहले वक्तव्य से शुरू होती है। कार्यकर्ता को यहाँ पर सतर्कता के साथ व्यक्ति के उस वक्तव्य को जाँचना बहुत जरूरी होता है क्योंकि हो सकता है कि समस्याग्रस्त अपनी समस्या का वर्णन वास्तविकता से परे जाकर कर रहा हो या फिर वह अपनी समस्या को ठीक से व्यक्त नहीं कर पाने के कारण एक मिथ्या समस्या का निर्माण कर रहा होता है। ऐसी स्थितियों में वैयक्तिक कार्यकर्ता को सजगता से समस्या ग्रस्त व्यक्ति की समझ को समझते हुए उसकी भाषा, भाव-विश्व और उसकी अपनी दुनिया में जाकर, परानुभूति की तकनीक का इस्तेमाल कर उसकी समस्या को समझना होगा। इस चरण में वैयक्तिक कार्यकर्ता का कार्य व्यक्ति की समस्या की गतिकी को ढूँढना है चूँकि गतिकी को समझने के लिए समस्या ग्रस्त व्यक्ति के व्यक्तित्व को समझना अनिवार्य बन जाता है इसलिए समस्या ग्रस्त के व्यक्तित्व को समझ कर ही समस्या के आतंरिक कारणों की खोज की जा सकती है। इस बात पर भी ध्यान देना होगा कि समस्या के कारक केवल आतंरिक नहीं होते बल्कि बाह्य वातावरण में से भी होते हैं। व्यक्ति की समस्या के मूल में जाने के लिए आंतरिक एवं बाह्य दोनों कारकों को समझना होगा और इन कारकों की खोज के लिए समस्या से जुड़े तथ्यों एवं साक्ष्यों को एकत्रित करना होगा। संक्षेप में समस्या ग्रस्त की समस्या से संबंधित आंतरिकएवं बाह्य कारकों की जानकारी के साथ समस्या ग्रस्त के व्यक्तित्व और उस पर प्रभाव डालने वाले सभी कारकों का अध्ययन एवं तथ्य संकलन का कार्य इस चरण में किया जाता है।

2. समस्या का निदान: सेवार्थी की समस्या को प्राथमिक तौर पर निर्धारित करने के बाद निदान की प्रक्रिया शुरू हो जाती है। चिकित्साशास्त्र में निदान को लक्षणों के समूह के रूप में परिभाषित किया जाता है। लेकिन सामाजिक वैयक्तिक कार्य में निदान केवल लक्षणों के समूह तक सीमित न रह कर सेवार्थी की समस्या का समग्र रूप से ज्ञान होता है। निदान सेवार्थी द्वारा प्रस्तुत समस्या की वास्तविक प्रकृति से संबंधितव्यावसायिक मत है जिसे वैयक्तिक सामाजिक कार्यकर्ता सेवार्थी से संबंधस्थापित कर उसकी समस्या को निश्चित करता है। समाजकार्य के विद्वानों ने वैयक्तिक सेवा कार्य की प्रक्रिया में निदान को परिभाषित करते हुए अपने विचार प्रकट किए हैं। समाजकार्य में निदान को लेकर दो संप्रदाय पाए जाते हैं, *प्रकार्यात्मक* और *निदानात्मक* इन दोनों सम्प्रदायों के विद्वानों ने इसकी अलग-अलग परिभाषाएं की है जो निम्नानुसार है-

मेरी रिचमंड के अनुसार *सामाजिक निदान, जहां तक संभव हो सेवार्थी के व्यक्तित्व तथा सामाजिक स्थिति से एक यथार्थ परिभाषा पर पहुँचने का प्रयत्न है।*

पर्लमन एच.एच. के अनुसार *निदान एक प्रतिबिंबित विचार है जो समस्या समाधान कार्य को प्रारूप प्रदान करता है।*

इस चरण में सेवार्थी की शारीरिक, मनोवैज्ञानिक तथा सामाजिक प्रकार्यात्मकता का निरीक्षण एवं परीक्षण किया जाता है।

सामाजिक वैयक्तिक अध्ययन प्रणाली की निदान प्रक्रिया के अंतर्गत दो प्रमुख प्रश्नों के उत्तर प्राप्त किए जाते है:

1) समस्या या समस्याओं के कारक क्या है?

2) सेवार्थी की सहायता किस प्रकार की जा सकती है?

पर्लमन ने निदान के तीन प्रकार बताए हैं:-

1. **गतिशील निदान (Dynamic Diagnosis)** :- इस प्रक्रिया के अंतर्गत सेवार्थी की समस्या, उसके व्यक्तित्व तथा पर्यावरण से संबंधस्थापित करते हुए इस निष्कर्ष पर पहुँचा जाता है कि सेवार्थी की समस्याओं की उत्पत्ति में उसकी वर्तमान स्थितियाँ तथा व्यक्तित्व कहाँ प्रभाव डाल रहा हैं।

2. **कारणात्मक निदान (Etiological Diagnosis)** :- इसके अंतर्गत सेवार्थी के विगत जीवन की घटनाओं पर ज्यादा ध्यान दिया जाता है और यथाशक्ति सेवार्थी के समस्यामूलक व्यवहारों का संबंध उसके विगत जीवन की धारणाओं के साथ जोड़ दिया जाता है।

3. **उपचारात्मक निदान (Clinical Diagnosis)** :- वास्तविक समस्या को समस्या के आधार पर वर्गीकृत करने की प्रक्रिया को क्लीनीकल या उपचारात्मक निदान कहते हैं। तथ्यों के परीक्षण तथा अन्वेषण से जब यह ज्ञात हो जाता है कि सेवार्थी का व्यक्तित्व उसकी समस्या के लिए स्वयं उत्तरदायी है तो उसके व्यक्तित्व असमायोजन तथा व्यक्तित्व अकार्यात्मकता को मूल्यांकित किया जाता है जिसे उपचारात्मक निदान कहा जाता है। इस निदान प्रक्रिया में सेवार्थी के व्यक्तित्व असमायोजन के गुणों तथा व्यवहारों का वर्णन होता है।

मानसिक समस्याओं के निदान के लिए अमेरिकन सायकोलोजिकल एसोसिएशन द्वारा *Diagnostic and Statistical Manual of Mental Disorders-4*[*DSMIV*] कोई जाँच किया गया है। इस मेनुएल में व्यक्ति की सभी मानसिक समस्याओं को परिभाषित किया गया है।मानसिक रोगों के लक्षणों एवं लक्षणों के समूह की ब्यौरावार जानकारी इसमें उपलब्ध है। इस मेन्युएल का चौथा संस्करण अभी उपलब्ध है।

बाह्य तथा आतंरिक सहयोग एवं हस्तक्षेप द्वारा समस्या का उपचार:- समकालीन समय में सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य के अंतर्गत व्यक्ति के जीवनमें प्रत्येक पड़ाव पर उभरने वाली मनोसामाजिक समस्याओं के निवारण का कार्य किया जाता है। समस्या निवारण के इस कार्य में वैयक्तिक सेवा कार्यकर्ता व्यक्ति की परिस्थितियों में सुधार लाने की कोशिश करता है। इस चरण में सेवार्थी की समस्या के आधार पर उसका वर्गीकरण किया जाता है तथा निश्चित किया जाता है कि किन बाह्य या आंतरिक साधनों का सहयोग लिया जाएगा एवं किन हस्तक्षेप नीतियों का उपयोग कर सेवार्थी की समस्या का उपचार किया जाएगा। वैयक्तिक कार्यकर्ता सेवार्थी का उपचार करते समय उपचार के लक्ष्य निर्धारित करता है जिसके अंतर्गत निम्नलिखित बातों को उसे ध्यान में रखना होता है-

1. सेवार्थी की समस्या
2. सेवार्थी की इच्छा
3. सेवार्थी की आशा
4. सेवार्थी की आंतरिक क्षमता तथा कार्य करने की शक्ति
5. बाह्य पर्यावरण में उपलब्ध संसाधन
6. संस्था की नीति तथा कार्यकर्ता की कुशलता

समस्या समाधान की प्रक्रिया में तीन पहलू महत्वपूर्ण है-

1. वैयक्तिक सेवाकार्य प्रक्रिया में समस्या से संबंधित तथ्यों का निश्चयन तथा स्पष्टीकरण किया जाता है।

2. तथ्यों के सतत निर्धारण एवं तथ्यों के निष्कर्ष से वैयक्तिक सेवाकार्य प्रक्रिया आगे बढ़ती रहती है। अर्थात यह वैयक्तिक सेवाकार्य प्रक्रिया तथ्यों के माध्यम से विचारों की उत्पत्ति है जिसमें तथ्यों के निष्कर्ष निकालने के निरंतर प्रवाह से यह प्रक्रिया संचालित होती है।

3. अंतिम रूप में, प्रत्येक समस्या समाधान प्रक्रिया के अंतर्गत निष्कर्षत: समस्या के समाधान के रूप में कुछ चुनावों (Choices)और निर्णयों (Decision)को तैयार किया जाता है।

समस्या समाधान प्रक्रिया के अंतर्गत निम्न अवस्थाओं से गुजरकर इस प्रक्रिया कोपूर्ण किया जाता है-

1. समस्या का प्रारम्भिक उल्लेख।
2. समस्या की प्रकृति के बारे में प्रारम्भिक परिकल्पना का उल्लेख।

3. सूचना का चयन तथा संग्रहण।
4. उपलब्ध सूचना का विश्लेषण।
5. योजना का विकास।
6. योजना का क्रियान्वयन।
7. योजना का मूल्यांकन।

उक्त अवस्थाओं से गुजरते हुए वैयक्तिक सामाजिक कार्यकर्ता समस्या समाधान प्रक्रिया को पूर्ण करता है संक्षेप में, कहें तो व्यक्ति को स्वयं समस्या या समस्या पर काम करने और उन्हें सुलझाने में शामिल करना है, ताकि ऐसे तरीके से वह जीवन में आने वाली अन्य समस्याओं का सामना आगे बढ़कर आत्मविश्वासपूर्वक कर सके।

वैयक्तिक कार्यकर्ता उक्त सवालों के जवाब सेवार्थी के साथ मिलकर ढूँढता है और अनिर्णायक सिद्धांत का उपयोग करते हुए सेवार्थी के सामने समस्या समाधान के विकल्प को रखता है जिसमें से चयन स्वयं सेवार्थी को करना होता है। सेवार्थी के चयन के पश्चात कार्यकर्ता सेवार्थी की क्षमता के अनुरूप एक हस्तक्षेप योजना बनाता है जिसके अंतर्गत वह सेवार्थी की समस्या का उपचार करता है। हस्तक्षेप की योजना बनाते समय वैयक्तिक कार्यकर्ता जिन साधनों का उपयोग करता है उनमें से कुछ निम्नलिखित है-

1. परिस्थितियों में सुधार (Environment Manipulation)
2. मनोवैज्ञानिक सहारा (psychological support)
3. तादात्मीकरण (Identification)
4. स्वीकृति (Acceptance)
5. पुष्टिकरण (Reinforcement)
6. प्रोत्साहन
7. सामान्यीकरण (Generalization)
8. संक्षिप्तीकरण (Attribution)
9. व्याख्या (Interpretation)
10. पुनर्विश्वासीकरण
11. निर्देशन (Guidence)
12. शिक्षण (Education)
13. स्पष्टीकरण (Clarification) आदि

इन साधनों एवं वैयक्तिक सेवा कार्यकर्ता की कुशलता को आधार बनाकर सेवार्थी की समस्या को मद्देनजर रखते हुए समस्या समाधान के लिए सेवार्थी के जीवन में नियोजित हस्तक्षेप किया जाता है। वैयक्तिक सेवाकार्य में सेवार्थी की उन क्षमताओं को व्यवस्थित तथा कार्यान्वित किया जाता है जिनसे अनुकूलन प्राप्त होता है तथा उक्त साधनों, अवसरों एवं शक्तियों को प्रदान किया जाता है। इनके द्वारा सेवार्थी अपनी समस्या को समझते हुए समाज में फिर से समायोजन स्थापित करने में सक्षम हो जाता है।

समस्या समाधान प्रक्रिया के तीन अनिवार्य कार्य

1. जो तथ्य समस्या को सृजित या प्रभावित करते हों उनका पता लगाना चाहिए और ग्रहण करना चाहिए, ये कारक, वस्तुनिष्ठ वास्तविकता तथा आत्मनिष्ठ प्रतिक्रिया, कारण एवं प्रभाव, व्यक्ति तथा उसकी समस्याओं के बीच संबंध माँगे गए हल और उपलब्ध वास्तविक उपाय हो सकते हैं।
2. समस्या समाधान के उद्देश्य से कारकों पर विचार किया जाना चाहिए तथा ज्ञान तथा अनुभवों से उत्पन्न विचारों द्वारा इन कारकों पर कार्य किया जाना चाहिए और इन्हें संगठित किया जाना चाहिए।
3. कुछ विकल्प अथवा निर्णय लिए जाने चाहिए जो विशिष्ट कारकों पर विचार का नतीजा हों और जिनका समस्या के हल पर प्रभाव हो।

सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य की प्रक्रिया के अंतर्गत हस्तक्षेप एवं उपचार के निम्नलिखित उद्देश्य प्रमुख माने गए हैं-

1. सामाजिक क्षीणता को रोकना।
2. सेवार्थी की शक्तियों को सुरक्षित रखना।
3. सेवार्थी के जीवन अनुभवों को अधिक से अधिक सफल एवं संतोषप्रद बनाना।
4. मनोवैज्ञानिक क्षतिपूर्ति करना।
5. सेवार्थी के विकास एवं उन्नति के लिए अवसरों को उपलब्ध कराना॥
6. आत्म-निर्देशन एवं सामाजिक योगदान की क्षमता को बढ़ाना।

सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य प्रकिया की अवधारणा में विभिन्न चरण निहित है जैसे- सेवार्थी की समस्या, व्यक्तित्व और सामजिक पर्यावरण से संबंधित तथ्यों का अध्ययन, समस्या का निदान, तथा बाह्य तथा आतंरिक सहयोग एवं हस्तक्षेप द्वारा समस्या का उपचार महत्वपूर्ण है बावजूद इसके इस अवधारणा को निर्धारण, नियोजन, क्रिया, सेवा समापन के अंतर्गत भी देखा जाता है। यह सारे चरण एक के बाद एक चक्रीय ढंग से होते है। व्यक्ति की समस्या में भिन्नता होने के कारण उनकी समस्या के अनुरूप नियोजन करना अनिवार्य कार्य बन जाता है। इसी के अंतर्गत वैयक्तिक कार्यकर्ता को एक हस्तक्षेप योजना बनाना अनिवार्य बन जाता है। उपचार के चरण में इस बात पर भी ध्यान देना होगा कि कौन से आंतरिक एवं बाह्य साधन वहां उपलब्ध है। यह जरूरी नहीं है कि हर बार साधन एक जैसे ही उपलब्ध हो। तब ऐसे में कार्यकर्ता को अपनी कुशलता एवं कल्पनाशीलता का आधार लेकर संसाधनों का चयन करना पडेगा।

4.6 सारांश

सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य को एक प्रणाली के रूप में स्थापित करने के लिए चार घटकों की आवश्यकता है जिसमें व्यक्ति, समस्या, स्थान, प्रक्रिया निहित है। इन घटकों के बगैर सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य व्यवस्थित नहीं हो सकती है। यह चार घटक सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य के हृदयस्थान है। इस पूरी इकाई में हमने देखा कि किस तरह इन चार घटकों की एकरूपता से एक प्रक्रिया का निर्माण होता है और वही प्रक्रिया किस तरह से व्यक्ति को सेवा, सहायता देने में सहजता प्रदान करती है। व्यक्ति की विभिन्नताओं को समझते हुए उनकी समस्या के वर्गीकरण के आधार पर समस्या की प्राथमिकता की जांच पड़ताल की जाती है क्योंकि वैयक्तिक कार्यकर्ता के पास आने वाला व्यक्ति एक निर्णायक स्थिति से गुजरकर आया हुआ होता है ऐसे में विभिन्न सिद्धांतों का उपयोग कर उसे सहायता देना कर्तव्य बन जाता है। कार्यकर्ता अपने कौशलों के आधार पर और संस्था के उद्देश्यों के आधार पर समस्याग्रस्त को सेवा मुहैया करता है। संस्थानीकरण के दौर में संस्थाओं का महत्व आज बढ़ गया है इस दौर का एक लंबा इतिहास है। चर्च द्वारा गरीबों की सेवा का भार वहन करने से इनकार के बाद जिम्मेदारी की बागडोर राज्य पर आ गयी जिससे कल्याणकारी राज्य की अवधारणा का निर्माण हुआ और आज देखते है कि कल्याणकारी राज्य ने यह भार छोटे-छोटे संस्थाओं पर डाल दिया है ऐसे में व्यक्ति की समस्या को सुनने के लिए एक मात्र जगह संस्था ही बाकी रह गयी है। इसलिए संस्थाओं के उद्देश्यों के अंतर्गत समस्याग्रस्तों की समस्या का समाधान करने की जिम्मेदारी संस्थाओं की बन गयी है।

सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य संस्थागत ढाँचे में अपने चार बुनियादी घटकों को आधार बनाकर व्यक्तियों को लगातार सेवा प्रदान कर रहा है। किन्तु इस बात से इसकी भारतीय परिदृश्य में आलोचना होती है कि यह ग्रामीण परिवेश में खुद को ढाल नहीं पाया है।

4.7बोध प्रश्न

1. वैयक्तिक सेवा कार्य में व्यक्ति से सेवार्थी की प्रक्रिया को सोदाहरण समझाएं।

2. संस्था में सेवा प्राप्ति के लिए आने वाले सेवार्थियों के वर्गीकरण की चर्चा करें।
3. वैयक्तिक सेवा कार्य की प्रक्रिया को सोदाहरण स्पष्ट कीजिए।
4. वैयक्तिक सेवा कार्य में उपयोगी निदान प्रक्रिया पर प्रकाश डालीए।
5. समस्या-समाधान प्रक्रिया को विश्लेषित कीजिए।

4.8 सन्दर्भ एवं उपयोगी ग्रन्थ

Mathew, G. (1987). *Casework in Encyclopedia of Social Work in India.* Delhi: Ministry of Social Welfare, Goverment of India.

Parlman, H. (1957). *Social Case Work: A Problem Solving Process .* Chicago: The University of Chicago Press.

Skidmore, R. A. (1994). *Introduction to Social Work .* Iglewood Clifs .

मिश्र, **प**. **ड**. (2003). ***सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य.*** **लखनऊ**: **उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान**.

खंड 2

सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य –II

इकाई: 1 वैयक्तिक सेवाकार्य के सिद्धांत

इकाई रूपरेखा

1.0 उद्देश्य
1.1 प्रस्तावना
1.2 वैयक्तिक समाजकार्य के सिद्धांत
1.2.1 वैयक्तिकरण का सिद्धांत
1.2.2 भावनाओं के उद्देयपूर्ण प्रकटन का सिद्धांत
1.2.3 नियंत्रित भावनात्मक सम्मिलन का सिद्धांत
1.2.4 स्वीकृति का सिद्धांत
1.2.5 अनिर्णायात्मक मनोवृत्ति का सिद्धांत
1.2.6 सेवार्थी आत्मनिश्चय का सिद्धांत
1.2.7 गोपनीयता का सिद्धांत
1.3 सारांश
1.4 बोध प्रश्न
1.5 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

1.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन पश्चात आप –

- सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य के सिद्धांतका वर्णन कर सकेंगे ।
- वैयक्तिक सेवाकार्य के विभिन्न सिद्धांतों को वर्गीकृत कर सकेंगे एवं उनमें अंतर कर सकेंगे ।
- विभिन्न सिद्धांतों की तुलना कर सकेंगे ।

1.1 प्रस्तावना

इस इकाई में सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य के सिद्धान्त का वर्णन किया गया है। सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य समाज कार्य की एक प्रणाली के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। समाज कार्य में कुछ सिद्धांतों का पालन किया जाता है जिनके अभाव में व्यावसायिक समाजकार्य को नहीं किया जा सकता, इसी भाँति सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य के भी कुछ महत्वपूर्ण सिद्धांत होते है जिनका पालन किये बिना कोई भी सामाजिक कार्यकर्ता वैयक्तिक सेवाकार्य प्रक्रिया को सम्पन्न नहीं कर सकता है । सिद्धांतों का पालन ऐच्छिक नहीं होता, क्योंकि इन सिद्धांतों को प्रयोग में लाये बिना लक्ष्यों को प्राप्त नहीं किया जा सकता । इसलिए इस इकाई में हम सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य के विभिन्न सिद्धांतों पर चर्चा करेंगे।

1.2 वैयक्तिक सेवाकार्य के सिद्धान्त

सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य एक कला है जिसमें मानव सम्बन्धों के ज्ञान तथा सम्बन्धों की निपुणता का व्यक्ति की क्षमताओं तथा समुदाय के साधनों को क्रियाशील बनाने के लिए उपयोग किया जाता है ताकि वह अन्य लोगों अथवा पर्यावरण के साथ व्यवस्था करने में समर्थ हो सके। इस परिभाषा के अनुसार वैयक्तिक

सेवाकार्य का उद्देश्य व्यक्ति की सहायता, समस्या समाधान तथा आवश्यकता की पूर्ति करना है। कार्यकर्ता के लिए मानव सम्बन्धों की प्रकृति का ज्ञान होना आवश्यक होता है जो उसे व्यक्तियों से सम्पर्क स्थापित करने में आवश्यक होता है। 'सम्बन्ध' वह जो कार्यकर्ता व सेवार्थी के बीच मानव प्रकृति के ज्ञान के आधार पर निर्मित होते हैं। सम्बंधों की घनिष्ठता सिद्धातों पर निर्भर करती है। जो मूलत: क्रिया (Action) के सिद्धांत होते है, वे ऐसे मूलभूत तत्व पर आधारित होते हैं, जो प्रभावित, मार्गदर्शित और निर्दिष्ट करते है। इन सिद्धांतों को गुण अथवा तत्व भी कहा जा सकता है क्योंकि ये प्रत्येक अच्छे वैयक्तिक सेवाकार्य संबंध में मौजूद होते है। इन सभी सिद्धातों का आगे विस्तृत वर्णन किया जा रहा है।

वैयक्तिक सेवा कार्य के निम्न प्रमुख सिद्धांत हैं-

1. वैयक्तिकरण का सिद्धांत
2. भावनाओं के उद्देश्यपूर्ण प्रकटन का सिद्धांत
3. नियंत्रित भावनात्मक सम्मिलन का सिद्धांत
4. स्वीकृति का सिद्धांत
5. अनिर्णायक मनोवृत्ति का सिद्धांत
6. सेवार्थी आत्मनिश्चय का सिद्धांत
7. गोपनीयता का सिद्धांत

आगे हम प्रत्येक सिद्धांत को विस्तार पूर्वक समझेंगे।

1.2.1 **वैयक्तिकरण का सिद्धांत :-**

व्यक्ति का वास्तविक अर्थ वैयक्तिकरण से ही स्पष्ट होता है। 1930 में बरजाइना रॉबिन्सन ने वैयक्तिकरण के सिद्धांत को वैयक्तिक सेवाकार्य के लिए महत्वपूर्ण बनाया। मेरी रिचमण्ड ने भी प्रभावपूर्ण सेवाकार्य के लिए वैयक्तिकरण पर बल दिया। यह सिद्धांत प्रत्येक व्यक्ति की विशिष्ट विशेषताओं को समझने पर बल देता है। बोइथियस के अनुसार व्यक्ति तार्किक प्रकृति का वैयक्तिक सारतत्व है। मानव प्रकृति जाति में समान होती है लेकिन प्रत्येक व्यक्ति की वैयक्तिक पहचान होती है। प्रत्येक व्यक्ति अपने वंशानुक्रम, पर्यावरण, अन्तर्भूत ज्ञानात्मक क्षमताओं, योग्यताओं आदि से भिन्न होता है। प्रत्येक व्यक्ति के अलग-अलग अनुभव तथा अलग-अलग आन्तरिक बाह्य उत्तेजक होते है जो उसके संवेग तथा स्मृतियों, विचारों, भावनाओं तथा व्यवहार को प्रभावित करते हैं। प्रत्येक व्यक्ति की प्रकृति अपनी शक्तियों को विशिष्ट प्रकार से संगठित करके उन्हें निर्देशित करती है जिससे वे दूसरे व्यक्ति की प्रवृत्ति से भिन्न हो जाते हैं। यदि यद्यपि शारीरिक रूप से सभी व्यक्ति समान होते हैं परन्तु उनकी शारीरिक, मानसिक, सांवेगिक आदि क्षमताओं में अन्तर होता है। जब तक इन विशेषताओं को अलग-अलग नहीं समझा जायेगा तब तक सेवार्थी समस्या का उचित समाधान ढूँढ़ नहीं सकेगा और ही उचित समायोजन स्थापित कर सकेगा। इससे यह स्पष्ट होता है कि व्यक्ति-व्यक्ति में अन्तर होता है। प्रत्येक सेवार्थी भिन्न विशेषताएँ रखता है। अत: उसकी आवश्यकताएँ भी दूसरों से किसी-न-किसी रूप में भिन्न होती है। अत:वैयक्तिक कार्य सहायता में भी भिन्नता होना अनिवार्य है जिससे व्यक्ति विशेष की सहायता संभव हो सके और सेवार्थी अपनी योग्यताओं और स्रोतों को समस्या समाधान के लिए उपयोग में ला सके। प्रत्येक व्यक्ति को यह अधिकार है कि उसको एक व्यक्ति के रूप में समझा जाय न कि मानव प्राणी के रूप में अन्तरों को महत्व दिया जाय। इसी मूलाधार पर वैयक्तिकरण का सिद्धांत आधारित है।

आधुनिक वैयक्तिक सेवाकार्य सेवार्थी केन्द्रित है। यह व्यक्ति विशेष की समस्या पर निर्भर है। निदान तथा उपचार का कार्य अलग-अलग सेवार्थी के लिए अलग-अलग होता है। योजना अलग-अलग बनायी जाती है। व्यक्ति-व्यक्ति से अलग संबंध स्थपित किया जाता है। प्रत्येक सेवार्थी एक व्यक्ति है। प्रत्येक समस्या एक विशिष्ट समस्या है तथा सामाजिक सेवा प्रत्येक सेवार्थी की परिस्थिति के अनुसार होनी चाहिए। समाज कार्य में यद्यपि सामान्य मानव प्रकृति की विशेषताओं का ज्ञान प्रदान किया जाता है। साथ ही साथ मानव व्यवहारों के तरीकों को बताया जाता है परन्तु यह वैयक्तिकता पर विशेष बल देता है। इस प्रकार के ज्ञान से वैयक्तिक कार्यकर्ता को विषयगत तथा वस्तुगत विचारों, भावनाओं, समस्याओं तथा कठिनाइयों को समझने में सहायता मिलती है।

वैयक्तिकरण सिद्धांत का उपयोग मनोवृत्ति, ज्ञान तथा योग्यता पर निर्भर होता है। वैयक्तिक सेवा कार्यकर्ता में निम्नलिखित गुणों के होने पर ही वह इस सिद्धांतका उपयोग सफलतापूर्वक कर सकता है :-

1. **एक खुला और पक्षपातहीन रवैया :-** वैयक्तिक सेवाकार्य में कार्यकर्ता को निजी पक्षपातों और पूर्वाग्रहों से अवगत होना चाहिए । सेवार्थी की समस्या, उसके जीवन स्थितियों के सही-सही आकलन के लिए सेवार्थी को विषयपरक तथा पूर्वानुमानित धारणाओं तथा पूर्वाग्रहों आदि से मुक्त होना आवश्यक है। पूर्वाग्रह विविध श्रेणियों अथवा समूहों से संबंधित हो सकते है जैसे जाति, वर्ग, अपराधी, विवाह-पूर्व या विवाहेतर, संबंधों में संलिप्त लोग आदि घटना को संभालते समय सेवार्थी को निजी भावनाओं, आवश्यकताओं तथा प्रति-अंतरण प्रवृत्तियों के प्रति ईमानदार तथा सजग होना आवश्यक होता है।
2. **मानव व्यवहार का ज्ञान :-** कार्यकर्ता को जटिल मानवीय व्यवहारों, विविध व्यक्तित्व वाले लोगों का सामना करना पड़ता है। इसलिए मानव व्यवहार के तरीकों का ज्ञान होना आवश्यक होता है क्योंकि इसी सन्दर्भ में सेवार्थी को समझा जाता है तथा सहायता की जाती है। साथ ही व्यावसायिक सहायता पहुँचाने के लिए विज्ञान से प्राप्त व्यवहार का ज्ञान भी अनुभव के साथ सम्मिलन होना चाहिए। वैयक्तिक कार्य के लिए मनोविज्ञान, समाजशास्त्र,मनोचिकित्सा, औषधिशास्त्र तथा दर्शन का ज्ञान आदि की समझ होना अनिवार्य होता है।
3. **सुनने तथा अवलोकन करने की क्षमता :-** कार्यकर्ता में सुनने तथा अवलोकन करने की क्षमता महत्वपूर्ण होनी चाहिए । जितना सेवार्थी को अपनी कहानी बताने के लिए उत्साहित किया जाता है, भावनाओं को स्पष्ट करने की सम्भावना होती है उतना ही ज्ञान कार्यकर्ता प्राप्त करता है। इससे वैयक्तिकरण के सिद्धांन्त को लागू करने में वैयक्तिक कार्य की प्रक्रिया के प्रत्येक अवस्था, अवयव, निदान तथा उपचार के लिए सही समय पर सही गति बनाना संभव होता है। सेवार्थी चाहता है कि कोई उसकी समस्याको सुने और वह व्यक्ति निपुण तथा दक्ष होना चाहिए। अत: कार्यकर्ता न केवल सुनने तक ही सीमित होता है बल्कि समझने से भी सम्बन्धित होता है। उसके उन तथ्यों को समझना आवश्यक होता जिन्हें वह अपनी बातों से व्यक्त करता है, सेवार्थी कुछ बताना नहीं चाहता है तथा तथ्यों को तोड़-मरोड़ कर प्रस्तुत करता है । अत: कार्यकर्ता में सेवार्थी के द्वारा बताए गए तथ्यों को सुनने और अवलोकन करने की क्षमता अवश्य होनी चाहिए।
4. **सेवार्थी की गति से चलना :** वैयक्तिक कार्य प्रत्येक सेवार्थी का अवलोकन करता है उसे वही से आरंभ करना चाहिए जहाँ सेवार्थी है। वह उसकी क्षमताओं, योग्यताओं एवं विशेषताओं का ज्ञान प्राप्तकरता है। परन्तु उसके लिए आवश्यक होता है कि वह उसी मानसिक स्तर से कार्य करना प्रारम्भ करे जिस स्तर पर सेवार्थी है। तभी सेवार्थी सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य प्रक्रिया में भाग तथा संकलन में सहयोग प्रदान करता है, निदान तथा उपचार प्रक्रिया में अपना योगदान देता है। सेवार्थी के साथ चलने से ही कार्यकर्ता सफल हो सकता है तथा सेवार्थी का पूर्ण विश्वास प्राप्त कर सकता है।

5. **सेवार्थी की भावनाओं को समझने की योग्यता :** सेवार्थी की भावनाएँ कार्यकर्ता के अवलोकन का केंद्र बिन्दु होनी चाहिए। यह सेवार्थी की सर्वाधिक व्यक्तिगत विशेषताएँ होती है। एक ही समस्या अलग-अलग व्यक्तियों में अलग-अलग भावनाएं उत्पन्न करती है। वैयक्तिकरण द्वारा इन भावनाओं को जाना जा सकता है तभी उसी के अनुरूप निदान संभव हो सकते है। वैयक्तिक कार्यकर्ता को सेवार्थी से आत्मीयता स्थापित करना अनिवार्य होता है। उसे सेवार्थी के अनुभवों को समझने की लालसा होनी चाहिए, उसके विचारों को सुने तथा समाधान के तरीकों को उसी की इच्छानुसार निर्धारित करे।

6. **दृष्टिकोण रखने की क्षमता :** वैयक्तिक कार्यकर्ता को भावनात्मक रूप से नियंत्रित होना चाहिए जिससे वह व्यापक दृष्टिकोण से सेवार्थी को समझ सके तथा जिससे वह समस्या का वस्तुनिष्ठ एवं विषयगत तथ्य प्राप्त कर सके। इससे सेवार्थी को घटना का समग्र दृश्य रखने और सहायता संबंध में प्रगति करने में मदद मिलती है। उदाहरण के लिए यौन उत्पीड़न से संबंधित घटनाओं का उल्लेख करते समय यह सम्भावना होती है कि सेवार्थी घटना के बारे में विस्तृत तरीके से बात कर सकें। इस संबंध के अनुभव के बारे में गहन भावनाएँ आदान-प्रदान कर सके। ऐसी स्थिति में समस्याग्रस्त व्यक्ति को उसके 'यहाँ और अब' की भावनाओं पर जोर देना चाहिए और मन में बड़ीतस्वीर रखनी चाहिए। सेवार्थी से अपेक्षा होगी कि वह सेवार्थी के मन पर उसके संबंध पर उत्पीड़न की घटनाओं के प्रभाव, अन्य प्रासंगिक लोगों के साथ उसके संबंधों, तनाव-मुक्ति कुशलताओं आदि काअध्ययन तथा आकलन करे। एक व्यापक दृष्टिकोण होने से वैयक्तिक कार्यकर्ता को सेवार्थी पर उसकी सम्पूर्णता में केन्द्रित करने तथा सेवार्थी को प्रभावित करने वाले मनोवैज्ञानिक सामाजिक चेतन तथा अचेतन कारकों के अन्योन्य क्रिया का विश्लेषण करने में मदद मिलती है ।

वैयक्तिकरण के साधन

सामान्यत: वैयक्तिकरण के निम्नलिखित साधन होते है :-

अ) **विवरण में विचारशीलता :-** विस्तृत विचार विमर्श से वैयक्तिकरण के प्रदर्शन में सहायता मिलती हैं। समय का निर्धारण बहुत महत्वपूर्ण कार्य है। सेवार्थी की सुविधानुसार यदि साक्षात्कार का समय निर्धारित होता है तो सेवार्थी को आत्मीयता का आभास होता है। इसके साथ ही साथ वैयक्तिक कार्यकर्ता को अधिक से अधिक विमर्श करना चाहिए जिससे सेवार्थी की सहमति प्राप्त कर सके।

आ) **साक्षात्कारों में गोपनीयता:-** अनेक संस्थाओं में वैयक्तिक कार्य संबंधी साक्षात्कार खुले कार्यालय जगह में किए जाते है। इससे सेवार्थी की निजता भंग होती है साथ ही सेवार्थी के साथ गोपनीयता नहीं हो तो सेवार्थी के मन में डर पैदा होता है इस कारण वह अपनी पूरी बातें खुलकर नहीं बताते हैं इसी कारण सहायता में बाधा निर्माण हो सकती है। साक्षात्कार का स्थान ऐसा होना चाहिए जहाँ पर कार्यकर्ता तथा सेवार्थी के अतिरिक्त कोई न हो तथा शांतिपूर्ण वातावरण हो ताकि सेवार्थी पर पूरा ध्यान केन्द्रित हो जिससे सेवार्थी में कार्यकर्ता के प्रति विश्वास जागृत होगा।

इ) **भेंट करने में ध्यान :-** साक्षात्कार का समय पूर्व निर्धारित होता है तो सेवार्थी का मन बना हुआ होता है कि कार्यकर्ता अमुक समय उसकी समस्या सुनेगा। यदि सेवार्थी को इन्तजार करना पड़ता है या भीड़ के कारण समय कम मिल पाता है तो उसे संतोष नहीं होता है।

ई) **साक्षात्कार की तैयारी :-** वैयक्तिकरण के लिए सर्वश्रेष्ठ तैयारियों में से एक लिखित अभिलेख की समीक्षा करना होता है। जिससे समस्या संबंधी ध्यान सभी ओर जाता है तो सेवार्थी समझने लगता है कि कार्यकर्ता उसमें रूचि ले रहा है। उससे सेवार्थी अपनी समस्या संबंधी स्पष्ट विचार विमर्श करने का प्रयास करता है।

उ) **सेवार्थी को सहायता प्रक्रिया में सम्मिलित करना :-** वैयक्तिक कार्य की प्रक्रिया अर्थात अध्ययन, आकलन तथा उपचार में सेवार्थी की क्षमतानुसार उसे शामिल करना सम्मिलित होता है। उसे यह ज्ञान कराना आवश्यक होता है कि उससे जो आँकड़ें एकत्रित किए जा रहे है उनकी क्या आवश्यकता है तथा समस्या के सन्दर्भ में उनकी क्या उपयोगिता है। उपचार के साधनों को सेवार्थी की स्वीकृति से निर्धारित करना चाहिए। उसे अपना निर्णय करने का अधिकार देना चाहिए इससे सेवार्थी का आत्म-विश्वास जागृत होता है।

ऊ) **लचीलापन :-** सामाजिक वैयक्तिक कार्य प्रक्रिया में लचीलापन का होना भी वैयक्तिककरण में सहायक होता है। उपचारात्मक उद्देश्यों से सेवार्थी की जरूरतों के अनुरूप संशोधित करने, सेवार्थी की जीवन स्थितियों और समस्याओं के बारे में ज्ञान की आवश्यकता है। वैयक्तिक कार्यकर्ता में यह योग्यता होनी चाहिए कि वह समय और परिस्थिति के अनुसार प्रक्रिया में परिवर्तन कर सकें।

इससे स्पष्ट होता है कि व्यक्ति-व्यक्ति में अन्तर होता है। प्रत्येक सेवार्थी भिन्न विशेषताएं रखता है। अत: उसकी आवश्यकताएँ भी दूसरों से किसी न किसी रूप में भिन्न होती हैं। अत: वैयक्तिक कार्य सहायता में भी भिन्नता होना अनिवार्य है जिससे व्यक्ति विशेष की सहायता संभव हो सके और सेवार्थी अपनी योग्यताओं और स्रोतों को समस्या समाधान के लिए उपयोग में ला सके।

1.2.2 भावनाओं केउद्देश्यपूर्ण प्रकटन का सिद्धांत

मनुष्य एक तार्किक प्राणी है। उसमें ज्ञान का भण्डार है तथा कार्य करने की इच्छा व अनिच्छा होती है। इच्छाएँ या भावनाएँ व्यक्ति की प्रकृति व स्वभाव एक अंग है तथा व्यक्तित्व विकास के लिए इनका स्वास्थ विकास होना आवश्यक होता है। सहायता के आधुनिक व्यवसाय में एक सुनिश्चित भावनात्मक जीवन की महत्ता को प्रमुख रूप में मान्यता प्रदान की जाती है। मनोचिकित्सा और मनोविज्ञान दोनों विज्ञानों में व्यक्तित्व की संरचना में भावनाओं की सामान्य स्वस्थ भूमिका का अध्ययन किया गया है। इन विज्ञानों ने सामाजिक कार्य को मानव प्रगति और विकास के बारे में ज्ञान का एक आयाम दिया है इससे समाजकार्य सहायता प्रक्रिया और अधिक प्रभावी हुई है।

व्यक्ति की मनोवैज्ञानिक मूलभूत आवश्यकता को अन्तर्गत प्रेम, सुरक्षा, प्रस्थिति, भावनाओं का स्पष्टीकरण, उपलब्धि तथा आत्मनिर्भरता के रूप में पहचाना गया है। समूह में कार्य करना, समूह स्वीकृत लेना, समूह के तरीकों को व्यवहार में लाना यह सभी मनोसामाजिक आवश्यकताएँ है। इन आवश्यकताओं का स्तर व्यक्ति-दर-व्यक्ति घटता-बढ़ता रहता है। यदि इन भावनाओं का उद्देश्यपूर्ण प्रगटन नहीं होता है तो निराशा उत्पन्न होती है। सभी निराशा की स्थिति हानिकारक नहीं होती है, लेकिन निराशा के कारण हानिकारक मनोसुरक्षात्मक उपाय प्रयोग होने लगते है तो असामान्य व्यावहारिक प्रतिक्रियाएँ होने लगती है। यद्यपि यह सत्य है कि इन आवश्यकताओं की सीमा प्रत्येक व्यक्ति में भिन्न-भिन्न होती है परन्तु वे सभी मानव मात्र की आवश्यकताएँ है। सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य के सम्बन्ध में आवश्यकता एवं भावनाओं के स्पष्टीकरण पर बल दिया गया है। बीज्टिक का कहना है कि भावनाओं की उद्देश्यपूर्ण अभिव्यक्ति का अर्थ सेवार्थी द्वारा नकारात्मक भावों की अभिव्यक्ति की आवश्यकता की पहचान है।

सेवार्थी की भावनाओं का स्पष्ट प्रकट होना सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य के लिए आवश्यक होता है। सेवार्थी की भावनाओं के उद्देश्यपूर्ण प्रकटन के लिए कार्यकर्ता में निम्न मुख्य उद्देश्य होते हैं :-

1. दबाव एवं तनाव कम करना।
2. सेवार्थी की समस्या समझने में सहायता करना।

3. सकारात्मक एवं नकारात्मक कार्य के लिए सेवार्थी को चिन्ता मुक्त करना।
4. समस्या अध्ययन, निदान तथा उपचार के लिए समस्या तथा सेवार्थी दोनों को समझना।
5. सेवार्थी की समस्या के प्रति दृष्टिकोण का पता लगाना।
6. वैयक्तिक कार्यकर्ता तथा सेवार्थी में मनोवैज्ञानिक सम्बन्ध स्थापित करना।
7. नकारात्मक भावनाओं को ज्ञात करना जिससे सेवार्थी में ज्ञान विकसित हो सकें।

भावनाओं की उद्देश्यपूर्ण की सीमाएँ निम्नानुसार है :

1. संस्था अपने उद्देश्य के अनुसार भावनाओं का स्पष्टीकरण चाहती है। संस्था की कार्य प्रणाली भावनाओं की अभिव्यक्ति को उन भावनाओं तक सीमित करती है जिनका उपचार संस्थाके भीतर किया जाता है।
2. कार्यकर्ता को सेवार्थी की अपरिपक्व भावनाओं को समझना आवश्यक होता है। लेकिन कार्यकर्ता पर काम का भार ज्यादा होने से प्रत्येक घटना पर ध्यान देने का समय निर्धारित होता है। साक्षात्कार में सेवार्थी के गहरी भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिए पर्याप्त समय नहीं हो सकता है।
3. सेवार्थी की उग्रात्मक भावनाओं को जानना वैयक्तिक कार्यकर्ता के लिए आवश्यक होता है परन्तु संस्था अथवा कार्यकर्ता के प्रति उग्रात्मक व्यवहार सम्बन्ध को विघटित कर देता है अत: इसे मान्यता नहीं देनी चाहिए।
4. वैयक्तिक कार्यकर्ता सेवार्थी की भावनाओं का आदर करता है परन्तुउनके सकारात्मक परिवर्तन पर भी बल देता है।

भावनाओं की उद्देश्यमूर्ण अभिव्यक्ति का प्रदर्शन: वैयक्तिक कार्य की एक अनिवार्यता यह है कि सेवार्थी के लिए ऐसा वातावरण निर्माण करे जिससे सेवार्थी को उसकी भावनाएँ स्वतंत्रतापूर्वक व्यक्त करने के लिए प्रोत्साहन मिले, उसे उसका भरोसा और विश्वास भी प्राप्त करना होता है। सेवार्थी की सहायता करने के साथ ही वैयक्तिक कार्य की वास्तविक इच्छा को सेवार्थी तक संप्रेषित करना होता है। भावनाओं की उद्देश्यूर्ण अभिव्यक्ति के लिए एक उन्मुक्त वातावरण की निर्मिति अनिवार्य है। ऐसा वातावरण निर्माण करने के लिए निम्न तरीकों उपयोग किया जा सकता है -

- **मुक्त अभिवृत्ति :-** वैयक्तिक कार्यकर्ता को मुक्त मनोस्थिति तथा किसी भी पूर्वाग्रह से मुक्तहोना चाहिए जिससे सेवार्थी पर पूरा ध्यान केन्द्रित कर सके। साक्षात्कार करते समय में स्थान ऐसा हो जो सेवार्थी को आरामदायक अनुभव करा सकें, ताकि वह अपनी भावनाओं को उजागर कर सके साथ ही समस्या बताने के लिए सेवार्थी को प्रोत्साहित कर सके ।
- **तैयारी:-** साक्षात्कार के पहले कार्यकर्ता को पिछले केस रिकॉर्ड का अध्ययन करना चाहिए ताकि याददाश्त ताजा होगी और सेवार्थी के साथ साक्षात्कार का नियोजन तैयार होगा।
- **सुनना :-** सेवार्थी द्वारा भावनाओं की उद्देश्यमूर्ण अभिव्यक्ति को कार्यकर्ता द्वारा ध्यानपूर्वक सुनने पर गुणवत्ता निर्भर करती है। सेवार्थी को सुनते समय उत्साहपूर्ण टिप्पणियाँ करके, उपयुक्त सवाल करके, उसके जवाब ध्यानपूर्वक सुनकर, चेहरे के भावों के जरिए रूचि दर्शाकर, कार्यकर्त्ता सेवार्थी को उत्साहित कर सकता है ।
- **प्रगति की गति :-** प्रत्येक साक्षात्कार में कार्यकर्ता को अपने लक्ष्य की दिशा में आगे बढ़ते हुए सेवार्थी की सुधार के प्रति हो रही गति का आभास होना आवश्यक होता है, ताकि समस्या सुलझाने के लिए सेवार्थी अपनी भावनाएँ व्यक्त करेगा तथा इच्छा को परिलक्षित करेगा।
- **यथार्थपरक होना :-** वैयक्तिक कार्यकर्ता को यथार्थपरक आश्वासन देना, चाहिए तथा सेवार्थी द्वारा भावनाओं के अवलोकन में बहुत शीघ्र या बहुत अधिक विश्लेषण करने से बचना चाहिए।

भावनाओं की उद्देश्यपूर्ण अभिव्यक्ति का सिद्धांत वैयक्तिक कार्य में अध्ययन तथा निदान में सहायक होता है। भावनाओं की उद्देश्यपूर्ण अभिव्यक्ति से वैयक्तिक कार्य को अध्ययन के लिए अमूल्य सामग्री प्राप्त करने तथा सेवार्थी की यथार्थ परक समझ और सम्पूर्णता में उसकी प्रगति में सहायता मिलती है। इनसे समस्या को समझने और इसके समाधान की दिशा में काम करने में मदद मिलती है।

1.2.3 नियंत्रित भावनात्मक सम्मिलन का सिद्धांत

प्रत्येक सम्प्रेषण एक द्विमुखी प्रक्रिया होती है । जब एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से कुछ कहता है तो उससे भी प्रत्युत्तर चाहता है । यदि वह व्यक्ति कोई प्रत्युत्तर नहीं करता है तो सम्प्रेषण की अरूचि प्रकट होती है फलत: संचार प्रक्रिया काम नहीं करती है। सामान्य रूप से सम्प्रेषण की विषयवस्तु को तीन श्रेणियों में वर्गीकृत कर सकते है -

- केवल विचार
- केवल भावनाएँ
- विचार और भावनाएँ

जब व्यक्ति स्टेशन पर जाकर पूछताछ खिड़की पर किसी गाड़ी के जाने का समय पूछता है तो इसका तात्पर्य वह केवल विचार सम्प्रेषित कर रहा है। वह केवल सूचना प्राप्त करना चाहता है तथा वास्तविक तथ्यों की आशा करता है। दूसरी ओर जब एक किशोरवय युवती, जिसका बलात्कार हुआ है यह पता चलता है तो वह गर्भवती है तो वह अपनी मित्र से अपनी भावनाएँ आदान-प्रदान करती है, मुझे नहीं पता इस दुनिया का सामना मैं कैसे करूंगी, तो वह अपनी भावनाएँ सम्प्रेषित कर रही है। जब पत्नी या पति की मृत्यु पर किसी संबंधी से दुखदर्द बाँटना है, तब ऐसे प्रक्रिया में केवल उसकी भाव- प्रतिक्रिया उपयुक्त होती है । वैयक्तिक समाजकार्य में सम्प्रेषण की विषय वस्तु प्राय: विचार और भावनाशील मिश्रण होता है। विषय वस्तु की प्रकृति सेवार्थी की समस्या, संस्था के कार्य, सेवार्थी की आवश्यकताएँ तथा भावनाएँ, साक्षात्कार से सेवार्थी के परिवर्तित होने वाले विचार एवं धारणाएँ, वैयक्तिक कार्यकर्ता का उद्देश्य, अध्ययन, निदान तथा उपचार का रूप आदि पर निर्भर करती है।

सामाजिक वैयक्तिक कार्यकर्ता को विचार तथा भावना के सम्प्रेषण के दोनों स्तरों पर निपुणता की आवश्यकता होती है जो विषयवस्तु पर आधारित होता है। उस समय सहायता को प्रभावपूर्ण बनाने के लिए वैयक्तिक कार्यकर्ता को संस्था के तरीकों, नीतियों तथा समुदाय में उपलब्ध अन्य शास्त्रों का ज्ञान होना चाहिए । जब भावना प्रधान समस्या होती है और वैयक्तिक कार्यकर्ता सहायता प्रदान करना चाहता है तब ऐसी स्थिति में उसे सेवार्थी की भावनाओं के प्रत्युत्तर में निपुण होना चाहिए । वैयक्तिक समाजकार्य की यह निपुणता महत्वपूर्ण सबसे महत्वपूर्ण निपुणता है।

बीस्टिक के अनुसार वैयक्तिक कार्य संबंध में नियंत्रित भावनात्मक सम्मिलन का तत्व वैयक्तिक कार्य की सेवार्थी की भावनाओं के प्रति संवेदनशीलता तथा उनके अर्थ की समझ, सेवार्थी की भावनाओं के प्रति उद्देश्यपूर्ण, उपयुक्त प्रतिक्रिया होती है । नियंत्रित भावनात्मक सम्मिलन के प्रदर्शन में तीन तत्व होते है -

- संवेदनशीलता
- बोध/समझ
- प्रत्युत्तर

सेवार्थी के बारे में समझने के लिए मौखिक अभिव्यक्ति करते समय उसकी ओर से तथ्यपरकता के साथ-साथ भावनात्मक सूचना इकट्ठा करने के उद्देश्य से सेवार्थी की प्रतिक्रिया में कौशल परिलक्षित होना चाहिए । इससे सेवार्थी अपनी कठिनाई को उचित प्रकार से समझ सके तथा अहं को दृढ़कर समाधान का प्रयास कर सके।

1.2.4 स्वीकृति का सिद्धान्त

स्वीकृति समाजकार्य में सबसे अधिक इस्तेमाल किया जाने वाला शब्द है । प्रत्येक समाज कार्यकर्ता इस शब्द के महत्व से अवगत होता है तथा वैयक्तिक समाजकार्य में जहाँ पर कार्यकर्ता की सफलता सम्बन्ध की प्रकृति पर निर्भर है स्वीकृति सिद्धांत का विशेष महत्व है । समाजकार्य में सेवार्थी जैसा है उसे, उस रूप में, अपनी शक्तियों तथा सीमाओं के साथ, सम्भावनाओं तथा दुर्बलताओं, सकारात्मक तथा नकारात्मक भावनाओं के साथ स्वीकार करने के लिए मार्गदर्शित करती है । समाज कार्य में स्वीकृति को जीवन की गुणवत्ता, पेशेवर अभिवृत्ति, केंद्रीय गत्यात्मकता तथा एक सिद्धांत से संबंद्ध किया जाता है । समाजकार्य में स्वीकृति शब्द को स्पष्ट करने का प्रयास कुछ विद्वानों ने किया है वे निम्न प्रकार से है।

रेनोल्ड, वेदथा सी के अनुसार -*जब हम सेवार्थी को जैसा है, वैसा समझ लेते हैं तथा मानव साथी के रूप में उनका सम्मान करते है तो हम सेवार्थी को स्वीकृति प्रदान करते है ।*

क्रुस हेरथा के अनुसार - *वैयक्तिक सेवाकार्य व्यक्ति को जैसा है, वैसा स्वीकार करता है, वह बिना पूर्वाग्रह के स्वीकृति देता है । यह मित्रतावश नहीं बल्कि व्यावसायिक उद्देश्य के कारण ऐसा करता है। वह सहानुभूति, स्वीकृति प्रेम आदि प्रदर्शित करता है ।*

वैयक्तिक कार्यकर्ता सेवार्थी को जैसा है, वैसा ही समझने का प्रयास करता है । वही प्रत्यक्षीकृत करना चाहता है तथा उन्हीं गुणों को समझना चाहना है । इसी आधार पर वह सेवार्थी के साथ संबंध स्थापित करता है। इससे तात्पर्य है कि सेवार्थी में वास्तविकता का जितना विघटन हो, सेवार्थी का प्रत्यक्षीकरण भिन्न हो तथा मूल्यों में कितना भी अन्तर क्यों न हो, हम उसे वैसा ही स्वीकार करते है जैसा वह अपने को प्रदर्शित करता है । इससे यह तात्पर्य नहीं कि सेवार्थी में सुधार या परिवर्तन की आशा नहीं जाती है बल्कि इसका तात्पर्य यह होता है कि सहायता की कला स्वीकृति तत्व पर आधारित है और वहीं से प्रारंभ की जाय तो विशेष लाभकारी सिद्ध होगी । समाज कार्य का दृढ़ विश्वास है कि सेवार्थी के स्तर से ही कार्य प्रारंभ होना चाहिए जिससे सफलता प्रत्येक स्तर पर मिलती है । इस अर्थ में स्वीकृति व्यावसायिक मनोवृत्ति का एक सिद्धांत है । स्वीकृति के निम्न लिखित अंग है -

1. सम्मान करना (Respecting)
2. प्रेम करना (Loving)
3. चिकित्सात्मक समझ (Therapeutic Understanding)
4. प्रत्यक्षीकरण (Perception)
5. सहायता (Helping)
6. प्राप्त करना (Receiving)

स्वीकृत क्रिया तीन प्रकार की होती है -

1. प्रत्यक्षीकरण
2. उपचारात्मक समक्ष
3. अभि-स्वीकृति

सेवार्थी की स्वीकृति का तात्पर्य निम्नलिखित बातों से है:

1. मानव के रूप में उसकी एकता, क्षमता, योग्यता में विश्वास ।
2. व्यक्ति के रूप में जैसा है वैसा तथा सीमाओं सहित स्वीकृति ।
3. मनोवृत्ति तथा व्यवहार असहयोगपूर्ण होने पर भी उसको स्वीकार करना ।
4. उसकी वास्तविक क्षमताओं को स्वीकार करना ।

5. सेवार्थी के रूप में उसे मनाना तथा अपनी भावनाओं एवंरूचियों पर नियन्त्रण लगाना।
6. सकारात्मक तथा नकारात्मक भावनाओं कीस्वीकृति।

स्वीकृति सिद्धांत की**सीमाएँ**

- मानव व्यवहार की सीमित जानकारी।
- प्रति संक्रमण।
- वैयक्तिक कार्य का सेवार्थी की स्थिति के बारे में निर्णायक हो जाना।
- स्वीकृति तथा मंजूरी के बीच भ्रम।
- सेवार्थी के लिए सम्मान में कमी।

1.2.5 अनिर्णायक मनोवृत्ति का सिद्धांत

समाज कार्य की यह दृढ़ धारणा है कि व्यक्ति में आत्म निश्चय की अन्तर्भूत क्षमता होती है। इसी प्रत्यय के आधार पर वैयक्तिक समाज कार्यकर्ता सेवार्थी को अपना मार्ग स्वयं निश्चित करने के लिए प्रोत्साहित करता है। सेवार्थी को अपनी रूचि के अनुसार वैयक्तिक समाज कार्य प्रक्रिया में भाग लेने की पूरी स्वतन्त्रता होती है। उसके अधिकारों तथा आवश्यकताओं को महत्वदिया जाता है। कार्यकर्ता सेवार्थी की आत्म निदर्शक क्षमता को तीव्र करता है तथा संस्था में उपलब्ध साधनों का ज्ञान कराता है। वैयक्तिक समाज कार्य सम्बन्ध का यह विशिष्ट गुण है। कार्यकर्ता इसकी मनोवृत्ति को अपनाता है। इस मनोवृत्ति के आधार वैयक्तिक सेवाकार्य का दर्शन है कि व्यक्ति की समस्या उत्पन्न करने में कोई दोष नहीं है या वह अपराधी नहीं है बल्कि परिस्थितियाँ इसके लिए उत्तरदायी हैं। यह व्यक्ति की मनोवृत्ति, स्तर तथा क्रिया-प्रतिक्रिया के कार्यों को महत्व देता है।

'निर्णय' का तात्पर्य व्यक्ति को किसी कार्य के लिए उत्तरदायी या उसकी अज्ञानता को निश्चित करने से होता है। यह एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा सेवार्थी को आरोपित करना तथा उसे उसके जीवन की समस्याएँ उत्पन्न करने के लिए जिम्मेदार ठहराना होता है। जैसे एक महिला तनाव व हताशा के लक्षण दर्शाती अपनी बेटी के लिए सहायता मांगने के लिए एक बाल मार्गदर्शक क्लिनिक से सम्पर्क करती है। इस मामले में निर्णायक होने का अर्थ माँ पर बेटी की स्थिति के लिए आरोप लगाना होगा। वैयक्तिक सेवाकार्य मे भी निर्णय का यह अर्थ लिया जाता है। अर्थात सेवार्थी पर दोषरोपण मौखिक या अन्य किसी प्रकार से करना जिससे वह अपनी समस्या के लिए स्वयं सहायता कर सके। सेवार्थी की सहायता करने में यद्यपि उसकी असफलताओं तथा कमियों को जानना आवश्यक होता है। सेवार्थी की सहायता करने, समुदाय के स्त्रोतों का उपयोग करने, आन्तरिक क्षमताओं में समस्यासमाधान के लिए वृद्धि करने, उचित समायोजन प्राप्त करने, व्यक्तित्व का विकास वृद्धि करने के लिए वैयक्तिक कार्यकर्ता को सेवार्थी तथा उसकी समस्या दोनों समझना होता है। सहायता को प्रभावपूर्ण बनाने के लिए आवश्यक होता है कि वैयक्तिक कार्यकर्ता सेवार्थी की समस्या के कारणों को जाने इस प्रक्रिया में वैयक्तिक कार्यकर्ता सेवार्थी पर न तो दोषारोषण करता है न ही उसे अपराधी बताता है और न ही उसे समस्या उत्पन्न करने का कारक निश्चित करना है।

1.2.6 सेवार्थी आत्मनिश्चय का सिद्धांत

समाज कार्य के व्यवसाय का एक सबसे ठोस विश्वास यह है कि व्यक्ति में आत्म-निश्चिय की अन्तर्निहित क्षमता होती है। वैयक्तिक कार्यकर्ता द्वारा सेवार्थी की स्वतंत्रता का जानबूझकर उल्लंघन करने को गैर-पेशेवर समझा जाता है , क्योंकि यह सेवार्थी के प्राकृतिक अधिकार का हनन करता है और वैयक्तिक कार्य उपचार को बाधित करता है। बीस्टिक ने आत्म-निश्चित के सिद्धांत को बताते हुए कहा कि *''आत्म निश्चय का सिद्धांत वैयक्तिक सेवाकार्य प्रक्रिया में सेवार्थी की अपनी पसंदों तथा निर्णयों को कसे की स्वतंत्रता के अधिकार तथा आवश्यकता की*

व्यावहारिक पहचान करता है । कार्यकर्ता का कर्तव्य है कि वह इस अधिकार का सम्मान करे, उसकी जरूरतों की पहचाने, सेवार्थी की सहायता के द्वारा आत्म-निर्देशन की उसकी क्षमता को प्रोत्साहित और सहायता करता है जिससे सेवार्थी समुदाय तथा अपने स्वयं के व्यक्तित्व के उपलब्ध तथा समुचित संसाधनों को देखकर उपयोग करें । ताकि सेवार्थी का आत्म-निश्चय का अधिकार, सेवार्थी की सकारात्मक तथा रचनात्मक निर्णय क्षमता, नागरिक तथा नैतिक कानून के ढाँचा प्रणाली तथा संस्था की कार्य प्रणाली द्वारा सीमित हो जाता है।''

प्रत्येक मानव की तरह सेवार्थी को भी अपनी क्षमता का विकास करने का अधिकार होता है । उसका अपने उद्देश्यों को पूरा करने का उत्तरदायित्व के साथ अधिकार जुड़ा होता है अत: सेवार्थी को अपना मार्ग चुनने तथा उद्देश्य प्राप्त करने के साधन निश्चित करने का अधिकार भी होता है । सेवार्थी यद्यपि परेशान, हताश तथा हतोत्साही होता है परन्तु वह अपनी स्वतंत्रता तथा अधिकार नहीं खोना चाहता है । वह संस्था में सहायता तथा सहयोग के लिए आता है। वह वैयक्तिक कार्यकर्ता को सहायता प्रदान करने वाला तथा समस्या समाधान करने की विधि बनाने वाला मानता है । कार्यकर्ता से आशा करना है कि समस्या समाधान के साधन तथा स्रोत बताए, उसकी क्षमता में ज्ञान प्रदान करके सहायता करे । सामाजिक उत्तरदायित्व सांवेगिक समायोजन तथा व्यक्तित्व विकास तभी होता है जब व्यक्ति को अपना निर्णय लेने तथा विकल्प चुनने की स्वतंत्रता होती है । वैयक्तिक कार्यकर्ता इस तथ्य को पूरी तरह से समझता है तथा सेवार्थी को अपना निर्णय लेने की स्वतंत्रता देता है ।

आत्म निर्णय लेने की सीमाएँ :

आत्म निश्चय के सिद्धांत का कोई महत्व नहीं रह जाता है यदि सेवार्थी के इस अधिकार की सीमा निश्चित न की जाय -

1) **सकारात्मक तथा रचनात्मक निर्णय करने की सेवार्थी की क्षमता:-** कोई भी सिद्धांत सभी व्यक्तियों पर एक साथ उपयोग नहीं किया जा सकता है । कार्यकर्ता प्रत्येक का वैयक्तिकरण करके प्रत्येक की क्षमता का अनुमान लगाता है । क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति की निर्णय लेने की शक्ति अलग-अलग होती है । जैसे एक मानसिक रूप से अक्षम बालक व्यावसायिक गतिविधि आरंभ करने से संबंधित निर्णय नहीं ले पाता। इन मामलों में कार्यकर्ता को अनुपयुक्त निर्णय लेने से बचाने के उद्देश्य से मुख्य भूमिका धारण करनी पडेगी।

2) **कानून द्वारा सीमा का निश्चय :-** समुदाय व समाज के कानून भी सेवार्थी के आत्म निर्णय की सीमा को निश्चित करते है । कानून के अनुसार ही उसे अपना निर्णय लेना होता है।

3) **नैतिक कानून द्वारा सीमा का निश्चय :-** नैतिक मूल्यों के अनुसार ही वैयक्तिक कार्यकर्ता सेवार्थी को निर्णय लेने के लिए प्रोत्साहित करता है । सामान्यत: स्वीकृत नैतिक कानून चोरी, अपहरण, हत्या आदि जैसे अनुपयुक्त व्यवहारों से संबंधित हो सकते है।

4) **संस्था के कार्यों द्वारा सीमा का निश्चित :-** प्रत्येक संस्था के अपने नैतिक मूल्य, क्रियाकलाप, पात्रता मापदंड तथा कार्यक्षेत्र होते है। सेवार्थी को इसका सम्मान करना और संस्था के कार्यो के रूपरेखा के भीतर रहकर निर्णय लेना पड़ता है।

1.2.7 गोपनीयता का सिद्धांत

समाजकार्य में मानव जीवन के विभिन्न पहलुओं में विभिन्न तरीको उपयोग में लाते है । जीवन के बहुत से पहलू ऐसे होते है जिनमें व्यक्ति बहुत ही गोपनीयता रखता है । गोपनीयता सिद्धांत को दो रूपों में देखा जा सकता है

- व्यावसायिक आचार संहिता के रूप में।
- वैयक्तिक सेवा कार्य सम्बन्ध के तत्व के रूप में ।

गोपनीयता का अर्थ , सेवार्थी की उन गोपनीय सूचनाओं से है जो वह कार्यकर्ता से बताता हैउन्हें गोपनीय रखने से है । यह सेवार्थी के मूल अधिकार से सम्बन्धित है साथ ही वैयक्तिक कार्यकर्ता का उत्तरदायित्व है तथा वैयक्तिक सेवाकार्य का मूलाधार है ।

जब सेवार्थी संस्था में आता है तो यह समझकर आता है कि वैयक्तिक कार्यकर्ता को अनेक गोपनीय बातें बतानी हैं परन्तु यह भी चाहता है कि उसकी बातों को अन्य लोग न जाने क्योंकि ऐसा होने से उसकी मानहानि होगी तथा वैयक्तिक भावनाओं को ठेस पहुँचती है । इसीलिए पहले वह गोपनीय बातें नहीं बताता है । जब उसे विश्वास हो जाता है तो वह गोपनीय तथ्यों को स्पष्ट करता है । इनकी अभिव्यक्ति के बिना सेवार्थी द्वंद के समाधान में सहायता की आशा नहीं कर सकता । यह सूचना बहुत निजी हो सकती है । सेवार्थी को अनैतिक तथा सामाजिक दृष्टि से अनभिज्ञ व्यवहारों से संभव हो, और यदि लोगों को पता चल जाए तो सेवार्थी की सामाजिक छवि धूमिल हो सकती है इसलिए वैयक्तिक कार्य द्वारा गोपनीयता के सिद्धांत का अभ्यास आवश्यक है।

सामाजिक कार्यकर्ता का नैतिक उत्तरदायित्व :

गोपनीय सूचना के तीन श्रेणियाँ बताई है -

1) नैसर्गिक गोपनीयता
2) प्रतिज्ञात्मक गोपनीयता
3) समझौतात्मक गोपनीयता

वैयक्तिक कार्य संबंध में ये तीनों प्रकार के गोपनीयता शामिल होते है । सदैव एक मान्यता है कि वैयक्तिक कार्यकर्ता सेवार्थी की गोपनीयता को रखने को बाध्य होगा । यद्यपि कार्यकर्ता को संस्था के ढाँचे में रहकर कार्य करना होता है। सेवार्थी द्वारा प्रदान की गई सूचना अकेले सेवार्थी के पास नहीं रहती बल्कि संस्थामें रहती है । संस्था में सभी लोग सेवार्थी की गोपनीयता की रक्षा के लिए बाध्य होंगे ।

1.3 सारांश

प्रस्तुत इकाई में वैयक्तिक सेवा कार्य के सिद्धांतों का विवरण दिया गया है जिसमें वैयक्तिक सेवाकार्य तथा सेवार्थी का संबंध सर्वोच्चमहत्ता का होता है । वैयक्तिक सेवाकार्य संबंध में कार्यकर्ता एक पेशेवर मददगार की भूमिका में होता है तो सेवार्थी वह व्यक्ति होता जिसको मदद की जरूरत होती है। उपर्युक्तसिद्धांत वैयक्तिक सेवा कार्य को प्रभावकारी बनाते है तथा कार्यकर्ता इन सिद्धांतों का पालन कर अपनी भूमिका पूरी करने में पूर्ण सफल होता है । इन सिद्धांतों को जानना तथा व्यवहार में लाना वैयक्तिक कार्यकर्ता के लिए आवश्यक होता है । यह सिद्धांत कार्यकर्ता को सेवार्थी की सहायता में मार्गदर्शन एवं निर्देश देता है । इन सिद्धांतों की विशेषताएँ अथवा तत्वों में भी कहा जाता है क्योंकि ये प्रत्येक अच्छे वैयक्तिक कार्य संबंध में मौजूद होते है और संबंध का संरचनात्मक हिस्सा होते है। जिससे समस्या के वांछित लक्ष्य तक पहुँचा जा सके।

1.4 बोध प्रश्न

प्रश्न 01. वैयक्तिक समाज कार्य में सेवार्थी के समक्ष भावनाओं की उद्देश्यअभिव्यक्ति के सिद्धांत को कैसे प्रदर्शित करता है ?

प्रश्न 02. वैयक्तिक समाज कार्य में सिद्धांतों के उपयोग पर अपने विचार व्यक्त करें।

प्रश्न 03. वैयक्तिकरण तथा भावनाओं उद्देश्यपूर्ण प्रकटन के सिद्धांतों का विस्तृत वर्णन करें।

प्रश्न 04. वैयक्तिक समाजकार्य में अनिर्णायक मनोवृत्ति का सिद्धांत की भूमिका को स्पष्ट करें।

प्रश्न 05. निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिए:

1. स्वीकृति का सिद्धांत
2. गोपनीयता का सिद्धांत

प्रश्न 06 . वैयक्तिक सेवा कार्य के नियंत्रित भावनात्मक सम्मिलन का सिद्धांत उदाहरणसहित स्पष्ट करें।

1.5 संन्दर्भ एवं उपयोगी ग्रन्थ

- मिश्र, डॉ. पी.डी. (2008). *सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य.* लखनऊ: उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान।
- बीस्टिक, एफ.पी. (1957) .*केस वर्क रिलेशनशिप.* लंदन: अनविन हाइमन लिमिटेड।
- ग्रेस,मैथ्यू, (1922) .*एन इंट्रोडक्शन टू सोशल केस वर्क.* मुंबई: टी, आई, एस, एस,
- पर्लमैंन,एच. (1957) .*सोशल केस वर्क.* शिकागो: युनिवर्सिटी ऑफ शिकागो प्रैस,
- उपाध्याय, आर. के. (2008). *सोशल केस वर्क ए थेरेपिस्ट एप्रोच.* लखनऊ: रावत प्रकाशन।
- डेविडसन, ई.एच.(1970). *सोशल केस वर्क.* बाल्टीमोर: विलियम्स एण्ड विलियम्स कंपनी।

इकाई – 2 सहायता करने की सहायक तकनीकें

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 सामाजिक वैयक्तिक कार्य में सेवार्थी की सहायता करने की तकनीक-

2.2.1 स्वीकार्यता की तकनीक

2.2.2 संसाधन को गतिमान बनाना

2.2.3 परामर्श

2.2.4 सहायक के रूप में

2.2.5 भावों की अभिव्यक्ति को आसान बनाना

2.2.6 गहन भावों को संबद्ध करना

2.2.7 आत्मविश्वास जगाने और निर्मित करने की तकनीक

2.2.8 संचार कौशल

2.2.9 प्रोत्साहन और पुन: आश्वासन

2.2.10 सेवार्थी के साथ होना

2.2.11 पैरवी

2.2.12 भौतिक सहायता उपलब्ध कराना और जुटाना

2.2.13 जानकारी और सूचना का संवर्धन

2.3 सारांश

2.4 बोध प्रश्न

2.5 सन्दर्भ एवं उपयोगी ग्रन्थ

2.0 उद्देश्य - इस इकाई के अध्ययन करने के पश्चात आप -

- ❖ सेवार्थी की सहायता करने के लिए वैयक्तिक कार्य में प्रयुक्ततकनीक की अवधारणा की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- ❖ वैयक्तिक कार्य में प्रयुक्त विभिन्न तकनीकों का वर्णन कर सकेंगे ।

2.1 प्रस्तावना

सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य एक कला है जिसमें मानवीय संबंधों के विज्ञान के ज्ञान और संबंधों में निपुणता का उपयोग इस दृष्टि से किया जाता है कि व्यक्ति में उसकी योग्यताओं और समुदाय में साधनों को गतिमान किया जाए जिससे सेवार्थी और उसके पर्यावरण के कुछ या समस्त भागों के बीच उच्चतर समायोजन स्थापित हो सके । कार्यकर्ता द्वारा सेवार्थी के परिप्रेक्ष्य में यह प्रयास किया जाता है कि किस प्रकार से किन-किन प्रविधियों एवं तकनीकों से वह सेवार्थी के साथ मिलकर कार्य कर सके जिससे वैयक्तिक सेवाकार्य के प्रमुख दो लक्ष्यों- *प्रथम*, सेवार्थी को इस प्रकार से सहायता करना जब वह एकाकीपन महसूस कर रहा हो और समाज में अपना समायोजन स्थापित नहीं कर पा रहा हो और *द्वितीय* यह कि सेवार्थी के अहं के कार्यप्रणाली का संवर्धन जिससे वह अपने जीवन और

समस्याओं से निपटने के लिए अधिक योग्यता के साथ आगे बढ़े को प्राप्त किया जा सके। इन्हीं दो प्रमुख उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु कार्यकर्ता द्वारा कुछ तकनीकों का प्रयोग किया जाता है जो सेवार्थी की सहायता करने में सहायक होती है । इस इकाई में मुख्य रूप से सहायता करने की तकनीकों पर केंद्रित प्रमुख तेरह बिंदु ओं पर चर्चा की गई है एवं विषय पर स्पष्टता के लिए समुचित उदाहरणों का भी उल्लेख किया गया है।

2.2 सामाजिक वैयक्तिक कार्य में सेवार्थी की सहायता करने की तकनीक-

सामाजिक वैयक्तिक कार्य में सहायता करने के उपक्रम सेवार्थी और सेवाकर्ता के मध्य होता है। यह एक महत्वपूर्ण प्रक्रियायुक्त चरणबद्ध प्रणाली के रूप में भी देखी जा सकती है। सामाजिक वैयक्तिक कार्य में निम्नलिखित तकनीकों को प्रमुखत: देखा जा सकता है और उन्हें प्रयोग में भी लाया जा सकता है

2.2.1 स्वीकार्यता की तकनीक –

रेनोल्ड, वेरथा सी (1932), द्वारा दी गई परिभाषा में यह कहा गया कि वैयक्तिक सेवा कार्य में जब हम सेवार्थी को जैसा है, वैसा समझ लेते हैं तथा मानव साथी के रूप में उसका सम्मान करते हैं तो हम सेवार्थी को स्वीकृति प्रदान करते हैं । सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य में कार्यकर्ता द्वारा यह प्रयास किया जाता है कि सेवार्थी जैसा हो, उसे वैसा ही स्वीकार किया जाय जिससे सेवार्थी यह महसूस करता है कि वह सामाजिक कार्य की संस्था में स्वीकार्य है और वैयक्तिक कार्यकर्ता द्वारा स्वीकार्यता का सम्प्रेषण उसके द्वारा प्रयोग किये गए शब्दों में दिखाई देता है जिससे सेवार्थी को यह आभास हो जाता है कि वह संस्था एवं कार्यकर्ता द्वारा स्वीकार कर लिया गया है । कार्यकर्ता द्वारा स्वीकार्यता तब तक बनी रहनी चाहिए जब तक कि वह संस्था का सदस्य बना रहता है एवं उसकी समस्या का कोई उचित समाधान नहीं निकल पाता है । कुछ सेवार्थियों की स्वीकार्यता आसान होती है जैसे – कोई सेवार्थी अधिक कठिनाईयों को महसूस कर रहा है तो वहस्वयं ही स्वीकार्यता प्रदान कर देता है किंतु कुछ सेवार्थी ऐसे होते है जो कि खुद कर्ता होते हैं और अपने साथ-साथ दूसरों के जीवन में दुख लाते हैं । ऐसे व्यक्तियों के लिए स्वीकार्यता अधिक महत्वपूर्ण होती है, क्योंकि यह समझना आवश्यक होता है कि वे कौन से कारण है जो इस समस्या का कारण बने है । वैयक्तिक सेवा कार्य में स्वीकृति के कुछ विशिष्ट अंग बताए है जैसे- सम्मान करना, प्रेम करना, चिकित्सात्मक समझ, प्रत्यक्षीकरण, सहायता एवं प्राप्त करना । अत: स्वीकार्यता तकनीक के माध्यम से कार्यकर्ता द्वारा यह प्रयास किया जाता है कि वह सेवार्थी को उचित रूप से स्वीकार करें जिससे उसकी समस्या का निदान संभंव हो सके।

2.2.2 संसाधन को गतिमान बनाना-

सामाजिक वैयक्तिक कार्य के अंतर्गत व्यक्ति और समाज के बीच अन्योनाश्रित संबंध होता है तथा दोनों ही परस्पर प्रगति के लिए अग्रसर होते हैं । व्यक्ति अपने और समाज के लिए उन्नति तथा संसाधन का उपयोग करता हुआ समाज के संसाधनों का उपयोग करता है । जिसका संबंध उसकी बेहतरी के लिए होता है। समाज में उपलब्ध अधिकांशत: साधन सेवार्थी को बदलने के लिए प्रयोग किए जा सकते हैं। सामाजिक वैयक्तिक कार्य करने वाले कार्यकर्ता की यह जिम्मेदारी होती है कि वह इन साधनों को गतिमान कर इनका वैज्ञानिक पद्धति से कुशलतम प्रयोग कर सेवार्थी की समस्या के समाधान में साधक बन सकें जिससे उसकी समस्या का सही रूप से समाधान प्रस्तुत हो सके । संसाधनों को गतिमान बनाने से तात्पर्य यह है कि सेवार्थी के आस-पास एवं कार्यकर्ता की पहुँच तक जो भी

समस्या समाधान के लिए उचित साधन जैसे- सामाजिक वातावरण, पर्यावरण,स्थान, संस्थान, स्कूल इत्यादि हो उसका प्रयोग कार्यकर्ता द्वारा बड़ी ही सावधानी के साथ किया जाए जिससे सेवार्थी उचित समायोजन स्थापित कर सके। वैयक्तिक कार्यकर्ता सेवार्थी की कठिनाइयों एवं बाधाओं काभली-भाँति विश्लेषण और मूल्यांकन करता है। वहीं यह भी सुनिश्चित करता है कि इसका उपचार अथवा हल किस प्रकार से संभव है तथा समाज में उपलब्ध संसाधनों का उचित प्रयोग किस प्रकार से हो सकता है। इस प्रकार से वैयक्तिक सेवा करने वाले कार्यकर्ता संसाधनों की उपलब्धता तथा युक्तिशील प्रयोग को गतिमान बनाकर उनकी महत्ता निर्मित की जाती है। सेवार्थी की समस्याओं को केंद्रित करते हुए वैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग करके उसके लिए एक मार्गदर्शक का काम करता है। इस प्रकार सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य में यह तकनीक बडी ही महत्वपूर्ण साबित होती है।

2.2.3. परामर्श की तकनीक -

परामर्श एक कला एवं विज्ञान दोनों हैं। इसके लिए कार्यकर्ता में आवश्यक है कि उसमें विषय वस्तु के ज्ञान के साथ-साथ अनुशासन एवं आत्मिक विकास का भी होना आवश्यक होता है। अभिव्यक्ति तब होती है जब परामर्शदाता सेवार्थी तथा अपने बीच संबंधों को सुदृढ करने के लिए विभिन्न निपुणताओं का उपयोग करता है तथा सेवार्थी की स्वायत्ता बनाये रखने का समर्थन करता है। परामर्श के लिए यह आवश्यक होता है कि परामर्श दाता अच्छा सम्प्रेषक हो और यह सम्प्रेषण सावधानी पूर्वक अवलोकन करने पर निर्भर होता है। **हान तथा मैकलीन** ने परामर्श को परिभाषित करते हुए कहा है कि: परामर्श एक प्रक्रिया है जो एक समस्या से ग्रसित व्यक्ति जिनका वह स्वयं समाधान करने में असमर्थ है तथा एक व्यावसायिक कार्यकर्ता जो प्रशिक्षण तथा अनुभव के कारण दूसरों की सहायता करने में दक्ष है, के बीच घटित होती है और इस माध्यम से वह अनेक प्रकार की व्यक्तिगत कठिनाइयों का समाधान प्राप्त करता है। परामर्श समझ का व्यावहारिक मार्ग भी है। इसमें सामाजिक संस्थाओं में कार्य करने का अनुभवजैसे-जैसे होता है, वैसे-वैसे वैयक्तिक कार्यकर्ताओं में नएनए विचारों का निर्माण होता है। कुछ कार्यकर्ताओं को बिना किसी सामाजिक सेवा के सेवार्थियों को सहायता प्रदान करने की इच्छा होती है। इस संबंध में यह माना जाता है कि सेवाओं को उपलब्धकराने में मनोवैज्ञानिक तथा मनोविकास चिकित्सक दोनों ही समान होते हैं। परामर्श शब्द का उपयोग विभिन्न अर्थों में किया जाता है और यह भी कहा जाता है कि वैयक्तिक सेवाकार्य से संबंधित सेवार्थी को सहज और गहन ज्ञान प्रदान करता है जिसका सूक्ष्म स्तर कार्य की गहनता को सुनिश्चित करता है। परामर्श की प्रमुख भूमिका के स्पष्टीकरण से तात्पर्य है कि सेवार्थी को निश्चित मनोवृत्तियों और भावनाओंके प्रति जागरूक करना अथवा इस विषय से संबंधितवास्तविकताओं की स्पष्टता करना होता है। साथ ही व्यवस्था तथा सूचना देना इसके विषयों की व्याख्या करना सम्मिलित होता है। परामर्श के द्वारा सेवार्थी की समस्या को स्पष्ट करके उसके निवारण को सुदृढ़ करने का प्रयत्न किया जाता है। दूसरी ओर देखा जाए तो परामर्शका एक मनोवैज्ञानिक पहलू भी है। बिना किसी संस्थाके माध्यम से भी किसी समस्या का निवारण परामर्श द्वारा किया जा सकता है। परामर्श देते समय कार्यकर्ता का ध्यान सेवा से इतर समस्या पर होता है क्योंकि समस्या निवारण ही केंद्र बिंदु होता है।

2.2.4. सहायक के रूप में-

समाजकार्य कार्यकर्ता एक सहायक के रूप में समाज में या सेवार्थी के साथ सहायक का काम करता है। इसमें सहायक को कुछ बातों का ध्यान रखना होता है कि अगर सेवार्थी किसी समस्या से ग्रसित है और वह समाज में स्वयं को उपेक्षित महसूस करता है तो उसके साथ कार्यकर्ता को एक सहायक के रूप में कार्य करना होगा। इस क्रम में सेवार्थी को महसूस होना चाहिए कि कार्यकर्ता हमारे साथ है। वहीं कार्यकर्ता को चाहिए कि वह सहायक के रूप में सदैव तत्पर रहे न कि कार्यकर्ता के रूप में। व्यक्ति यदि चाहता है कि उसे एक सहायक की आवश्यकता है तभी

कार्यकर्ता को सहायक उपलब्ध कराना चाहिए। प्राय: सेवार्थी की जो इच्छा होती है वह सहायक पर निर्भर करती है। सहायक कार्यकर्ता की योग्यता अर्जित मानव व्यवहार व ज्ञान पर निर्भर करती है। स्नेह, सहयोग आदि गुणों के अतिरिक्त कार्यकर्ता में इस प्रकार का गुण हो कि वह अपनी जरूरतों और मन की प्रवृत्तियों और पूर्वाग्रहों कोनियंत्रण में रखकर सेवार्थी के हित में एक उचित सहायक के रूप में काम करे। कार्यकर्ता द्वारा की गई पहली सहायता दूसरे कार्यों को संभव बनाती है। उसके बाद सेवार्थी को अनुभव होने लगता है कि उसे एक सहायक की आवश्यकता है। इस प्रकार दोनों एक-दूसरे को स्वीकार करते हैं और निदान की ओर कदम बढ़ाते है। कार्यकर्ता इस तकनीक के माध्यम से सेवार्थी के प्रति हर संभंव प्रयास करता है कि किस प्रकार से वह सेवार्थी के साथ मिलकर उसके कदम से कदम मिलाकर वह कार्य को आगे बढाए और कार्य के मध्य आने वाली समस्याओं का समाधान किस प्रकार से खोजा जाए । कार्यकर्ता द्वारा हमेशा यह प्रयास किया जाता है कि सेवार्थी की समस्या समाधान में आने वाली रूकावटों का किस प्रकार उचित निराकरण किया जाए और साथ ही सेवार्थी समस्या समाधान में किस प्रकार की भूमिका अदा की जाए । अत: इस प्रकार से कार्यकर्ता इस तकनीक के माध्यम से सेवार्थी की समस्या समाधान में अपनी महती भूमिका को अदा करता है ।

2.2.5. भावों की अभिव्यक्ति को आसान बनाना

सेवार्थी द्वारा व्यक्त किए गए भावों की अभिव्यक्ति आवश्यक होती है और सामाजिक वैयक्तिक कार्यकर्ता के लिए भावों की अभिव्यक्ति को आसान बनाना आवश्यक होता है । सामाजिक वैयक्तिक कार्य के लिए सेवार्थी के पास प्रचुर मात्रा में शक्तिशाली भाव एकत्रित हो जाते हैं तो ये समस्या को जड़ से समाप्त करता है। इस प्रकार व्यक्ति के अहम् रूपी उपकरण को सीमित कर सकते हैं और समस्या का समाधान हल करने वाली योग्यता सेवार्थी द्वारा सरलीकृत की जा सकती है। चिड़चिड़ापन, गुस्सा, अपराध जैसी समस्या व्यक्ति की ऊर्जा को संक्रमित कर डालती है और उससे लडने के लिए व्यक्ति के पास संक्रमित ऊर्जा ही बचती है। परिणामस्वरूप सेवार्थी ऐसे विचारों के बोझ को ढो रहा होता है। उसे इस प्रकार के विचारों से मुक्त करने की जरूरत होती है। ध्यान केंद्रित करते हुए उचित गुणवत्ता वाले सवाल पूछकर, निर्णयात्मक वक्तव्यों से बचकर सेवार्थी विचारों और भावों की अभिव्यक्ति को सुदर और सुगम बनाता है। सामाजिक वैयक्तिक कार्य एक प्रोत्साहक और परिचालक के रूप में काम करता है इन सभी चीजों में सेवार्थी अपनी समस्या को पूरी तरह संभालने में प्रायोगिक तौर पर अभ्यस्त हो सके। इन सभी भावनात्मक तत्वों पर विशेष ध्यान दिया जाना, इस तकनीक के माध्यम से किया जाना चाहिए।

2.2.6. गहन भावों को संबद्ध करना-

कोई भी घटना, चाहे वह तनावपूर्ण हो या शारीरिक हो, किसी भी व्यक्ति में ऐसे भाव उत्पन्न कर सकती है जिससे उसके मानसिक विकास और सोचने की क्षमता पर गहरा असर पड़ सकता है। जब व्यक्ति का मस्तिष्क तनावपूर्ण और परेशान करने वालों तथ्यों से भरा होता है तब व्यक्ति अपने अंदर उतरने और नकारात्मकता उत्पन्न करने वाले मामले पर मनन करने के लिए प्रवृत्त होता है। नकारात्मकता और चिंतन के कारण व्यक्ति नकारात्मक सोच के संक्रमण में आता है और व्यक्ति के मन: पटल को घेर लेता है जिससे व्यक्ति की तर्कपूर्ण विचारशक्ति की संभावनाएं समाप्त हो जाती हैं। इन सभी चीजों में एक कर्ता का हस्तक्षेप सेवार्थी को बोलना, किसी भी स्थिति को नवीन रूप से आत्मसात करने, नव विचारों के लिए मार्ग प्रशस्त करने से सेवार्थी में स्वयं केंद्रित और मनन की नकारात्मक मानसिक क्रिया पर रोक लगाने में समर्थ हो सकता है। इस बीच होने वाली प्रक्रिया को वैज्ञानिक पद्धति से दिशा प्रदान की जाती है और भावों की शक्ति व नकारात्मक विचारों, तनाव पैदा करने वाली स्थिति को सही आकार में प्रक्षेपित किया जाता है जिससे सेवार्थी इन सभी क्रियाओं को देखकर स्थिति को नियंत्रित कर सके।

2.2.7. आत्मविश्वास जगाने और निर्मित करने की तकनीक -

सामाजिक वैयक्तिक कार्यकर्ता द्वारा सेवार्थी में आत्मविश्वास जगाने का काम प्रमुख होता है। इसलिए इसकी आवश्यकता को महत्व दिया जाता है। समस्या समाधान प्रक्रिया में सेवार्थी की पूर्ण भागीदारी होने के लिए उसके अंदर आत्मविश्वास निर्माण की आवश्यकता होती है। सेवार्थी को भली-भांति समझकर विभिन्न मजबूत पक्षों को उद्घघाटित करना चाहिए और उसे इन सकारात्मक पक्षों के बारे में बताना भी चाहिए। सेवार्थी द्वारा जो भी काम बेहतर और वैज्ञानिक ढंग से किया गया हो उसका पूरा श्रेय सेवार्थी को हीदेना चाहिए। सेवार्थी की जो शक्तियां है उन्हें सामने लाने का प्रयास करना चाहिए और सेवार्थी की कमजोरियों को दूर कर उसमें आत्मविश्वास का भाव जगाना चाहिए । ये प्रक्रिया पूर्ण रूप से सेवार्थी के अंदर निर्मित आत्मविश्वास को जागृत करने में मददगार साबित होती है।

2.2.8. संचार कौशल-

प्रत्येक कार्यकर्ता में सेवार्थी के प्रति परस्पर कार्य की विश्वसनीयता और सहजता को स्थापित किया जाना एक आवश्यक पहलू होता है। कार्यकर्ता का यह उत्तरदायित्व होता है कि वह अपनी बात, सुझाव, मदद, प्रस्ताव आदि को सेवार्थी के समक्ष रखे साथ ही उसे उचित अभिव्यक्ति भी दे सके। इसी कुशलता के लिए संचार कौशल की आवश्यकता महत्वपूर्ण साबित होती है। संचार कौशल में सेवार्थी के प्रति संवेदना,उत्साह व सहानुभूति प्रकट करने के साथ सकारात्मकता आदि को व्यक्त करने की दक्षता महत्वपूर्ण होती है। हांलाकि यह स्थिति पर निर्भर करेगा कि किस परिस्थिति में किस प्रकार का संचार करना उचित होगा। वहीं संचार कौशल के रूप में तकनीक का प्रयोग भी प्रासंगिक होता है। प्राय: संचार के किसी माध्यम का प्रयोग सेवार्थी या सेवार्थी समूह को बेहतर समझ विकसित करने में मदद करता है। यह एक प्रकार से बात रखने और परस्पर समझने की कला है जिसकी निपुणता का लाभ समाजकार्य के क्षेत्र में संचार कौशल के माध्यम से किया जा सकता है। वैयक्तिक कार्यकर्ता तब सफल माना जाता है जब वह सेवार्थी से संचार प्रक्रिया करने की प्रविधि में निपुण होता है । इसीसंदर्भ में के.ए.हसन ने तीन प्रकार से संचार कौशल को बताया है –

(1) ***सांवेगिक स्तर में संचार*** – जब कोई कार्यकर्ता (चिकित्सीय) सेवार्थी के प्रति सहिष्णुता तथा लगाव प्रदर्शित करते हुए उसकी समस्याओं कोध्यान पूर्वक सुनता है तो सेवार्थी के मन में यह भाव आने लगते है कि कार्यकर्ता उसमें रूचि ले रहा है तो वह गोपनीय तथ्यों को बताने में हिचकिचाहट महसूस नहीं करता है । संबंध घनिष्ठतभी बनते हैं जब सेवार्थी अपनी संपूर्ण बातों को कार्यकर्ता से बताए ।

(2) ***सांस्कृतिक स्तर पर संचार*** – कार्यकर्ता को पूर्व से अवगत होना चाहिए कि वह जिस सेवार्थी के साथ कार्य कर रहा है वह किस सांस्कृतिक परिवेश से है क्योंकि सांस्कृतिक वातावरण से सेवार्थी की समस्या का जुड़ाव कहीं न कहीं आवश्यक रूप से होता है अत: आवश्यक है कि सेवार्थी से सांस्कृतिक अनुकूलता के अनुसार व्यवहार करना चाहिए ।

(3) ***बौद्धिक स्तर पर संचार***- कार्यकर्ता को हमेशा यह प्रयास करना चाहिए कि सेवार्थी जिस बौध्दिक स्तर का है उसी के अनुसार वह संचार एवं व्यवहार करें अन्यथा सेवार्थी को कार्यकर्ता की बातें समझ नहीं आएगी । इस प्रकार से संचार कौशल तकनीक का प्रयोग करते समय इन उपर्युक्त बातों को ध्यान में रखना चाहिए ।

2.2.9. प्रोत्साहन और पुन: आश्वासन

इस प्रक्रिया में प्रोत्साहन और पुन: आश्वासन का प्रयोग सेवार्थी के पक्ष में किया जाना बेहद जरूरी होता है। एक सामाजिक वैयक्तिक कार्यकर्ता कभी-कभी सेवार्थी के किसी उमंग भरे प्रोत्साहन से या फिर अपरिचित कार्यों को डर-डर कर या फिर उनमें अपने आप को अपमानित देखने जैसा अनुभव करता है। लेकिन यह

सभी कार्य एक स्थिति को सही करने के लिए अत्यंत आवश्यक हो जाते हैं। प्रोत्साहन और पुन: आश्वासन का प्रयोग करते समय सामाजिक कार्यकर्ता को बताना आवश्यक होता है कि ऐसी स्थितियाँ तकनीक के प्रयोग के लिए उपयुक्त होती हैं। सेवार्थी को ऐसे कामों को करने के लिए विश्वास दिलाना चाहिए जिस काम को करने की योग्यता न हो तो इस प्रकार की सफलता के प्रति सेवार्थी को विश्वास दिलाना कि वह इस कार्य को कर सकते है और इसमें उसे सफलता मिले यह जरूरी नहीं। कार्यकर्ता से निरंतर कुछ न कुछ सीखना आवश्यक होता है। सेवार्थी को प्रोत्साहन और पुन:आश्वासन दिलाते रहना आवश्यक होता है। उदाहरण के लिए किसी मरीज का ऑपरेशन होना है तो जब तक ऑपरेशन करने वाला डॉक्टर सफलता का आश्वासन न दे तब तक एक कार्यकर्ता ऑपरेशन की सफलता का पक्का आश्वासन नहीं दे सकता।

2.2.10 सेवार्थी के साथ होना

इस तकनीक के माध्यम से कार्यकर्ता द्वारा यह प्रयास किया जाता है कि सेवार्थी जिस परिस्थिति, परिवार, वातावरण या फिर जिस समस्या से ग्रसित होकर स्वीकार्यता के साथ आगे आया है, कार्यकर्ता के लिए यह आवश्यक है कि वह इस सेवार्थी के साथ पूर्ण रूप से रहें और उसकी समस्या समाधान में सहायता करे। सेवार्थी के पास प्राय: आत्मविश्वास की कमी होती है या वह कोई आवश्यक कार्य को करने की बात पर अधिक से अधिक भार के नीचे दबा हुआ महसूस करता है तो वहां पर एक सामाजिक कार्यकर्ता की उपस्थिति सहायता का पूर्ण काम करेगी। वहां पर सेवार्थी की स्थिति के अनुसार उसके विवेकाधिकार के साथ उचित सुविधा दिलाना और सरल मित्रता के प्रभाव से प्रथक एक तकनीक बना देता है।

2.2.11. पैरवी

एक कार्यकर्ता सेवार्थी के नकारात्मकतायुक्त व्यवहार को बदलने के लिए कोई जोर जबरदस्ती, दबाव या धमकियों का प्रयोग नहीं करता है। इन सभी के बावजूद एक सामाजिक कार्यकर्ता के पास अपने कुछ अधिकार होते हैं जो उसे स्वयं के वैज्ञानिक ज्ञान और कौशल से संस्थान के निर्धारित कार्यों से समाज में सामान्यत: इसको स्वीकृति के रूप में प्राप्त होते है और यह सभी अधिकार समाज में कहीं लिखित रूप में उपलब्ध नहीं होते। इसके अपने ही उत्पाद होते हैं और अत्यधिक लाभकारी सिद्ध होते हैं। देश मे सामान्य लोगों में कुछ लोग ऐसे होते हैं जो एक सामाजिक कार्य के व्यक्तिगत सेवा वाले तत्व को स्वीकृति देते हैं और एक कार्यकर्ताओं के प्रतिवेदन तथा अपीलों को सम्मान देते हैं। ऐसे में कभी-कभी वह समय आ जाता है जब एक समाज कार्यकर्ता को पैरवी का प्रयोग करना पडता है। पैरवी करते समय सेवार्थी के समर्थन में सेवार्थी की ओर से तीसरे व्यक्ति का समर्थन माँगना जरूरी होता है।

2.2.12. भौतिक सहायता उपलब्ध कराना और जुटाना -

समाजकार्य में भौतिक सहायता उपलब्ध कराने से अर्थ है कि कोई मान्यता प्राप्त गैर सरकारी संस्था किसी सेवार्थी को आर्थिक और उपयोगी वस्तुओं की मदद करने सेहै। कई बार भिन्न-भिन्न तकनीक के माध्यम से दिए गए समर्थन के अलावा सेवार्थी को भौतिक सहायता जिसमें आर्थिक वस्तुओं के रूप मेंमदद की आवश्यकता होती है। बहुत सी संस्थाएं ऐसी होती हैं जिनके पास भौतिक सहायता के लिए स्वयं की नियमावली होती है। जिसका उद्देश्य कार्यक्षेत्र में कार्य-नियंत्रण व आत्मनियंत्रण युक्त होता है। परन्तु कई बार विपरीत स्थिति में कुछ संस्थाओं के पास नियमावली का अभाव होता है। परिणात: नियमावली नहीं होने की स्थिति में तो सेवार्थी के लिए धर्मार्थ-न्यास जैसी संस्थाएं, व्यक्तिगत सहायता और दान दाताओं तथा कुछ शुभचिंतकों की ओर से धन और वस्तुओं को एकत्रित करना होता है। विभिन्न मौकों पर सेवार्थी की जरूरत अलग-अलग प्रकार की होती है। इसके चलते सामाजिक

कार्यकर्ता को सेवार्थी के हित के लिए कई स्थानों से सहायता दिलानी होती है। इसको संसाधन संग्रहण कहा जाता है। इन सभी चीजों के लिए सामाजिक कार्यकर्ता को संभावित संसाधन संपन्न व्यक्तियों को ढूँढना होता है और सेवार्थी की आवश्यकताओं को पूरी तरह से व्याख्या करने की प्रक्रिया के तरीके द्वारा कुछ नवीन खोज कार्य करने की आवश्यकता होती है। कभी-कभी सेवार्थी के हित हेतु बैंक ऋण भी लिया जाता है। इन सभी चीजों को छोड़कर कुछ मामलों में आत्मनिर्भर संगठनों से भी सहायता प्राप्त की जाती है। और कुछ आत्मनिर्भर व्यक्ति जरूरतमंद व्यक्तियों की सहायता के लिए भी आगे आते हैं। इस प्रकार से कार्यकर्ता द्वारा इस तरह का प्रयास किया जाता है कि सेवार्थी के हित हेतु भौतिक सहायता को उपलब्ध कराया जाए और किस तकनीकों के माध्यम से इन सुविधाओं को जुटाया जाय । अत: यह प्रयास कार्यकर्ता द्वारा निरंतर किया जाता है ।

2.2.13. जानकारी और सूचना का संवर्धन

सूचना और जानकारी एक अभौतिक संसाधन है। अगर इन चीजों की कमी होती है तो समस्या जन्म ले सकती है। यदि समस्या पहले से ही है तो निश्चित तौर पर इसमें बढोत्तरी ही होगी। इससे निश्चित तौर पर नुकसान ही होगा। कई बार ऐसा होता है कि सूचना का न पहुँचना या संदेश आदि का गलत पहुँचना एक समाज को अंधविश्वास की ओर खींचता है। उदाहरण के लिए- निश्चित वैज्ञानिक विधियों के बारे में अनेक गलत मान्यताएं प्राप्त होती है। समाज में ऐसा माना जाता है कि यदि किसी व्यक्ति को चेचक हो जाता था तो उसके पूरे शरीर पर फोड़े और फुंसियां निकल आती हैं। ऐसे में समाज में लोग भयभीत होकर कहने लगते हैं कि देवी जी निकल आई हैं जबकि वैज्ञानिक दृष्टि से यह एक संक्रमण होता है। इस स्थिति में सेवार्थी के ज्ञान का संसाधन का संवर्धन वैयक्तिक कार्य में एक महत्वपूर्ण तकनीक बन जाती है।

2.3 सारांश –

सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य समाज कार्य में प्रयुक्त की जाने वाली ऐसी प्रणाली है जिसके द्वारा समस्या ग्रस्त व्यक्ति की सहायता उचित वैज्ञानिक आधारों पर की जाती है । कार्यकर्ताओं द्वारा इस प्रणाली का प्रयोग कुछ महत्वपूर्ण तकनीकों के साथ किया जाता है जिसकी सहायता से कार्यकर्ता सेवार्थी की समस्या समाधान में सहायक की भूमिका अदा करता है ।स्वीकार्यता की तकनीक के माध्यम से , सेवार्थी को जैसा है वैसा समझ लेते हैं तथा मानव साथी के रूप में उसका सम्मान करते हैं तो हम सेवार्थी को स्वीकृति प्रदान करते हैं । संसाधनों को गतिमान से सामाजिक वैयक्तिक कार्य करने वाले कार्यकर्ता की यह जिम्मेदारी होती है कि वह इन साधनों को गतिमान कर इनका वैज्ञानिक पद्धति से कुशलतम प्रयोग कर सेवार्थी की समस्या समाधान में साधक बन सकें जिससे उसकी समस्या का सही रूप से समाधान प्रस्तुत हो सकें । परामर्श तकनीक के माध्यम से यह आवश्यक हो जाता है कि परामर्शदाता अच्छा सम्प्रेषक हो और यह सम्प्रेषण सावधानी पूर्वक अवलोकन करने पर निर्भर होता है। सहायक के रूप में भी कार्यकर्ता सेवार्थी के साथ सहायक होकर काम करता है। भावनात्मक रूप से सेवार्थी की हर स्थिति में कुछ हद तक भावना जुड़ी होती है। यह भी संभव होता है कि इसकी सीमा घटती-बढती जाती है। इन सभी चीजों में सेवार्थी अपनी समस्या को पूरी तरह संभालने में प्रायोगिक तौर पर अभ्यस्त हो सके। इन सभी भावनात्मक तत्वों पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए। आत्मविश्वास जगाने और निर्मित करने की तकनीक के माध्यम से कार्यकर्ता द्वारा यह प्रयास किया जाता है कि किस प्रकार से सेवार्थी में आत्मविश्वास जगाया जाए। समस्या की समाधान प्रक्रिया में सेवार्थी की पूर्ण भागीदारी होने के लिए उसके अंदर आत्मविश्वास निर्माण की आवश्यकता होती है। इसके अतिरिक्त संचार कौशल,प्रोत्साहन और पुन: आश्वासन,सेवार्थी के साथ होना, पैरवी, भौतिक सहायता उपलब्ध कराना और जुटाना

एवं जानकारी और सूचना का संवर्धन कराना ऐसीतकनीक है जिनकी सहायता से कार्यकर्ता सेवार्थी की सहायता का प्रयास करता है।

अत: उपरोक्त बिंदुओं के आधारपर यह कहा जा सकता है कि सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य के क्षेत्र हेतु सहायता करने के लिए वैयक्तिक और संस्थागत दोनों स्तर पर सहायता की तकनीक को समुचित विकसित किया जा सकता है। इस पद्धति से सेवार्थी और सेवाकर्ता के लिए एक मध्यस्थता हेतु आधारभूत प्रक्रिया का निर्माण होता है जिसके फलस्वरूप सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य के क्षेत्र में गुणवत्तापरक परिणाम निर्मित किए जा सकते हैं।

2.4 बोध प्रश्न

प्रश्न 01. सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य में तकनीकों को स्पष्ट करें।

प्रश्न 02. सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य की प्रक्रिया में स्वीकार्यता तकनीक से क्या तात्पर्य है ?

प्रश्न 03 वैयक्तिक सेवाकार्य द्वारा सेवार्थी को भौतिक सहायता मुहैया कराने अथवा जुटाने में कैसे सहायता करता है?

प्रश्न 04. वैयक्तिक कार्यकर्ता किस प्रकार से सेवार्थी में आत्मविश्वास निर्मित करता है ?

प्रश्न 05. कार्यकर्ता सेवार्थी को उसके भावों की अभिव्यक्ति में किस प्रकार मदद करता है ?

2.5 सन्दर्भ एवं उपयोगी ग्रन्थ

❖ प्रसाद मणिशंकर, सत्य प्रकाश, कुमार अरूण,कुमार संजय,सैफ मो.खान एवं सिंह अभव कुमार (2103). *यूजीसी नेट/जेआरएफ/स्लेट समाज कार्य*.दिल्ली: अरिहंत पब्लिकेशन(इण्डिया)लिमिटेड।

❖ तेज, संगीता. पाण्डेय तेजस्कर (2010). *समाज कार्य.* लखनऊ: जुबली एच फाउन्डेशन मिश्रा, प्रयागदीन (2003) *सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य,*लखनऊ : हिंदी संस्थान।

❖ सिंह, ए.एन., सिंह, नीरजा ,संजय,मिश्रा,सुषमा (2012). *सामूहिक कार्य.* हल्दानी : उत्तरायन प्रकाशन।

❖ इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विशवविद्यालय(2010).*व्यक्तियों के साथ कार्य करना*. दिल्ली: समाज कार्य विद्यापीठ।

❖ सिंह, ए.एन., सिंह, नीरजा ,संजय,मिश्रा,सुषमा (2012). *वैयक्तिक कार्य.* हल्दानी : उत्तरायन प्रकाशन।

❖ सुभान,अब्दुल(1998). *समाज मनोविज्ञान*. रांची: जानकी प्रकाशन अशोक राज पथ चौहटा।

❖ यादव,सियाराम (2010). *अधिगम कर्ता का विकास एवं शिक्षण अधिगम प्रक्रिया.* इलाहाबाद: शारदा पुस्तक भवन।

इकाई 3 सामाजिक वैयक्तिक कार्य प्रक्रिया

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य
3.1 प्रस्तावना
3.2 सामाजिक वैयक्तिक कार्य प्रक्रिया के चरण
3.3 सामाजिक अध्ययन
3.4 सामाजिक निदान (आकलन)
3.5 मध्यस्थता (उपचार)
3.6 समाप्ति (Termination)
3.7 मूल्यांकन (Evaluation)
3.8 सामाजिक कार्यकर्ता की भूमिका
3.9 सारांश
3.10 बोध प्रश्न
3.11 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

3.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप –

- सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य प्रक्रिया के विभिन्न चरणों से भली-भांति परिचित हो सकेंगे।
- सामाजिक वैयक्तिक कार्य प्रक्रिया के विभिन्न चरणों के मध्य संबंध को प्रदर्शित कर सकेंगे।
- सामाजिक वैयक्तिक कार्य अभ्यास में सामाजिक अध्ययन, आकलन, मध्यस्थता, समाप्ति तथा मूल्यांकन प्रक्रिया का अनुप्रयोग कैसे किया जाता है इसका वर्णन कर सकेंगे।?
- सामाजिक वैयक्तिक कार्य प्रक्रिया में कार्यकर्ता की भूमिका को रेखांकित कर सकेंगे।

3.1 प्रस्तावना

समाजकार्य एक व्यावसायिक सेवा है जिसकी तीन मूल्य प्रणालियाँ (सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य, सामाजिक सामूहिक कार्य और सामुदायिक संगठन) तथा तीन सहायक प्रणालियाँ (सामाजिक शोध, सामाजिक क्रिया और समाज कल्याण प्रशासन) है।

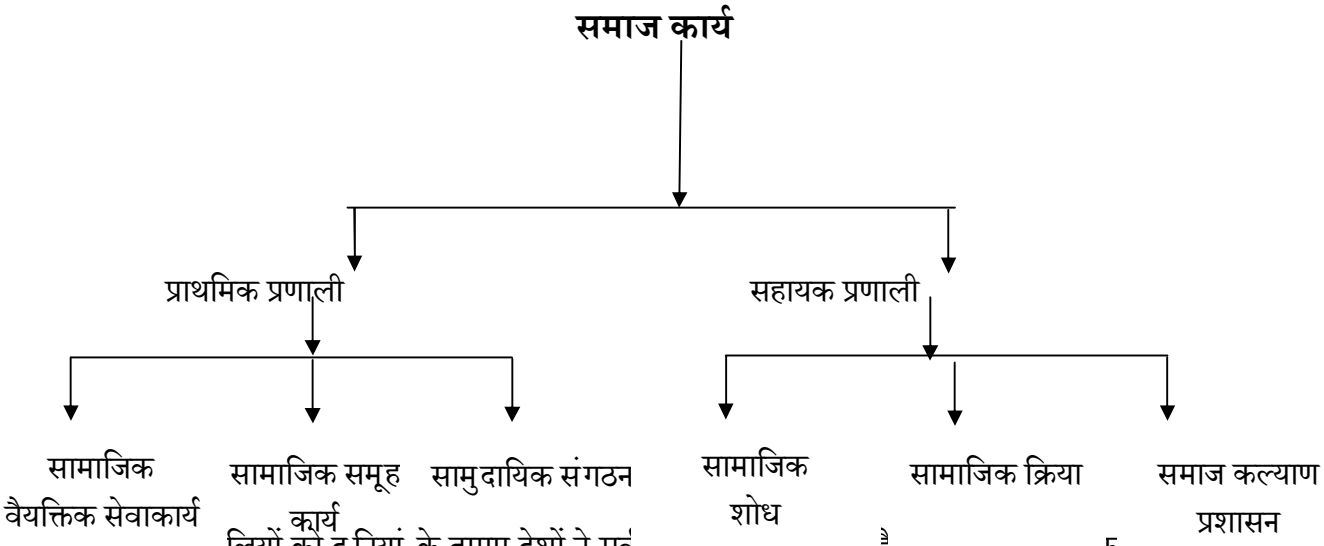

और इन दो प्रणालियों को दुनियां के तमाम देशों ने सर्वसम्मति से स्वीकारा गया है। सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य के संदर्भ में प्राय: यह कहा जाता है कि यह व्यावसायिक समाज कार्य की एक महत्वपूर्ण प्रणाली है जिसके द्वारा किसी समस्याग्रस्त व्यक्ति (Clint) की सहायता, समाज कल्याण संस्था (Agency) के माध्यम से प्रशिक्षण प्राप्त व्यावसायिक सामाजिक कार्यकर्ता (Social Work) द्वारा इस प्रकार से की जाती है कि व्यक्ति अपनी समस्या का स्वयं निकाल सके और अपने परिवेश में उचित समन्वय कर सके।

मैकाइवर एवं पेज ने मनुष्य को एक सामाजिक प्राणी के रूप में स्वीकारा है। अत: सामाजिक प्राणी कहने से तात्पर्य यह है कि व्यक्ति जिस समूह (Group) या समुदाय (Community) में रहता है वह उसी समूह-समुदाय के अनुरूप अपनी कार्य संस्कृति (Work Culture) को पूरा करता है। लेकिन कभी-कभी यह भी देखने का मिलता है कि उसी परिवेश में समाज का एक बड़ा तबका अपने आपको उस परिवेश में समायोजित नहीं कर पाते है और अनेकों मनोसामाजिक (Psycho-Social) समस्याओं से ग्रसित हो जाती है और समाज में अपना उचित समन्वय (Co-Ordination) नहीं कर पाते। अत: इन्हीं मनोसामाजिक समस्याओं से ग्रसित व्यक्ति को समाज कार्य की भाषा में सेवार्थी (Clint) कहा जाता है। इस प्रकार सेवार्थी वह होता है जो अपनी समस्याओं से निजात पाने के लिए किसी अभिकरण (Agency) के पास जाता है और उस अभिकरण में एक कार्यकर्ता या प्रशिक्षक होता है जो ज्ञान, विज्ञान से परिपूर्ण होता है और सेवार्थी की समस्या के अनुरूप एक प्रक्रिया (Process) के तहत सेवार्थी (Clint) की सहायता करता है। अत: सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य (Case Work) में जिसके माध्यम से सेवार्थी की सहायता की जाती है उसे हम प्रक्रिया (Process) कहते है, इसके विभिन्न प्रकार (अध्ययन निदान, उपचार, समाप्ति और मूल्यांकन) है जिसका अध्ययन हम इस इकाई में करेंगे।

3.2 सामाजिक वैयक्तिक कार्य प्रक्रिया के चरण

सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य (Case Work) की प्रक्रिया को मैरी रिचमण्ड (1917) ने तीन भागों - *अध्ययन, निदान* और *उपचार* में विभाजित किया लेकिन वर्तमान परिवेश को देखते हुए मौजूदा विद्वानों ने इस

प्रक्रिया को पाँच भागों- *अध्ययन, निदान, उपचार, समाप्ति* तथा *मूल्यांकन* में विभाजित कर उसका विस्तृत वर्णन प्रस्तुत किया है जो निम्नवत है :-

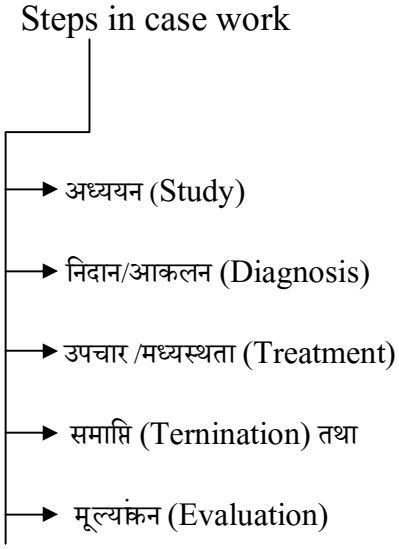

सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य में अध्ययन (Study) से तात्पर्य उस प्रक्रिया से है जिसके द्वारा केस वर्क (Case Work) को प्रारंभ किया जाता है और कार्यकर्ता सेवार्थी (Clint) की मनोसामाजिक (Psychosocial) समस्याओं काअध्ययन विस्तार से करता है। मैरी रिचमण्ड कहती है कि "सामाजिक अध्ययन में वैयक्तिक कार्य को उस प्रत्येक कारक को सुरक्षित करना चाहिए जो एक साथ होने पर तर्कपूर्ण तथा अनुमानित तर्क के जरिए, सेवार्थी के व्यक्तित्व तथा उपयुक्त उपचार, मध्यस्थता के लिए स्थिति को उजागर करेगा।"

सामाजिक वैयक्तिक कार्य में निदान आकलन के जरिए कार्यकर्ता सेवार्थी की समस्या से संबंधित तीन प्रश्नों का उत्तर ढूँढने की कोशिश करता है कि *समस्या क्या है? यह कैसे उत्पन्न हुई है? इसे दूर करने के लिए क्या किया जा सकता है?* इन्हीं तीन प्रश्नों के उत्तर के जरिए कार्यकर्ता सेवार्थी (Clint) समस्याओं की पहचान करनेकी कोशिश करता है।

केस वर्क में उपचार (मध्यस्थता से तात्पर्य सेवार्थी को क्षमतावान बनाना, उसके आत्मविश्वास को बढ़ाना और उसे सामाजिक रूप से विघटित होने से बचाना है। यह सेवार्थी के सुकून संतुष्टि तथा आत्मअनुभव को बढ़ाने के लिए होता है।

केश वर्क में समाप्ति (Termination) से तात्पर्य इस प्रक्रिया (अध्ययन, निदान और उपचार) को समाप्त करना है जो तब आरंभ हुई थी जब सेवार्थी सामाजिक वैयक्तिक कार्य मध्यस्थता (निदान) प्रक्रिया से गुजरने को सहमत हुआ था। समाप्ति प्रक्रिया का निर्णय सेवार्थी तथा कार्यकर्ता द्वारा अपनी सहमति से लिया जाता है। यह वह स्थिति होती है जब सेवार्थी को वर्तमान तथा विगत स्थितियों से निपटने की अपनी क्षमता में विश्वास हो जाता है।

केस वर्क में मूल्यांकन से तात्पर्य उस प्रक्रिया से है जिसमें यह जानने की कोशिश की जाती है कि क्या केस वर्क अपने वांछित लक्ष्य को प्राप्त कर चुका हैं और क्या सेवार्थी (Clint) अपनी विभिन्न मनोसामाजिक (Psychosocial) समस्याओं से वाकई निजात प्राप्तकर चुका है या अपनी समस्याओं को दूर करने में सक्षम हो चुका है? आदि प्रश्नों का उत्तर कार्यकर्ता जानने की कोशिश करता है।

वैयक्तिक सेवा कार्य की उपरोक्त प्रक्रिया के संदर्भ में फर्न लॉरी (1936) अपने विचारों को प्रकट करते हुए कहते है कि जिस प्रकार किसी रस्सी की लि डयोंको बीच से काट दिया जाता है तो वह उझलकर गिर जाती हैं ठीक उसी प्रकार इस केस वर्क की प्रक्रिया भी एक दूसरे से गुथी हुई है, अगर इसमें से किसी एक के बिना इस प्रक्रिया को आगे बढ़ाया जाए तो वाकई कहीं न कहीं सेवार्थी की समस्या, समस्या ही बनकर रह जाएगी।

3.3 सामाजिक अध्ययन

सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य प्रक्रिया में सामाजिक अध्ययन एक सर्वप्रथम चरण माना जाता है जिसके माध्यम से कार्यकर्ता यह प्रयास करता है कि किस प्रकार से सेवार्थी को आवश्यक सहायता प्रदान की जा सकती है। कार्यकर्ता यह आकलन करता है कि सेवार्थी की समस्या का रूप क्या है? कार्यकर्ता को यह भी सीखना चाहिए कि सेवार्थी अपनी समस्या को किस रूप में देखता है, वह क्या सोचता/सोचती है कि वह उस बारे में क्या कर सकता/सकती है, उसने स्वयं अपनी समस्या के बारे में क्या प्रयत्न किया है और सेवार्थी ने अपनी वर्तमान समस्या को किस हद तक पहचाना है ? सामाजिक अध्ययन प्रक्रिया में व्यक्ति-सेवार्थी या परिवार के आकलन से कहीं परे होकर अध्ययन किया जाता है। अंतस्मनोचिकित्सकीय शक्तियाँ मनुष्य में आपस में जुडी होती है। इसलिए व्यक्ति के समस्त पहलुओं को समझने के लिए परिवार के सदस्योंके अतिरिक्त अन्य सामाजिक व्यक्तियों से भी संबंधों को जानना अत्यंत आवश्यक होता है। सेवार्थी निरंतर स्वयं ही यह प्रयास करता है कि उसकी वास्तविक समस्या क्या है? उसकी मूल जड़ तक वह पहुँचने का प्रयास करता है। सेवार्थी की स्थिति में कौन से कारक अत्यधिक प्रभावित कर सकते है यह तथ्य कार्यकर्ता को अवगत होना चाहिए। जिससे सेवार्थी की मूल समस्या तक पहुँचा जा सके।

'सामाजिक अध्ययन एक ऐसी महत्वपूर्ण प्रक्रिया है जिसके अंतर्गत विभिन्न सहायता प्रक्रियाएँ, कार्य तथा मध्यस्थता की तकनीकें निर्मित होती है। यह प्रक्रिया हर एक गतिविधि में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है चाहे वह सामाजिक कार्य गतिविधि हो,चाहे वह वैयक्तिक स्तर पर हो, पारिवारिक स्तर पर हो या समुदाय या समाज के स्तर पर हो, सामाजिक अध्ययन एक अभिन्न रूप में प्रत्येक गतिविधि में महत्वपूर्ण होता हैं। सामाजिक अध्ययन वैयक्तिक कार्य प्रक्रिया में सेवार्थी तथा उसके परिवार की वर्तमान सामाजिक स्थिति एवं वास्तविकताओं को ज्ञात करने में, प्रमुख समस्या क्षेत्र को पहचाने तथा आवश्यक समाजकार्य हस्तक्षेप, पुनर्स्थापना तथा अनुरक्षण रणनीतियाँ निरूपित करने में कार्यकर्ता की सहायता करता है।

- **पर्लमैन ने सामाजिक वैयक्तिक कार्य प्रक्रिया में सामाजिक अध्ययन के चरणों को निम्न प्रकार से बताया है:**

- वर्तमान समस्या की प्रकृति
- वर्तमान समस्या की प्रासंगिकता
- समस्या के कारण, प्रारम्भ तथा अवक्षेप
- समस्या को हल करने हेतु किये गए प्रयास
- हल की प्रकृति अथवा वैयक्तिक कार्य संस्थाकी ओर से माँगे गए अन्तिम लक्ष्य
- इस संस्थाकी वास्तविकता प्रकृति तथा सेवार्थी और उसकी समस्या के संबंध में इसके समस्याहल करने के उपाय

- **तरीका**

पर्लमैन के अनुसार प्रारम्भिक चरणों हेतु चार तरीके सुझाए हैं :

1) सेवार्थी के साथ सम्बद्ध होना
2) सेवार्थी को उसकी समस्याओं के बारे में बात करने में मदद करना
3) ध्यान केन्द्रित करना और विभाजन करना
4) सेवार्थी को संस्था के साथ संलग्न होने में मदद करना

➢ **वैयक्तिक कार्य अध्ययन प्रक्रिया में उपकरण तथा तकनीक**

1) साक्षात्कार
2) उद्देश्य का अवलोकन
3) रिकार्ड तथा दस्तावेजों की जाँच
4) गौण स्रोतों से सूचना एकत्र करना
5) पारिवारिक सदस्यों से सूचना एकत्र करना
6) विशेष परीक्षण अथवा जाँच

साक्षात्कार एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके माध्यम से साक्षात्कार सेवार्थी के व्यवहार के विभिन्न पक्षों को समझता है और यह महसूस करता है कि सेवार्थी के लिए क्या आवश्यक होगा इसका आकलन भी करता है । साक्षात्कारकर्ता को सेवार्थी के संवेगात्मक भावों को समझना चाहिए, सूचनाओं को देते समय सेवार्थी कब़कहाँ और कितना रूकता है इस ओर ध्यान देना चाहिए और सेवार्थी में दु:ख या दुश्चिन्ता की भावनाओं को समझना चाहिए। सेवार्थी जिस भाषा का प्रयोग कर रहा है उस भाषा को ही कार्यकर्ता को बोलना चाहिए जिससे सेवार्थी आसानी से प्रश्नों के उत्तर दे सके । अवलोकन का तात्पर्य एक तरह से महसूस करना होता है जिसमें कार्यकर्ता द्वारा यह प्रयास किया जाता है कि वह सेवार्थी से जुडे हुए प्रत्येक पहलू को महसूस करे। अवलोकन प्रक्रिया हमेशा ही साक्षात्कार के साथ जुडी होती है। यह सेवार्थी के व्यवहार को सही करना सम्भव बनाती है। इससे वार्तालाप के माध्यम से यह ज्ञात करने का प्रयास किया जाता है कि जो सेवार्थी की समस्या है उसका मूल कारण क्या है? समस्या के कारणों में पारिवारिक हस्तक्षेप क्या है? इस प्रक्रिया से समस्या समाधान के संकेत प्राप्त किए जा सकते है । रिकार्ड तथा दस्तावेजों की जाँच के माध्यम से कार्यकर्ता सेवार्थी से जुड़ेहुए प्रत्येक तथ्यों को ध्यान से देखता है एवं महत्वपूर्ण बातों को अंकित कर लेता है जिससे उससे जुड़ी गोपनीय तथ्यों की जानकारी प्राप्त की जा सकती है । गौण स्रोतों से सूचना एकत्र करना भी एक कार्यकर्ता के लिए सूचना स्त्रोत का माध्यम है जिसके द्वारा कार्यकर्ता उन सूचनाओं को भी खोजने का प्रयास करता है जो गौण है और किसी तरह सामने नहीं है । परिवार सूचना संग्रहण की एक प्रमुख इकाई माना जाता है जिससे कार्यकर्ता परिवार के अन्य सदस्यों से अलग-अलग रूप से जानकारियों को एकत्रित करता है और अंत में सभी को मिलाकर समस्या संबंधी जानकारी को प्राप्त करता है । कार्यकर्ता आवश्यकता पड़ने पर विशेष परीक्षण अथवा जाँच भी करता है जिससे तथ्यों को स्पष्ट रूप से इंगित किया जा सके।

➢ **सामाजिक वैयक्तिक कार्य अध्ययन से संबंधित विभिन्नपक्ष**

सामाजिक वैयक्तिक कार्य प्रक्रिया में सेवार्थी से जुड़े प्रत्येक तथ्य की जानकारी लेना अत्यंत आवश्यक होता है जिससे कि तथ्यपरक सूचनाओं को एकत्रित किया जा सके । सेवार्थी की वर्तमान स्थिति को ज्ञात किया जा सके जिससे यह आकलन लगाया जा सकता है कि सेवार्थी की कौन-कौन सी समस्याएं प्रमुख रूप से हैं और उन समस्याओं का निदान कैसे किया जा सकता है । विगत में क्या सेवार्थी ने अपनी समस्या को हल करने का कोई प्रयास किया है? और

समस्या से जुडे अन्य व्यक्ति कौन है ? इसके अतिरिक्त यह भी अध्ययन करना आवश्यक है कि सेवार्थी जिस परिवेश में रह रहा है उस परिवेश ने उसे कितना प्रभावित किया है और सेवार्थी ने भी परिवेश को कितना प्रभावित किया है । स्पष्ट तथा प्रभावी निदान केवल तभी सम्भव है जब सेवार्थी और उसके परिवार के अंतर्निजी संबंधों के संदर्भ में उनके आर्थिक, मनोवैज्ञानिक तथा सांस्कृतिक कारकों का अध्ययन कार्यकर्ता द्वारा किया जाय।

➢ **सामाजिक वैयक्तिक कार्य के कौशल** –

सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य प्रक्रिया में कार्यकर्ता द्वारा कुछ महत्वपूर्ण कौशलों को प्रयोग करना अत्यंत आवश्यक हो जाता है जिससे कि संपूर्ण प्रक्रिया को सरलता पूर्वक क्रियान्वित किया जा सके जिसमें प्रमुख प्रक्रियाएँनिम्नवत है :

- सर्वप्रथम कार्यकर्ता में वर्तमान स्थिति का आकलन एवं तथ्यों को विश्लेषण करने का कौशल होना चाहिए।
- सेवार्थी से जुड़े प्रत्येक व्यक्ति द्वारा बताई गई बातों को ध्यान से सुनना आवश्यक कौशल है ।
- हमेशा कहा जाता है कि कार्यकर्ता को ऐसी भाषा का प्रयोग करना चाहिए जिससे कि सामने वाला आपकी बातों को स्पष्ट रूप से समझ सके और उत्तर दे सके ।
- साक्षात्कार की संपूर्ण प्रक्रिया को निर्देशित करने का कौशल

इस प्रकार यह संपूर्ण प्रथम चरण प्रक्रिया है जिसका प्रयोग कार्यकर्ता वैयक्तिकरण की प्रक्रिया के साथ प्रारंभ कर देता है ।

3.4 सामाजिक निदान (आकलन)

सामाजिक निदान वैयक्तिक कार्य प्रक्रिया में दूसरे चरण के रूप में जाना जाता है । यह वैयक्तिक कार्य का आकलन संबंधी चरण होता है जो व्यक्ति से संबंधित वास्तविक आधार ज्ञान प्रदान कराता है। सामाजिक निदान प्रक्रिया के माध्यम से सेवार्थी की वास्तविक स्थिति तक पहुँचने का प्रयास किया जाता है । यह उस समस्या के कारण की खोज है जिसकी वजह से सेवार्थी, सहायता हेतु कार्यकर्ता के पास आया था। सामाजिक अध्ययन से प्राप्त जानकारी के अनुसार यह निष्कर्ष तक पहुँचने का कार्य करता है। इस प्रक्रिया में मुख्यरूप से यह ज्ञात किया जाता है कि सेवार्थी की पृष्ठभूमि क्याहै? सेवार्थी मानव व्यवहार तथा सामाजिक वास्तविकताओं के बारे में क्या जानता है ? सेवार्थी की वास्तविक समस्या क्या है ? समस्या को प्रभावित करने वाले कौन-कौन से कारक हैं ? ऐसे कौन से बदलाव लाए जा सकते हैं जिनसे सेवार्थी की समस्या को कम अथवा खत्म करने का प्रयास किया जा सकता है? और अंत में यह प्रयास किया जाता है कि वैयक्तिक कार्यकर्ता सेवार्थी की सहग्रता किस प्रकार से इन उपर्युक्त उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु कर सकता है

निदान को और विस्तृत रूप से समझने हेतु विभिन्न विद्वानों द्वारा निम्नलिखित परिभाषाओं का प्रतिपादन किया गया है -

रिचमण्ड, मेरी (1917) ने सामाजिक निदान को परिभाषित करते हुए कहा कि, *सामाजिक निदान, जहाँ तक सम्भव हो एक सेवार्थी के व्यक्तित्व तथा सामाजिक स्थिति की एक यथार्थ परिभाषा पर पहुँचने का प्रयत्न है।*

सजफ्लोरेन्स (1950) ने निदान को तीन रूपों में विभाजित करते हुए परिभाषित किया है-

- ✓ *ज्ञात तथ्यों (दर्शनीय तथा मनोवैज्ञानिक तथ्य) के आधार पर संरचित एक व्याख्या है।*
- ✓ *दूसरे सम्भव व्याख्याओं को ध्यान में रखते हुए एक व्याख्या है।*

✓ *जब सम्बन्धित विषय भिन्न व्याख्या प्रस्तुत करता है तो इसमें परिवर्तन एवं मूल्यांकन भी सम्भव हैं।*

कुछ अन्य विद्वानों ने सामाजिक निदान को निम्नलिखित रूप से परिभाषित किया है :-

काकेरिल, इलेनर है., लईस जे लेरमैन एण्ड अदर्स (पिट्सवर्ग फैकल्टी ग्रुप) 1973 निदान *अध्ययन द्वारा प्रकाश में लाए गए तथ्यों की व्याख्या एवं संयोजक है तथा सम्पूर्ण घटना की एक परिभाषा और इसके व्यवहार तथा विकास की व्याख्या एवं ज्ञान प्रदान करता है। इसका उद्देश्य कारण को निश्चित करनातथा भविष्यवाणी करना कि किस प्रकार से एक परिभाषित दशा में प्राणधारी जीव व्यवहार करेगा।* "निदान, जैसा कि निदानात्मक सम्प्रदाय ने देखा है, समस्या के कारणों की खोज है जो सेवार्थी को कार्यकर्ता के पास सहायता के लिए लाती है। उन्होंने आगे कहा कि समस्या के कारण मनोवैज्ञानिक तथा सामाजिक दोनों होते है। अतः निदान का सम्बन्ध मनोवैज्ञानिक या व्यक्तित्व के कारकों, जो सेवार्थी की समस्या से कारणात्मक सम्बन्ध रखते हैं और सामाजिक या पर्यावरणीय कारक जो इसको स्थिर रखते हैं, के ज्ञान से है।

निदान के प्रकार

पर्लमैन ने निदान की तीन प्रकार की व्याख्या दी है जिनका प्रयोग सामाजिक वैयक्तिक कार्य प्रक्रिया में किया गया हैं :

- गत्यात्मक निदान (Dynamic Diagnosis)
- क्लिनिकल निदान (Clinical Diagnosis)
- रोगमूलक निदान (Etiological Diagnosis)

गत्यात्मक निदान (Dynamic Diagnosis)

वैयक्तिक कार्य प्रक्रिया में सेवार्थी की वर्तमान समस्या तथा अन्य संबंधित कारकों, उनके प्रभावों तथा परस्पर संबंधों का ज्ञान आवश्यक होता है। इस ज्ञान को गत्यात्मक निदान कहते है क्योंकि जैसे –जैसे ज्ञान में वृद्धि होती है निदान में भी अंतर होता जाता है। यह निदान सेवार्थी तथा सेवार्थी के भीतर, सामाजिक परिवेश के भीतर तथा उसके परिवेश के बीच कार्यरत शक्तियों की एक समझ देता हैं। गत्यात्मक निदान निम्न तथ्यों को स्पष्ट करता है :

✓ समस्या क्या है?

✓ कौन से मनोसामाजिक, मनोवैज्ञानिक, शारीरिक तथा सामाजिक कारक इस समस्या की प्रक्रिया में सहायक हैं?

✓ ऐसे कौन-कौन से कारक है जिनसे समस्या प्रभावित हो सकती है?

✓ सेवार्थी समस्या समाधान हेतु क्या उपाय किया जाय ?

✓ वे कौन-कौन से साधन है जो सेवार्थी की वर्तमान स्थिति में उपलब्ध है ?

✓ संस्था में समस्या समाधान के कौन-कौन से साधन एवं माध्यम उपलब्ध है जिनकी सहायता से सेवार्थी की समस्या का समाधान निकाला जा सकता है ?

क्लिनिकल निदान (Clinical Diagnosis)

सेवार्थी की वास्तविक समस्या (रोग) को,समस्या के आधार पर वर्गीकृत करने की प्रक्रिया को क्लिनिकल निदान कहा जाता है। जब समस्त तथ्यों एवं सूचनाओं का अन्वेषण एवं परीक्षण करने के पश्चात जब यह ज्ञात हो जाता है कि सेवार्थी की वास्तविक समस्या का कारण स्वयं सेवार्थी का व्यक्तित्व है तब उसके व्यक्तित्व के कुसमायोजन तथा व्यक्तित्व अकार्यात्मकता को मूल्यांकित किया जाता है जिसे क्लिनिकल निदान कहा जाता है। इस निदान के माध्यम से सेवार्थी के समाज में समायोजन स्थापित न कर सकने वाले कारकों एवं व्यवहारों का वर्णन प्रस्तुत किया जाता है। इस प्रकार की समस्या से ग्रस्त व्यक्ति मनोविकार चिकित्सक के पास जाता है और मनोविकार द्वारा

समस्या ग्रस्त व्यक्ति का इलाज किया जाता है। जब कोई समाज में कुसमायोजन स्थापित करने वाला व्यक्ति संस्था में इलाज हेतु आता है तो यह हमेशा ही आवश्यक नहीं होता कि व्यक्ति का क्लिनिकल निदान ही किया जाय। क्लिनिकल निदान के लिए आवश्यक होता है कि सर्वप्रथम व्यक्ति के रोग संबंधी कारणों काअध्ययन किया जाय और यह स्पष्ट हो जाय कि व्यक्तित्व विकार ही सामाजिक विकार का कारण है, तब क्लिनिकल निदान को लागू किया जाता है। क्लिनिकल निदान द्वारा व्यक्ति की समस्या,उसकी आवश्यकता, चिकित्सा प्रक्रिया एवं व्यवहार को प्रदर्शित किया जाता है। परन्तु क्लिनिकल निदान के अनेकों गुणों के साथ-साथ इसके कुछ अवगुण भी है जिससे यह वैयक्तिक कार्य प्रक्रिया में आंशिक समझा जाता है। क्लिनिकल निदान सेवार्थी की मनोसामाजिक स्थिति,उसकी प्रकृति उसका सेवार्थी, संस्था, उद्देश्य से क्या संबंध है यह स्पष्ट नहीं करता।

रोगमूलक निदान (Etiological Diagnosis)

समस्या की शुरूआत एवं प्रभावी कारणों को जानना ही रोगमूलक निदान कहलाता है ।यह निदान सेवार्थी की प्रारंभिक समस्या से जुड़ा होता है। मूलत वह समस्या जो सेवार्थी की व्यक्तित्व के बाहरी-रूपरेखा अथवा कार्य में निहित है। रोगमूलक निदान भी क्लिनिक निदान की भांति एकाकी होता है क्योंकि पूर्व कारकों के महत्व को इससे स्पष्ट नहीं किया जा सकता। कारण प्रभाव, कारण के आधार पर समस्या का वास्तविक निदान करना एक दुष्कर कार्य है। इस प्रकार के निदान के माध्यम से सामने आई समस्या की प्रकृति, सेवार्थी तथा जिन तरीकों से सहायता की जा सकती है इन्हें समझने में सहायक बनाया जा सकता है।

इस प्रकार निदानात्मक प्रक्रिया सेवार्थी एवं कार्यकर्ता दोनों को निर्देशन के माध्यम से सहायता पहुंचाने का कार्य करती है। प्रक्रिया के रूप में समस्या के स्वरूप को सेवार्थी की आन्तरिक तथा बाह्य शक्तियों के कारणों को ध्यान में रखकर निश्चित किया जाता है। वैयक्तिक सेवाकार्य की प्रक्रिया में यह निदान एक दिशा प्रदान करते है जिसके माध्यम से कार्य को सुचारू और सुव्यवस्थित बनाया जा सकता है।

3.5 मध्यस्थता/ उपचार/ चिकित्सा (Treatment)

सामाजिक वैयक्तिक कार्य मध्यस्थता या जिसे हम उपचार या चिकित्सा (Treatment) की प्रक्रिया भी कहते है, से तात्पर्य सेवार्थी में समस्या के कारण जो हताशा या निराशा व्याप्त हो जाती है उस हताशा को दूर कर सेवार्थी का पुर्नस्थापन, अनुरक्षण एवं संवर्धन करना है जिससे सेवार्थी समाज में समायोजन स्थापित कर पाए। जब निदान का कार्य सम्भव हो जाता है तब उपचार की प्रक्रिया को प्रारंभ किया जाता है। अनेक विद्वानों ने उपचार को परिभाषित किया। है होलिस ने उपचार को मौखिक तथा अमौखिक संचारों की क्रमबद्धता के रूप बताया है। इन संचारों का विभिन्न आधारों पर वर्गीकरण किया गया है। हेमेल्टन ने परिभाषित करते हुए कहा कि उपचार समस्याग्रस्त व्यक्ति की सहायता की दिशा में निर्दिष्ट सभी गतिविधियों तथा सेवाओं का कुल योग होता है। इसमें केंद्रित त्वरित समस्या से छुटकारा पाने तथा यदि व्यवहार्य हो तो किसी भी मूल कठिनाई की संशोधित करने पर होता है। सामाजिक वैयक्तिक कार्य प्रक्रिया सेवार्थी के साथ प्रारंभिक सम्पर्क से आरम्भ होती है और कई मध्यस्थता की प्रक्रिया एवं चरणों से होकर गुजराती है जो कि निम्नवत है :

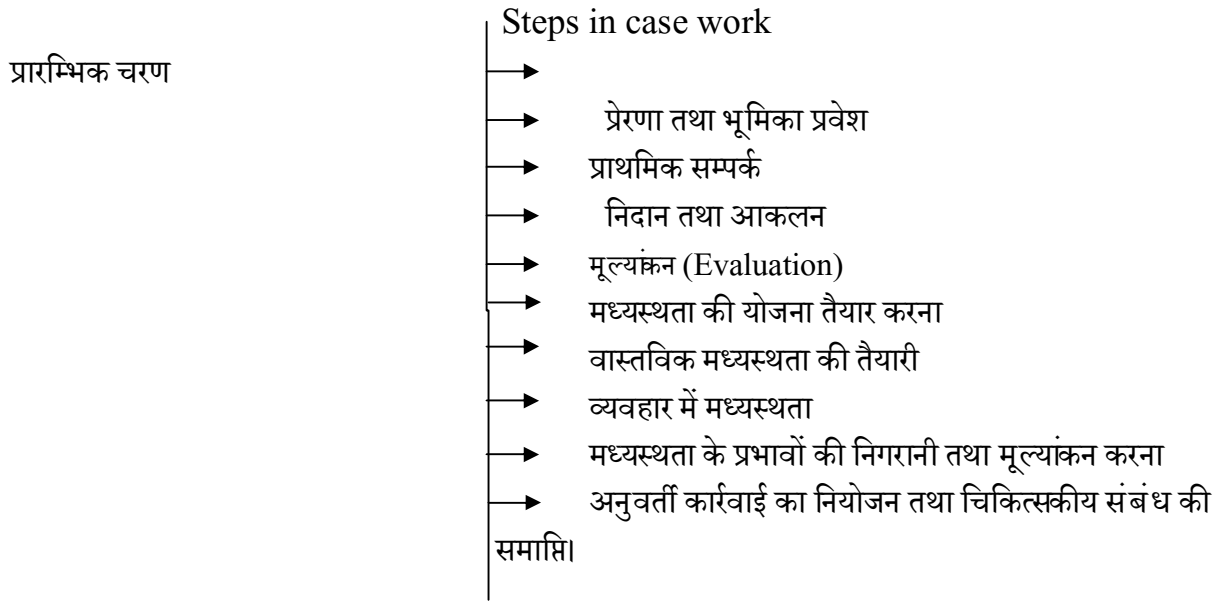

Steps in case work

प्रारम्भिक चरण

- प्रेरणा तथा भूमिका प्रवेश
- प्राथमिक सम्पर्क
- निदान तथा आकलन
- मूल्यांकन (Evaluation)
- मध्यस्थता की योजना तैयार करना
- वास्तविक मध्यस्थता की तैयारी
- व्यवहार में मध्यस्थता
- मध्यस्थता के प्रभावों की निगरानी तथा मूल्यांकन करना
- अनुवर्ती कार्रवाई का नियोजन तथा चिकित्सकीय संबंध की समाप्ति।

सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य प्रक्रिया में चिकित्सा या उपचार प्रणाली एक महत्वपूर्ण प्रणाली के रूप में जानी जाती है। इस प्रक्रिया के माध्यम से वैयक्तिक कार्य के उद्देश्यों को प्राप्त करने में सहायता प्राप्त होती है। उपचार प्रक्रिया में उन तमाम प्रविधियों एवं कौशलों का प्रयोग किया जाता है जिससे कि सेवार्थी के सामाजिक समायोजन में वे सार्थक साबित हो सके।

उपचार/चिकित्सा प्रक्रिया का अर्थ :

उपचार से तात्पर्य व्यक्ति की शारीरिक व्याधियों के रोग-मुक्त होने से समझा जाता है। लेकिन औषधिशास्त्र में रोग पूर्णत: समाप्त नहीं होता और उसकी पुनरावृति की सम्भावना हमेशा बनी रहती है। यह रोग बस कुछ समय के लिए नियंत्रित हो जाता है। वैयक्तिक सेवाकार्य प्रक्रिया में भी कुछ ऐसे रोग होते है जिनको दूर किया जा सकता है जैसे एक पर्यावरणीय प्रभाव के कारण समाज में समायोजन स्थपित न कर सकने वाले व्यक्ति को दूसरे स्थान पर पहुँचाकर उसकी पर्यावरण समायोजन संबंधी समस्या को दूर किया जा सकता है।अपने प्रति तथा दूसरे अन्य व्यक्तियों के प्रति मनोवृत्तियो में परिवर्तन लाया जा सकता है। बिगड़ती हुई स्थिति को नियंत्रित किया जा सकता है। लेकिन यह पर्यावरणीय परिवर्तन केवल व्यक्ति की व्यक्तिगत तथा सामाजिक स्थिरता पर ही निर्भर करता है जिसका वह स्वयं एक भाग है इसके अतिरिक्त जीवन की अन्य घटनाओं के लिए भी वह उसी पर निर्भर होता है।

उपचार प्रक्रिया के उद्देश्य :

- सेवार्थी को सामाजिक रूप से विघटित होने से बचाना और उसे क्षमतावान बनाना।
- सेवार्थी के सामाजिक स्तर को बनाए रखने में सहायता करना।
- सेवार्थी का सर्वांगीण विकास करना जिससे उसमें आत्म विश्वास को बढ़ाया जा सके।

उपचार की प्रक्रिया में प्रयुक्त की जाने वाली प्रविधियां :

वैयक्तिक सेवा कार्य प्रक्रिया एक चरणबद्व प्रक्रिया के साथ की जाती है । इस प्रक्रिया में कुछ महत्वपूर्ण प्रविधियों की भी आवश्यकता पड़ती है जिसको भिन्न-भिन्न विद्वानों द्वारा भिन्न-भिन्न प्रकार से विश्लेषित करने का प्रयास किया है। है*मिल्टन* ने उपचार की प्रविधियों को निम्न प्रकार से बांटा हैं:

- ✓ प्रत्यक्ष उपचार
- ✓ परिवेश संबंधी संशोधन उपचार
- ✓ व्यावहारिक सेवा प्रदान करने संबंधी उपचार

➢ **प्रत्यक्ष उपचार :**

प्रत्यक्ष उपचार प्रविधि में कार्यकर्ता द्वारा सेवार्थी में संवेगात्मक संतुलन बनाए रखने के लिए उसकी मनोवृत्तियों को स्पष्ट करके सेवार्थी में अपेक्षित एवं उसके मनोसामाजिक परिवर्तन लाने का प्रयास किया जाता है। प्रत्यक्ष उपचार के दौरान कुछ विशिष्ट तकनीकें जैसे-परामर्श, चिकित्सकीय साक्षात्कार इत्यादि तकनीकों का सहारा लिया जाता है। परामर्श तकनीक सेवार्थी द्वारा तब उपयोग में लाई जाती है जब सेवार्थी अपनी समस्याओं को सुलझाने में असमर्थ होता है और इस समस्या समाधान हेतु किसी अन्य व्यक्ति की सहायता लेता है । वो व्यक्ति अपने ज्ञान एवं अनुभव के द्वारा सेवार्थी की समस्या समाधान हेतु उपयुक्तनिराकरण प्रस्तुत करता है। यह एक मनौवैज्ञानिक सहायता है जो सेवार्थी को प्रदान की जाती है । इसका उपयोग सदैव विवाह, व्यवसाय, विद्यालय इत्यादि से संबंधित परामर्श जैसे विशिष्ट प्रयोजनों के लिए किया जाता हैं ।

चिकित्सकीय साक्षात्कार तकनीक का प्रयोग उस समय किया जाता है जबकि परिवेश में अन्तर-मनोचिकित्सकीय द्वन्द्व अथवा व्यवहारगत खामी सामने आती है। इस साक्षात्कार प्रक्रिया का उद्देश्य मनोचिकित्सा होता है जिसका लक्ष्य व्यक्तित्व, सक्षमता तथा आत्म-वास्तवीकरण पर होता है। इस प्रक्रिया के द्वारा सेवार्थी स्वयं उसके परिवेश तथा उससे संबद्ध व्यक्तियों के बारे में स्पष्टीकरण करता है ।

➢ **परिवेश संबंधी संशोधन उपचार:**

व्यक्ति के तनाव पूर्ण जीवन से छुटकारा हेतु इस उपचार तकनीक का उपयोग किया जाता है । सामाजिक वैयक्तिक कार्य प्रणाली में हमेशा यह प्रयास किया जाता है कि सेवार्थी किस प्रकार से समाज एवं उनमें रहने वाले व्यक्तियों के साथ समायोजन स्थापित कर पाए यही प्रयास किया जाता है । कार्यकर्ता का यही प्रयास होता है कि वह सेवार्थी की समस्या समाधान हेतु उचित माध्यमों का उपयोग करे जिससे सेवार्थी उन्हें आसानी से ग्रहण कर सके । सेवार्थी की भावनात्मक, व्यवसायगत, मनोरंजनात्मक गतिविधियों को ध्यान में रखकर योजना का निर्माण किया जाता है । कार्यकर्ता सेवार्थी के आस-पास (परिवेश) रहने वाले सदस्यों को उचित सलाह देता है और उनकी अभिवृति को अनुकूल रूप से संशोधित करने का प्रयास करता है । इस तकनीक के माध्यम से कुछ गतिविधियाँ ऐसी कराई जाती है जिससे सेवार्थी के तनाव को कम किया जा सके जैसे- शिविर, सामूहिक अनुभव गतिविधियाँ, गृह सेवाएं, प्रशिक्षण कार्यक्रम इत्यादि । इस प्रविधि के माध्यम से सेवार्थी की आवश्यकताओं के अनुसार अभिभावकों, शिक्षकों, पति/पत्नी, नियोक्ता, मित्रों तथा संबंधियों की अभिवृति को बदलने तथासंशोधित करने के प्रयास भी किए जाते हैं।

➢ **व्यावहारिक सेवा प्रदान करने संबंधी उपचार:**

व्यावहारिक सेवा प्रदान करने संबंधी उपचारतकनीक के प्रयोग में कार्यकर्ता निदान एवं सेवार्थी की व्यक्तिगत क्षमताओं एवं साधनों के मूल्यांकन द्वारा प्राप्त तथ्यों का प्रयोग कर सेवार्थी की व्यावहारिक समस्याओं के समाधान का प्रयास करता है । कार्यकर्ता इस तकनीक के द्वारा सेवार्थी की व्यावहारिक आवश्यकताओं जैसे धन

चिकित्सा सहायता, स्कूली सहायता, छात्रवृत्तियाँ, अनाथालय, कानूनी सहायता, मनोरंजन सुविधाएं आदि की प्राप्ति हेतु सहायता करता है।

हैंकिस ने वैयक्तिक सेवा कार्य में उपचार की कुछ अलग प्रविधियों का उल्लेख किया है:

- **समन्वेषण की प्रक्रिया** –

यह प्रविधि मुख्य रूप से दो रूपों में कार्य करती है *प्रथम* यह अध्ययन की व्यापकता के प्रयोग में लाई जाती है और दू*सरी* तरफ यह उपचार की एक महत्वपूर्ण प्रविधि के रूप में भी जानी जाती है। इस संपूर्ण प्रक्रिया के करने से सेवार्थी को आत्मबोध, आकलन एवं आत्मबल की प्राप्ति होती है जिससे वह अपनी समस्या समाधान हेतु सशक्त होता/ होती है।

- **स्पष्टीकरण की प्रक्रिया** –

जब सेवार्थी को यह ज्ञात नहीं हो पाता है कि उसकी मूल समस्या क्या है तब इस स्पष्टीकरण की प्रविधि के द्वारा सेवार्थी को उसकी वास्तविकताओं से अवगत कराया जाता है। स्पष्टीकरण प्रविधि में एक विशिष्ट प्रविधि का की भी इस्तेमाल किया जाता है जिसे हम 'प्रतिरोधात्मक प्रविधि' कहते है।

- **अर्थ निरूपण की प्रक्रिया** –

सेवार्थी के अचेतन मन में जो धारणाएं व्याप्त हो जाती है उन धारणाओं का सूक्ष्मअध्ययन कर उसका निराकरण इस प्रविधि के द्वारा किया जाता है। यह प्रविधि सेवार्थी की गंभीर समस्याओं के समाधान हेतु प्रयोग में लाई जातीहै।

- **सम्बल की प्रक्रिया** –

इस प्रक्रिया के माध्यम से सेवार्थी की संवेदनाओं, चिन्ताओं तथा आशंकाओं के साथ पूर्ण सहानुभूति व्यक्त करते हुए सेवार्थी को भावनात्मक रूप से सशक्त बनाने का प्रयास किया जाता है। ताकि वह अपनी समस्या के लिए उपयुक्त निराकरण खोज पाए।

उपचार की अनेक प्रविधियों का वर्णन करने के पश्चात यह तथ्य प्रस्तुत होते हैं कि-

- ✓ सेवार्थी को हमेशा सम्मान दिया जाना चाहिए।
- ✓ कार्यकर्ता तथा सेवार्थी का संबंध प्रयोजनमूलक होना चाहिए।
- ✓ कार्यकर्ता को सेवार्थी के समस्त पहलूओं पर ध्यान देना चाहिए।
- ✓ कार्यकर्ता को यह आभास होना चाहिए की सेवार्थी एक परिवार, समुदाय व समाज का सदस्य है तथा उसके प्रति उसकी संपूर्ण जवाबदारी बनती है।
- ✓ वैयक्तिक कार्यकर्ता में सेवार्थी के प्रति निष्ठा एवं सहानुभूति का भाव होना चाहिए।

3.6 समाप्ति (Termination) :

वैयक्तिक सेवा कार्य प्रक्रिया एक चरणबद्व प्रक्रिया है जिसको कई चरणों से होकर गुजरना पड़ता है। इसमें ही एक मुख्य चरण है जिसको समाप्ति या समापन का चरण कहा जाता है। समापन का तात्पर्य उस प्रक्रिया का समापन है जो कि कार्यकर्ता या किसी संस्था के द्वारा अन्त:क्षेप की प्रक्रिया में शामिल होने से प्रारंभ हुई थी। यह प्रक्रिया अध्ययन,निदान तथा उपचार के बाद उपयोग में लाई जाती है। इस प्रक्रिया का निर्णय सेवार्थी तथा वैयक्तिक कार्य द्वारा आपसी सहमति से लिया जाता है। यह वह स्थिति है जब कार्यकर्ता को यह विश्वास हो जाता है कि सेवार्थी अब अपनी समस्याओं और आवश्यकताओं को समझने में सक्षम हो गया है और उसके जीवन में आने वाली

समस्याओं का वह निदान कर सकता है तब यह प्रक्रिया कार्यकर्ता द्वारा उपयोग में लाई जाती है ।समापन प्रक्रिया को समाप्त करने के पूर्व कार्यकर्ता को निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए :

- समाप्ति प्रक्रिया को अचानक या एकाएक नहीं करनी चाहिए ।
- समापन प्रक्रिया चरणबद्ध तरीके से होनी चाहिए ताकि सेवार्थी पर निर्भरता न्यूनतम हो सके।
- कार्यकर्ता को सेवार्थी से सबंद्ध सम्पर्कों की आवृत्ति तथा मात्रा धीरे-धीरे कम करनी चाहिए। विशेषकर निरंतर घटते क्रम में अनुवर्ती कार्रवाई की योजना होनी चाहिए।
- समाप्ति के औपचारिक कार्यक्रम के पश्चात कार्यकर्ता को पहले दो सप्ताह, फिर एक महीना, फिर तीन महीने, छह महीने और एक वर्ष में अनुवर्ती दौरा करना चाहिए ।

3.7 मूल्यांकन (Evaluation)

मूल्यांकन एक सतत और निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है जिसके माध्यम से समूह के प्रत्येक पहलू का अध्ययन किया जाता है। मूल्यांकन को परिभाषित करते हुए मिल्टन गार्डन (1952) ने बताया है कि मूल्यांकन निर्णय करने वाली एक प्रक्रिया है जो निश्चित करती है कि व्यक्ति, कार्यकर्ता तथा संस्था का क्या उत्तरदायित्व है ? उनको पूरा करने की कितनी क्षमता है? क्या-क्या शक्तियाँ है? कौन-से कार्य रचनात्मक सहयोग प्रदान करते है तथा कौन-से कार्य समस्या को जटिल बनाते हैं? इस प्रकार मूल्यांकन उद्देश्य का दार्शनिक एवं नैतिक ज्ञान है। मूल्यांकन प्रक्रिया के माध्यम से वैयक्तिक कार्य के प्रत्येक पहलू पर पुनः ध्यान दिया जाता है जिससे यह प्रतीत हो जाता है कि संपूर्ण प्रक्रिया में कोई गलती तो नहीं हुई है यदि कुछ गलत हुआ हो तो उसे सही कैसे किया जाए एवं जो सकारात्मक पहलू प्राप्त हुए हैं उन्हें और अधिक प्रभावी कैसे बनाए जाए? इन समस्त बातों पर ध्यान दिया जाता है। सभी वैयक्तिक प्रयत्नों में मूल्यांकन आवश्यक समझा जाता है। यह सेवार्थी का आवश्यक अंग होता है तथा कार्यकर्ता का प्रथम उत्तरदायित्व है कि वह इस दिशा में सदैव प्रयत्नशील रहे। वैयक्तिक कार्य प्रक्रिया में कार्यकर्ता द्वारा निम्नलिखित स्थितियों का मूल्यांकन किया जाता है :

- **समस्या का मूल्यांकन-** सर्वप्रथम कार्यकर्ता सेवार्थी की समस्या का मूल्यांकन करता है। इस प्रक्रिया के माध्यम से कार्यकर्ता सेवार्थी की विभिन्न समस्यों के प्रकार, समस्या से ग्रसित होने के समय, समस्या के मूल कारण,सेवार्थी द्वारा समस्या समाधान के प्रयास एवं सेवार्थी ने अपनी समस्या समाधान हेतु कितने प्रयास किए है, का मूल्यांकन इस प्रक्रिया में किया जाता है।
- **सेवार्थी के व्यक्तित्व का मूल्यांकन** – कार्यकर्ता इस प्रक्रिया में सेवार्थी के समग्र व्यक्तित्व समस्या के समाधान के दृष्टिकोण से आकलन करता है ।इसमें कार्यकर्ता सेवार्थी के व्यवहार,उसके अनुभव, उसकी निर्णय शक्ति के प्रकार तथा सेवार्थी के आन्तरिक एवं बाह्य दबाव का मूल्यांकन करता है ।
- **सेवार्थी के सामाजिक पर्यावरण का मूल्यांकन** – सामाजिक पर्यावरण के मूल्यांकन में कार्यकर्ता सेवाओं की परिस्थितियों ,घटनाओं तथा संबंधित सामाजिक वातावरण का अध्ययन करता है। इसके अंतर्गत सेवार्थी के पर्यावरण के प्रति विचारों, भावनाओं तथा धारणाओं का मूल्यांकन किया जाता है ।

अतः इस प्रकार से वैयक्तिक कार्य प्रक्रिया में मूल्यांकन अवस्था को महत्वपूर्ण माना जाता है जो कार्यकर्ता द्वारा किए गए कार्यो और सेवार्थी की समस्या समाधान प्रक्रिया का आकलन करता है ।

3.8 सामाजिक कार्यकर्ता की भूमिका –

वैयक्तिक कार्य प्रक्रिया में कार्यकर्ता सेवार्थी की समस्याओं एवंआवश्यकताओं को ध्यान में रखकर अपनी भूमिका को निभाता है। सामाजिक कार्यकर्ता को प्रत्येक चरण में एक विशेषज्ञ होना होता है जो मानव व्यवहार तथा जीवन स्थितियों को समझने में सक्षम होता है। कार्यकर्ता का सर्वप्रथम यह प्रयास रहता है कि वह अपने सेवार्थी की आवश्यकताओं एवं समस्याओं को समझे एवं उन्हें सुलझाने में सहायता करें। अतः वह उन स्रोतों का पता लगाता है जिनसे आवश्यकताओं की पूर्ति हो सकती है ।कार्यकर्ता सेवार्थी को एक विशेषज्ञ एवं परामर्शदाता की भाँति आवश्यकता पड़ने पर एक सलाह देने का कार्य करता है। वह समस्या का विश्लेषण करता है तथा उसका निदान किस प्रकार से किया जाय उसका हल खोजता है। समय-समय पर वह कार्यो का मूल्यांकन भी करता है । जिस प्रकार एक चिकित्सक मरीज के रोगों के अध्ययन के पश्चात उचित इलाज करता है, उसी प्रकार एक कार्यकर्ता सेवार्थी की कुछ मुख्य समस्याओं को चयनित कर उनका समाधान करने में सेवार्थीकी सहायता करता है। कार्यकर्ता सेवार्थी की सहायता समस्या निर्धारण तथा समस्या समाधान के तरीकों को प्राप्त करने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका को अदा करता है।

अतः उपर्युक्त आधारों पर यह कहा जा सकता है कि वैयक्तिक कार्यकर्ता प्रक्रिया के प्रत्येक चरण में प्रारंभ से समापन तक अपनी महत्वपूर्ण भूमिका को निभाता है एवं इन आधारों पर वह सेवार्थीकी समस्या का समाधान करने में सहायक होता है ।

3.9 सारांश:

सम्पूर्ण अध्ययन करने के पश्चात यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि सामाजिक वैयक्तिक कार्य प्रक्रिया एक अत्यंत ही सावधानीपूर्वक की जाने वाली प्रक्रियाहै जिसमें प्रत्येक चरण का अपना महत्व है । इस संपूर्ण प्रक्रिया में यदि एक भी चरण में कोई गलती हो जाती है तो संपूर्ण कार्य प्रक्रिया प्रभावित होती है अतःप्रत्येक चरण को बड़ी सावधानीपूर्वक सम्पन्न करना चाहिए। विद्वानों द्वारा दिए गए मुख्य चरण में हमारे द्वारा मुख्य5 चरणों का उल्लेख किया गया है – प्रथम चरण **सामाजिक अध्ययन** का चरण माना जाता है जिसमें कार्यकर्ता यह प्रयास करता है कि किस प्रकार से सेवार्थी को आवश्यक सहायता प्रदान की जा सकती है इसका आकलन किया जाता है। कार्यकर्ता यह आकलन करता है कि सेवार्थी की समस्या का रूप क्या है । कार्यकर्ता को यह भी सीखना चाहिए कि सेवार्थी अपनी समस्या को किस रूप में देखता है, वह क्या सोचता/सोचती है कि वह उस बारे में क्या कर सकता/सकती है, उसने स्वयं अपनी समस्या के बारे में क्या प्रयत्न किया है और सेवार्थी ने अपनी वर्तमान समस्या को किस हद तक पहचाना है । **सामाजिक निदान (आकलन)** सामाजिक निदान वैयक्तिक कार्य प्रक्रिया में दूसरे चरण के रूप में जाना जाता है । यह वैयक्तिक कार्य का आकलन संबंधी चरण होता है जो व्यक्ति से संबंधित वास्तविक आधार ज्ञान प्रदान कराता है। सामाजिक निदान प्रक्रिया के माध्यम से सेवार्थी की वास्तविक स्थिति तक पहुँचने का प्रयास किया जाता है । यह उस समस्या के कारण की खोज है जिसकी वजह से सेवार्थी, सहायता हेतु कार्यकर्ता के पास आया था। सामाजिक अध्ययन से प्राप्त जानकारी के अनुसार यह निष्कर्ष तक पहुँचने का कार्य करता है। सामाजिक वैयक्तिक कार्य मध्यस्थता या जिसे हम **उपचार या चिकित्सा (Treatment)** की प्रक्रिया भी कहते है, तीसरे चरण के रूप में जानी जाती है। इस प्रक्रिया द्वारा सेवार्थी में समस्या के कारण जो हताशा या निराशा व्याप्त हो जाती है उस हताशा को दूर कर सेवार्थी का पुनर्स्थापन, अनुरक्षण एवं संवर्धन करने का प्रयास किया जाता है जिससे सेवार्थी समाज में समायोजन स्थापित कर पाये । चौथा चरण **समाप्ति (Termination)** प्रक्रिया का होता है जिसका निर्णय सेवार्थी तथा वैयक्तिक कार्यकर्ता द्वारा आपसी सहमति से लिया जाता है। यह वह स्थिति है जब कार्यकर्ता को यह विश्वास हो जाता है कि सेवार्थी अब अपनी समस्याओं औरआवश्यकताओं को समझने में सक्षम हो गया है और उसके जीवन में आने वाली

समस्याओं का वह निदान कर सकता है तब यह प्रक्रिया कार्यकर्ता द्वारा उपयोग में लाई जाती है और अंत में **मूल्यांकन प्रक्रिया**के माध्यम से वैयक्तिक कार्य के प्रत्येक पहलू पर पुनः ध्यान दिया जाता है जिससे यह प्रतीतहो जाता है कि संपूर्ण प्रक्रियामें कोई गलती तो नहीं हुई है यदि कुछ गलत हुआ हो तो उसे सही कैसे किया जाए? एवं जो सकारात्मक पहलू प्राप्त हुए हैं उन्हें और अधिक प्रभावी कैसे बनाए जाए? इन समस्त बातों पर ध्यान दिया जाता है। इन समस्त चरणों को सुचारू रूप से क्रियान्वित करने के लिए वैयक्तिक कार्यकर्ता अपनी महती भूमिका को निभाता है जिससे की संपूर्ण प्रक्रिया को आसानी के साथ सम्पन्न किया जा सके।

3.10 बोध प्रश्न:

प्रश्न 01 सामाजिक वैयक्तिक कार्य में प्रयुक्त किए जाने वाले विभिन्न चरणों की व्याख्या कीजिए।

प्रश्न 02 सामाजिक अध्ययन से आपका क्या तात्पर्य है ?

प्रश्न 03. सेवार्थी की समस्या के किन-किन महत्वपूर्ण पक्षों को ध्यान में रखना चाहिए ?

प्रश्न 04 सामाजिक वैयक्तिक कार्य हेतु वैयक्तिक कार्यकर्ता की भूमिका को स्पष्ट कीजिए।

प्रश्न 05 समापन अवस्था को विस्तारपूर्वक समझाइए।

3.11 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

- मिश्रा, प्रयागदीन (2003). *सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य.* लखनऊ : हिंदी संस्थान।
- प्रसाद मणिशंकर, सत्य प्रकाश, कुमार अरूण,कुमार संजय,सैफ मो.खान एवं सिंह अभव कुमार (2103). *यूजीसी नेट/जेआरएफ/स्लेट समाज कार्य.*दिल्ली. अरिहंत पब्लिकेशन(इण्डिया)लिमिटेड।
- तेज, संगीता. पाण्डेय तेजस्कर (2010). *समाज कार्य.* लखनऊ: जुबली एच फाउन्डेशन।
- सिंह, ए.एन., सिंह, नीरजा ,संजय,मिश्रा,सुषमा (2012). *सामूहिक कार्य.*हल्दानी : उत्तरायन प्रकाशन।
- इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विशवविद्यालय(2010). *व्यक्तियों के साथ कार्य करना.* दिल्ली: समाज कार्य विद्यापीठ।
- सिंह, ए.एन., सिंह, नीरजा ,संजय,मिश्रा,सुषमा (2012). *वैयक्तिक कार्य.*हल्दानी : उत्तरायन प्रकाशन।
- सुभान,अब्दुल(1998). *समाज मनोविज्ञान.* रांची: जानकी प्रकाशन अशोक राज पथ चौहटा।
- यादव,सियाराम (2010).*अधिगम कर्ता का विकास एवं शिक्षण अधिगम प्रक्रिया.* इलाहाबाद: शारदा पुस्तक भवन।

इकाई 4 – वैयक्तिक कार्य के उपकरण

इकाई रुपरेखा

4.0 उद्देश्य
4.1 प्रस्तावना
4.2 उपकरण के रूप मे भ्रमण कार्य
4.3 उपकरण के रूप मे गृह भ्रमण
4.4 अवलोकन
4.5 घटना का अध्ययन
4.6 बातों को ध्यान से सुनना
4.7 साक्षात्कार कुशलता
4.8 सम्बन्ध स्थापन
4.9 अभिलेखन
4.10 पर्यवेक्षण
4.11 रिपोर्ट लेखन
4.12 सारांश
4.13 बोध प्रश्न
4.14 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

4.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन करने के पश्चात आप -

- ❖ सर्वप्रथम आप भ्रमण के महत्व को परिभाषित सकेंगे।
- ❖ ग्रह भ्रमण से होने वाले लाभ के बारे में जान सकेंगे और साथ ही संबंध स्थापन की प्रक्रिया एवं महत्व को रेखांकित कर सकेंगे।
- ❖ अवलोकन क्या होता है और किसी भी घटना का अध्ययन कैसे किया जाता है, का वर्णन कर सकेंगे।
- ❖ सेवार्थी या अन्य व्यक्तियों द्वारा कही गई बातों को ध्यान से क्यों सुनना चाहिए इसे जान सकेंगे एवं साक्षात्कार कुशलता से अवगत हो सकेंगे।
- ❖ अभिलेखन एवं पर्यवेक्षण के महत्वको प्रस्तुत कर सकेंगे।
- ❖ रिपोर्ट लेखन में सक्षम हो सकेंगे।

4.1 प्रस्तावना

सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य प्रक्रिया समाज कार्य की एक प्रणाली के रूप में प्रयुक्त की जाने वाली प्रमुख प्रणाली है इस प्रणाली के माध्यम से कार्यकर्ता द्वारा यह प्रयास किया जाता है कि वह किस प्रकार से सेवार्थी की समस्याओं को समझे और उन्हें कैसे दूर करें इसी रूप में वैयक्तिक कार्य के कुछ महत्वपूर्ण उपकरण होते है जिनको एक यंत्र के रूप में

उपयोग किया जाता है और सेवार्थी की संपूर्ण समस्या का अध्ययन कर एवं विस्तृत ब्यौरा प्रस्तुत कर समाधानकरने का प्रयास किया जाता है। वैयिक्तक कार्य प्रणाली में यह उपकरण कार्य को एक क्रमबद्वता प्रदान करते है एवं समस्या समाधान के लिए प्रभावी भूमिका अदा करते है। वैयक्तिक कार्यकर्ता द्वारा सर्वप्रथम क्षेत्र का दौरा किया जाता है जहाँ उसे समस्या से संबंधित समस्त तथ्यों का ज्ञान हो जाता है तत्पश्चात वह गृह भ्रमण करता है जिसमें सेवार्थी के माता-पिता, भाई-बहन, चाचा-मामा एवं अन्य व्यक्तियों से संपर्क स्थापित कर सेवार्थी के संदर्भ में आवश्यक सूचनाओं को एकत्रित करता है और साथ ही साथ परिवार की आर्थिक, सामाजिक एवं भौगोलिक स्थिति से भी परिचित होता है। कार्यकर्ता घटना से संबंधित समस्त तथ्यों को एकत्रितएवं अवलोकन करता है और घटना से जुड़े प्रत्येक व्यक्ति एवं सेवार्थी की बातों को ध्यान से सुनकर अभिलेखन तैयार करता है । इसी प्रक्रिया में आगे वह पर्यवेक्षण का कार्य भी करता है और कार्य के साथ-साथ मूल्यांकन भी करता रहता है । इस संपूर्ण प्रक्रिया को करने के पश्चात वह मुख्य समस्या को ज्ञात कर लेता है एवं आवश्यक समाधान का प्रयास करता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि वैयक्तिक कार्य प्रक्रिया में उपकरण एक महत्वपूर्ण यंत्र की तरह कार्यकरते है जिससे संपूर्ण प्रक्रिया को आसानी के साथ पूर्ण किया जा सकता है। इस इकाई में इसका विस्तृत वर्णन प्रस्तुत किया जा रहा है।

4.2. उपकरण के रूप में भ्रमण कार्य

समाजकार्य एक क्षेत्र आधारित कार्य है। इस कार्य को करने के लिए कार्यकर्ता को क्षेत्र से संबंधित समस्त आवश्यक तथ्यों को जानने के लिए समस्या ग्रस्त व्यक्ति से संबंधित क्षेत्र का दौरा करना पडता है जिससे कार्यकर्ता कुछ आवश्यक विषयों की जानकारी एकत्रित करता है । कार्यकर्ता द्वारा यह प्रयास किया जाता है कि वह व्यक्ति से जुड़ी सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं भौगोलिक स्थिति के संबंध में समस्त जानकारी बडी ही सावधानी के साथ एकत्रित कर ले जिससे व्यक्ति की समस्या को ज्ञात किया जा सके। भ्रमण के दौरान कार्यकर्ता में कार्य करने वाले क्षेत्र की विस्तृत जानकारी एवं इतिहास को जानना एवं संबंधित व्यक्तियों सेसंबंध स्थापित करना है, साथ ही यह ज्ञात करना है कि क्षेत्र में उसकी भूमिका किस प्रकार की होगी। इसके अतिरिक्त निम्न लिखित उद्देश्य वैयक्तिक कार्य में भ्रमण के दौरान कार्यकर्ता के होने चाहिए-

- ❖ क्षेत्र में अपनी भूमिका को सुनिश्चित करना ।
- ❖ क्षेत्र कार्य में किए जाने वाले कार्यो की रूपरेखा को तैयार करना ।
- ❖ निश्चित समय सारिणी बनाना ताकि अतिरिक्त भार से बचा जा सके।
- ❖ कायर्कर्ता द्वारा संपादित किए जाने वाले कार्यो से सम्बन्धित निपुणताओंकी पूर्ण जानकारी होना।
- ❖ व्यक्तिगत शिक्षण शैलियों एवं उसके द्वारा संपादित की जाने वाली भूमिकाओं का निर्धारण करना।
- ❖ कार्य के दौरान आने वाली चुनौतियों का अध्ययन करना।

भ्रमणकार्य उपकरण एक बुनियादी नींव होती है, क्षेत्र कार्य के दौरान किसी भी व्यक्ति, समूह, समुदाय, की समस्याओं को नजदीक से देखा जा सकता है । जब हम किसी केस का अध्ययन करते है, तब हमें सबसे पहले ये जरूरी होता है कि हम समस्याग्रस्त व्यक्ति से जुड़ी सारे जगहों का एक बार या दो बार या जब तक सामाजिक कार्यकर्त्ता को भ्रमण कार्य के परिणाम से संतुष्टि न मिले तब तक समस्या से जुड़े सारे जगहों पर आवश्यकता के अनुसार भ्रमण करे। इस उपकरण के माध्यम से समस्या से जुड़े कई ऊपरी तथ्य सामने आते है और कार्यकर्ता द्वारा वैयक्तिकरण की प्रक्रिया को आगे बढाया जाता है ।

4.3 उपकरण के रूप में गृह भ्रमण

सामाजिक कार्यकर्ता द्वारा किसी भी समस्याग्रस्त व्यक्ति की समस्याओं के बारे में व्यक्ति और व्यक्ति से जुड़े सारे लोग जैसे- आस-पड़ोस, दोस्त, सगे सम्बन्धी इत्यादि के घर- घर जाकर जानकारी एकत्रित करना ही गृह भ्रमण कहलाता है। समाज कार्य में कार्यकर्ता के लिए यह आवश्यक होता है कि वह जुड़े सेवार्थी से संबंधित परिवार का अध्ययन करें खासकर उन परिवार का जो कि मानसिक स्वास्थ्य की स्पष्ट भूमि से जुड़े है। उपचार को प्रभावशाली बनाने के लिए यह आवश्यक है कि पारिवारिक जीवन का संवेदनशील सामाजिक तथा भौतिक रूप से अध्ययन किया जाए। इस प्रकार की समस्त विस्तृत जानकारी को एकत्रित किया जा सके जिससे सेवार्थियों की समस्या का उचित निराकरण प्राप्त हो सके। इस संबंध में WHO की यूरोपियन बैठक में Mental Hygiene Practice (1959) में सिफारिश की गयी कि गृह भ्रमण लम्बे समय के रोगियों के लिए तथा उपचार व देखभाल के उद्देश्य से उनके ही घर पर किया जाता है। आगे और गृह भ्रमण के उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए बरनार्ड (1964) ने कहा था कि गृह भ्रमण द्वारा सेवार्थी के वातावरण, उसके परिवार एवं अन्य संबंधित व्यक्तियों का निरीक्षण किया जाता है। उक्त विद्वानों के मत के आधार पर यह कहा जा सकता है कि इस उपकरण का प्रयोग वैयक्तिक कार्य प्रक्रिया में अनिवार्य होता है। क्योंकि किसी भी सेवार्थी के द्वारा बताई गई समस्याओं के आधार पर अगर कोई सामाजिक कार्यकर्त्ता उपचार करता है, तो परिणाम सही नहीं आएग क्योंकि हर समस्या के पीछे जो सही कारण होता है,वो सेवार्थी नहीं समझा पता है.इसलिए अपनी समस्याओं से निजाद पाने की लिए वो किसी सामाजिक कार्यकर्त्ता के पास जाता है।

सेवार्थी की सारी बातों को ध्यान मे रखते हुए सामाजिक कार्यकर्त्ता को गृह भ्रमण उपकरण के प्रयोग से सेवार्थी जिस वातावरण मे रह रहा हो,उस वातावरण, वहां के लोगों की, उसके रिश्तेदार, दोस्त आदि से सेवार्थी के समस्याओं का पता करना चाहिए। गृह भ्रमण के बाद लोगो द्वारा सेवार्थी से जुड़ी समस्याएं सामने आई हो उन समस्याओं, तथ्यों में जो कॉमन लगे उसकी सूची बना के उनका मूल्यांकन करना चाहिए।

गृह भ्रमण तकनीक

सेवार्थी को सेवा प्रदान करते समय गृह भ्रमण के समय कुछ तकनीकों के प्रयोग से सेवार्थी की क्षमताओं के विकास के लिए सामाजिक कार्यकर्त्ता को आवश्यकतानुसार निम्नलिखित तकनीकों का प्रयोग करना चाहिए।

- ❖ मॉडलिंग

मॉडलिंग का तात्पर्य किसी विनिर्दिष्ट व्यवहार के लिए प्रदर्शन करना होता है। इस तकनीक का प्रयोग सामाजिक कार्यकर्ता को तब करना चाहिए जब सेवार्थी स्वयं से कोई निर्णय नहीं ले पा रहा हो। जब वो कोई फैसला लेने में बिलकुल असमर्थ महसूस कर रहा हो, तब मॉडलिंग तकनीक के माध्यम से सेवार्थी को प्रेरित करना चाहिए. ताकि निर्णय लिया जा सकें।

❖ **भूमिका निर्वाह तकनीक**

इस तकनीक में सामाजिक कार्यकर्ता सेवार्थी के अनुरूप भूमिका का निर्वाह करता है जिससे सेवार्थी आसानी से किसी भी कठिन परिस्थिति एवं परिवेश का सामना कर सके। इस तकनीक से सेवार्थी के आत्मविश्वास मे बढ़ोतरी होती है।

❖ **उदाहरण और तर्क का प्रयोग**

सेवार्थी को सदैव हर बात उदाहरण और तर्क के साथ बतानी चाहिए जिससे सेवार्थी अपने जीवन मे आगे बढ़ने का और समस्या से मुक्त होने की प्रेरणा मिल सके । उदाहरण और तर्क के माध्यम से सेवार्थी के आत्मविश्वास को बढ़ाने की कोशिश कार्यकर्ता को करनी चाहिए जिससें सेवार्थी का मनोबल बना रहे।

4.4 अवलोकन

समाज कार्य, क्षेत्रीय कार्य में भ्रमण कार्य, गृह भ्रमण, साक्षात्कार करते समय सामाजिक कार्यकर्ता को हर तथ्य का अवलोकन करते रहना चाहिए। अवलोकन एक ऐसी प्रणाली जिसे मनुष्य अपने जीवन में निरंतर करता रहता है। मनुष्य अपनी ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से किसी भी कार्य करते वक्त अवलोकन करता है।

जैसे- किसी पदार्थ की सुगंध सेमनुष्य ये अनुमान लगा लेता हैकि वह क्या हो सकता है ।यहाँ नाक के माध्यम से अवलोकन हुआ. उसी प्रकार कान, त्वचा, आँख, मुहँ के माध्यम से भी अवलोकन किया जाता है। आँखों से कई चीज़ देखकर, कानों से सुनकर, जिह्वा से स्वाद लेकर, त्वचा के माध्यम से महसूस करकर मनुष्य अवलोकन ही करता है। ये सारी प्रक्रियाएँ अवलोकन के दायरे मे आती है।

इसलिए वैयक्तिक सेवा कार्य मे अवलोकन के माध्यम से सामाजिक कार्यकर्ता को सेवार्थी से जुड़े तथ्यों को एकजुट कर लेना चाहिए, जिससे समस्यायों का समाधान बेहतर तरीके से हो पाए।

अवलोकन प्रक्रिया का प्रयोग वैयक्तिक सेवा कार्य के सारे उपकरणों के प्रयोग के दौरान ही किया जा सकता है । जिन तथ्यों की आवश्यकता हो, उसे अवलोकन के माध्यम से पूरी करने की कोशिश होनी चाहिए ।

4.5 घटना का अध्ययन

किसी भी घटना का अध्ययन समाज कार्य में क्रमबद्ध तरीके और वैज्ञानिक ज्ञान के अनुसार किया जाता जाता है। घटना का अध्ययन करते वक्त सामाजिक कार्यकर्ता को कुछ बातों का ध्यान रखना चाहिए -

- ❖ जिस घटना का आप अध्ययन कर रहे हो,क्या उससे जुड़ी सारी बातों की जानकारी, समझ आपके पास है ?
- ❖ क्या इस तरह की घटनाओं के बारे मे आपने पहले कहीं पढ़ा है ?

❖ जिस घटना का अध्ययन करने आप जा रहे हो, क्या आप वहा संवाद स्थापित करने में सक्षम है ?

किसी भी घटना का अध्ययन करने के लिए जरूरी होता है, कि जिस क्षेत्र की घटना का अध्ययन हम करते है – वहां की भाषा, बोली, रहन-सहन, खान-पान, रीति-रिवाज, परंपरा आदि की समझ सामाजिक कार्यकर्ता को विकसित करनी चाहिए। एक बार क्षेत्रीय संस्कृति की समझ विकसित हो गई तो फिर घटना से संबधित तथ्यों को जुटाने मेंआसानी होगी।

घटना स्थल से जुड़ी संस्कृति की जानकारी के आधार पर-

1. संवाद स्थापित होता है।
2. व्यक्ति, समूह, समुदाय की स्वीकृति मिल जाती है।
3. उनकी भाषा में बात करने से अपनत्व की भावना उत्पन्न होती है।

Figure 1 घटना का अध्ययन

4.6 बातों को ध्यान से सुनना

समाज कार्य की किसी भी प्रणाली में देखें, चाहे वो वैयक्तिक सेवा कार्य या समूह कार्य या सामुदायिक कार्य हो सामाजिक कार्यकर्ता के पास सुनने की कला का होना अति आवश्यक है। हर स्थिति में चाहे एक बात कई बार सुननी पड़े, धैर्य के साथ सामने वाले की पूरी बात को सुनना चाहिएक्योंकि हम जब समस्या से जुड़ी बातों को सुनेंगे, जानेंगे,समझेंगे तभी तो जान पाएंगे समस्या क्या है ? और उसका निदान कैसे किया किया जाए?

भ्रमण कार्य, गृह भ्रमण, साक्षात्कार आदि प्रणालियों के उपयोग के समय सामाजिक कार्यकर्ता को ज्यादा से ज्यादा सेवार्थी, उनके परिजन, दोस्त, घरवालों द्वारा बतायी गयी सारी बातें सुननी चाहिए, क्योंकि सुनना एक ऐसी क्रिया है, जिसके माध्यम से कई समस्याएँ आसानी से हल हो जाती हैं।

क्षेत्र कार्य के दौरान सामने आने वाली बातों को ज्यादा से ज्यादा सुनिए और अपना निर्णय, अपनी बात कम से कम व्यक्त कीजिये । आवश्यकतानुसार ही अपनी बातें व्यक्त करे. उनसे समस्या के बारे मे जानकारी लेने के दौरान कई बार सेवार्थी को प्रेरित करने की आवश्यकता भी होती है। उसे आत्मविश्वास दिलाना पड़ता है कि कुछ गलत नहीं है। अगर कुछ है तो वो सब ठीक हो जायेगा। इसलिए वैयक्तिक सेवा कार्य प्रक्रिया में बातों को ध्यान से सुनना चाहिए जिससें तथ्यों को स्प्ष्ट रूप से समझा जा सके और आसानी से प्रक्रिया को सम्पन्न किया जा सके।

4.7 साक्षात्कार कुशलता

वैयक्तिक कार्य में साक्षात्कार कौशल का प्रयोग बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। सामाजिक कार्यकर्ता भी सेवार्थी को सेवा प्रदान करने की प्रक्रिया में शुरू से अंत तक साक्षात्कार करता है। इस प्रकार वैयक्तिक सेवा कार्य कार्यकर्ता के लिए साक्षात्कार एक कला तथा विज्ञान है जिसके सिद्धान्तों की जानकारी तथा समझ सामाजिक कार्यकर्ता को होनी चाहिए तथा प्रविधियों का व्यावहारिक ज्ञान भी आवश्यकता अनुसार आवश्यक है।

साक्षात्कार कौशल एवं कला

1. साक्षात्कार करते वक्त कार्यकर्ता को सेवार्थी की हर क्रिया का अवलोकन करते रहना चाहिए।
2. बातों को सुनने एवं समझने की कला होनी चाहिए क्योकि जो सेवार्थी बताने की कोशिश करता है अगर वो कार्यकर्ता नहीं समझेगा तो संवाद स्थापित नहीं हो पायेगा।
3. सवाल-जवाब की निरंतरता को बरकरार रखने की कला होनी चाहिए क्योंकि तरह-तरह के सवाल से सेवार्थी के अंदर समस्या से जुड़ीसारी बातों को निकाला जा सकता है।
4. साक्षात्कार के दौरान कई बार सेवार्थी हताश, निराश हो जाता है उस वक्त कार्यकर्ता के लिए जरूरी है कि वह एक मार्गदर्शक की भूमिका निभाए और सेवार्थी को प्रेरित करे।

साक्षात्कार प्रक्रिया

आरंभिक प्रक्रिया – आरंभिक प्रक्रिया में कार्यकर्ता सेवार्थी को विश्वास दिलाता है कि जो हो रहा है वो सही है, आप किसी भी बात को छिपाए नहीं। हर छोटी से छोटी बात साझा करे। सेवार्थी को पूरी आजादी के साथ आराम से सोचने का समय देता है। फिर कार्यकर्त्ता साक्षात्कार की शुरुआत करता है।

मध्य की प्रक्रिया – कार्यकर्ता सेवार्थी से कई सवाल करता है, जिससे समस्याएँ सामने आ सके। सेवार्थी की बातों को ध्यान से सुनता है और अगर कभी -कभी बातें दिशाहीन होने लगे तो कार्यकर्त्ता पुनः सेवार्थी को उद्देश्यों की ओर लाने की कोशिश करता है।

अंतिम प्रक्रिया – इस अवस्था में साक्षात्कार के सारे उद्देश्यों की पूर्ति हो जाती है और कार्यकर्ता साक्षात्कार के दौरान हुई बातों के अनुसार सेवार्थी का मार्गदर्शन करता है। उसे कई महत्वपूर्ण तथ्यों को सामने रखता है जिससे सेवार्थी समस्याओं से छुटकारा पा सके।

4.8 सम्बन्ध स्थापन

सम्बन्ध स्थापन प्रक्रिया की शुरुआत कार्यकर्त्ता द्वारा सेवार्थी को प्रदान की जाने वाली सेवाओं की शुरुआती दौर से ही हो जाती है। कार्यकर्ता के साथ सेवार्थी का सम्बन्ध दीर्घकालिक या लघुकालिक रहेगा॥ ये निर्णय कार्यकर्ता और सेवार्थी के सम्बन्ध पर निर्भर होता है।

सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य में सम्बन्ध स्थापित करना ही सेवा प्रदान करने का प्रमुख आधार होता है क्योंकि सम्बन्धों को स्थापित करके वैयक्तिक कार्यकर्ता किसी व्यक्ति व समस्या को समझ सकता है और उस समस्या का समाधान खोजने की कोशिश करता है। व्यक्ति के आत्मविश्वास एवं दृढ़ इच्छाशक्ति को विकसित करते हुए समस्या सुलझाने का प्रयास करता है। सेवार्थी के साथ स्थापित सम्बन्ध वह उपकरण है जिसके माध्यम से कार्यकर्ता सेवार्थी की समस्या का उपचार करता है। कार्यकर्ता सेवार्थी की समस्या का उचित एवं सही ज्ञान तभी प्राप्त कर सकता है जब

सेवार्थी के साथ सम्बन्ध, व्यवहार एवं सम्पर्क में घनिष्ठता हो। शनै:–शनै: सेवार्थी के साथ सम्बन्ध जैसे- जैसे घनिष्ठ होता है वैसे - वैसे सेवार्थी अपनी सारी बातें कार्यकर्ता के साथ साझा करता है। अतः सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य प्रक्रिया के दौरान उपचार का लक्ष्य प्राप्त करने के लिए सेवार्थी और कार्यकर्ता के बीच सम्बन्ध विश्वनीय,घनिष्ठ होना चाहिए।

सम्बन्ध स्थापन के तरीके

लिखित – किसी भी सूचना, जानकारी, संदेश सेवार्थी को लिखित रूप मे संचारित करना भी एक सम्बन्ध स्थापित करने का माध्यम है। ये तरीका ज्यादातर तब प्रयोग किया जाता है, जब सेवार्थी अपनी बातों को कहने में संकोच करता है या सेवार्थी बोलने मे असमर्थ हो।

मौखिक – अपने विचारों का आदान-प्रदान मौखिक रूप से कर ज्यादातर सम्बन्ध स्थापित किया जाता है। कार्यकर्ता सेवार्थी की समस्या से जुड़ी सारी बातें मौखिक रूप में सुनता है और बातों को भी सेवार्थी के समक्ष रखता है जिससे सेवार्थी प्रेरित हो सके।

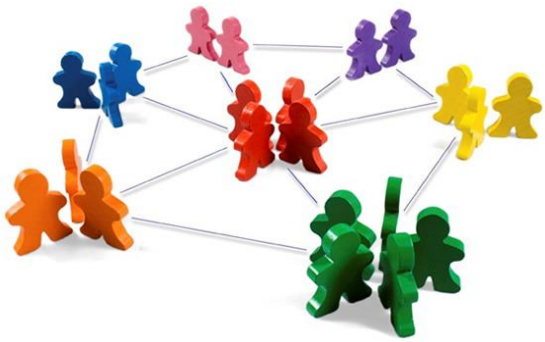

अत: इस प्रकार संबंध स्थापन प्रक्रिया को किया जाता है जिससे कि वैयक्तिक कार्य प्रक्रिया में कोई रूकावट ना हो और संपूर्ण प्रक्रिया को आसानी के साथ किया जा सके।

4.9 अभिलेखन

समाज कार्य व्यवहार के प्रमुख साधनों में एक है, रिकार्ड करना। इस प्रकार के रिकार्ड कार्य से उपभोक्ता के केस की समीक्षा करना, जांच करना और कार्य की प्रगति की निगरानी करना आसान हो जाता है। एक सामाजिक कार्यकर्ता के पास जब उपभोक्ता या पीि डत व्यक्ति से संबंधित आवश्यक रिकार्ड उपलब्ध होंगे तब वह उसका अध्ययन करके न सिर्फ व्यक्ति को उसकी समस्याओं के संदर्भ में उचित परामर्श दे सकेगा वरन उससे संबंधित अनुसंधान भी करने में उचित परामर्श दे सकेगा। विभिन्न प्रकार के प्रशासनिक फैसलों के लिए भी रिकार्ड अति आवश्यक होते हैं। इस घटक के माध्यम के विद्यार्थी रिकार्ड करने की विधियों के साथ-साथ व्यावसायिक रिकार्ड और साहित्यिक अथवा रचनात्मक लेखन के बीच के अंतर को पहचानने की कला भी सीखते हैं। विद्यार्थी पहले वर्ष में कुछ विश्लेषित सामग्रियों के साथ विवरणात्मक रिकॉर्ड को लिखना सीखते हैं। फिर धीरे-धीरे वे अपने क्षेत्र कार्य के दौरान हासिल किए गए अनुभवों को लिपिबद्ध करते हुए व्यावसायिक रिकार्ड लिखना सीखते हैं। इस प्रकार के लेखन में प्रवीणता हासिल करने के बाद विद्यार्थी उपभोक्ता के केस अध्ययनों और उनके घर जाकर मुलाकात करने के विवरणों की रिपोर्ट लिखने के साथ-साथ समूह प्रक्रिया रिकॉर्ड और सामुदायिक प्रोफाइल विकसित करना सीख जाते हैं। इस समय तक उन्हें यह भी मालूम हो चुका होता है कि रिकॉर्डिंग के लिए विषयों के चयन, उनके विश्लेषण और परिलक्षण के लिए किस प्रकार की विधियों को अपनाया जाता है। इस प्रकार प्रक्रिया के रिकॉर्ड को लिखना सीख जाते हैं और उनके आधार पर उनका विश्लेषण और मूल्यांकन कर भविष्य के लिए योजनाओं का निर्माण करने में सक्षम हो जातेहैं। बेहतर यह होता है कि विद्यार्थी को उनकी अपनी भाषा में रिकॉर्ड लिखने के लिए प्रेरित किया जाए ताकि वे अपने अनुभवों को सुगमता और स्पष्टता के साथ बता सकें।

अभिलेखन प्रक्रिया का प्रयोग करके निम्न उद्देश्यों की पूर्ति की जा सकती है -

❖ सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य करते समय सारी गतिविधियों को रिकॉर्ड करके अंत मे मूल्यांकन और निष्कर्ष तक पहुँचा जाता है।

❖ अभिलेखन के माध्यम से सेवार्थी को सेवा प्रदान करने की प्रक्रिया में निरंतरता बनी रहती है।

❖ लिखित अभिलेखों के माध्यम से गुणवत्ता की जांच की जाती है जिससे अगर कुछ त्रुटि या गलती होती है तो उसे सही किया जा सकता है।

❖ अभिलेखों का प्रयोग प्रशिक्षण एवं अनुसन्धान के लिए भी किया जाता है जिसके माध्यम से एक तरह की समस्याओं के बारे मे शोध किया जा सके।

❖ एक चिकित्सकीय उपकरण के रूप मे भी अभिलेख काम करता है.जिससे उपचार प्रक्रिया में आसानी होती है।

4.10 पर्यवेक्षण

समाज कार्य के इतिहास से पता चलता है कि सामाजिक कार्य पर्यवेक्षण की शुरुआत प्रशासनिक रूप में हुई है। इतिहास के पन्नों मे देखा जाए तो इसकी प्रशासनिक कार्यप्रणाली सन 1878 मे चैरिटी आर्गेनाईजेशन आन्दोलन में आरम्भ हुई और पर्यवेक्षण को सन 1911 में औपचारिक रूप मे शैक्षणिक उद्देश्य प्राप्त हुआ। सबसे पहले जब मैरी रिचमंड ने पर्यवेक्षण में पहले पाठ्यक्रम की शुरुआत की और उन्होंने फिर अवलोकन किया कि सहानभुति प्रदान करने की प्रक्रिया सामाजिक कार्य पर्यवेक्षण का तीसरा कार्य है। कार्यों को क्रमवह तरीके से करना सामाजिक कार्य पर्यवेक्षण को अद्वितीय एवं मानवीय बनाता है। पर्यवेक्षण सामान्यतः शैक्षिक वातावरण में विद्यार्थी या अधीनस्थ और समूचे व्यावहारिक प्रशिक्षण अनुभव के विद्यार्थी के विकास पर निगरानी (पर्यवेक्षण) करने वाले पर्यवेक्षण के बीच संबंध के रूप में पारिभाषित है। इस संदर्भ के अंतर्गत, पर्यवेक्षण समाज कार्य के अभ्यास (अनुशीलता) में विद्यार्थी के दायित्व, कौशलों, ज्ञान, अभिवृतियों और नैतिक मानदंडों के विकास की निगरानी व मूल्यांकन करता है। इस प्रक्रिया के दौरान पर्यवेक्षक इन सभी क्षेत्रों में विद्यार्थी को निष्पादन के अधिकतम स्तर को प्राप्त करने की दिशा में संगत प्रतिपुष्टि प्रदान करता है। इसके अतिरिक्त पर्यवेक्षण में विद्यार्थी और पर्यवेक्षण के बीच आमने-सामने प्रत्यक्ष संपर्क होता है, जिसके दौरान विद्यार्थी अपने सेवार्थी की समस्या एवं सहभागिता के प्रत्येक पहलू से पर्यवेक्षक को अवगत कराता है।
सामाजिक कार्य में पर्यवेक्षक व्यावसायिक आचरण का अभिन्न अंग माना जाता है। यह प्रमुख रूप से अभिकरणों द्वारा निर्धारित व्यावसायिक अभ्यास के संबंध एवं सेवार्थी के साथ सक्षम और जवाबदेही, दायित्व सुनिश्चित करने के नैतिक मानदंडों का एक हिस्सा है। पर्यवेक्षण के विभिन्न प्रकार्य इस प्रकार हैं

❖ विद्यार्थी के ज्ञान और कौशल के स्तर का मूल्यांकन करना।

❖ ऐसी योजना निष्पादित करने के लिए दायित्व लेना जो विद्यार्थी को व्यावहारिक प्रशिक्षण के दौरान सीखने के समुचित और चुनौतीपूर्ण अवसरों का अनुविन्यास प्रदान करेंगी।

❖ विद्यार्थी को संबंधित समुदाय एवं पर्यावरण को समझने एवं उसके अनुसार ढलने में सहायता करना।

❖ विद्यार्थियों और सेवार्थी की पृष्ठभूमियों और अनुभवों अर्थात शहरी/ग्रामीण, मध्य/निम्न वर्ग और अंतःक्रियाओं के लिए उनके आशयों ; निहितार्थ के बीच अनुरूपता संगतता का आकलन करना।

❖ विद्यार्थी के व्यावहारिक परीक्षण अनुभव की निगरानी करना और विद्यार्थी के कार्य-निष्पादन का मूल्यांकन करने में सहायता करना।

❖ विद्यार्थी की शिक्षा संबंधी जरूरतों का पता लगाने, शिक्षा के उद्देश्य निर्मित करने और शिक्षण सहमति तैयार करने में मदद करना।

❖ विद्यार्थी को मार्गदर्शन प्रदान करना एवं सूचना केस्रोत के रूप में उसकी सहायता करना।

❖ समाज कार्य सिद्धांत और व्यावहारिक प्रशिक्षण के विशिष्ट अनुभवों को समेकित करने में विद्यार्थी की सहायता करना।

❖ विद्यार्थी को समुचित आचरण व्यवहार और तकनीकों के प्रतिमान आदर्श प्रस्तुत करके शिक्षित करना, संगत प्रतिपुष्टि प्रदान करना और विद्यार्थी द्वारा प्रदर्शित विभिन्न व्यवहारों को प्रोत्साहित करना, परिष्कृत करना और व्याख्या करना और विद्यार्थी के विकास को बढ़ावा देने वाले अनुभवों का आदान-प्रदान करना।

❖ आत्म-स्वीकृति को प्रोत्साहित करना और आत्मसम्मान को बढ़ावा देना।

❖ अंतर-व्यक्तिगत सम्मान को प्रोत्साहित करना।

❖ अंतर-व्यक्तिगत और संगठनात्मक तनावों से निपटना।

❖ विद्यार्थी की अंतर्निर्भरता को बढ़ावा देना।

❖ विद्यार्थी का पक्ष लेना एवं उसका समर्थन करना।

❖ विद्यार्थी की प्रगति व विकास का मूल्यांकन करना।

सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य मे सेवार्थी को प्रदान की गयी सेवा की निरंतरता, गुणवत्ता आदि में पर्यवेक्षण के माध्यम से सामाजिक कार्यकर्ता के व्यावसायिक विकास, कार्य- संतुष्टि निश्चित करने मेंसामाजिक कार्यकर्ता के लिए पर्यवेक्षण महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

पर्यवेक्षण की क्रिया

लघुकालिक और दीर्घकालिक दोनों प्रकार की होते है-

लघुकालिक पर्यवेक्षण- अल्पकालिक पर्यवेक्षण द्वारा कार्यकर्ता अपनी कार्य करने की क्षमता, कार्य करने के तरीके आदि में सुधार करता है। यह कार्यकर्ता की कुशलता को पूर्ण रूप से विकसित करने मेंसहायता करती है ।

दीर्घकालिक पर्यवेक्षण – ऊपर दिए गए तथ्य जो कि लघुकालिक उद्देश्यों की पूर्ति करता है, वही दीर्घकालिक उद्देश्यों के पाने के उपाय भी है। जो सेवार्थी को बेहतर तथा प्रभावी सेवाओं मे कारगर साबित होते हैं । इस क्रिया में पर्यवेक्षक प्रशासनिक रूप से कुशल तरीके से एकत्रित तथा समन्वित कार्य करता है।

4.11 रिपोर्ट लेखन-

सामाजिक कार्य के विद्यार्थी को शिक्षा और क्षेत्र कार्य प्रशिक्षण की अवधि के दौरान विभिन्न प्रकार के लेखन कार्योमे दक्ष कराने की कोशिश की जाती है। ये लेखन विद्यार्थी के नियमित रूप से कार्य निर्धारण के विवरण, विभिन्न प्रकार के प्रश्नों के उत्तर लेखन, फील्ड वर्क जर्नल, पत्र लेखन, दस्तावेज लेखन और रिपोर्ट लेखन इत्यादि के रूप में होते हैं। इस प्रकार के लेखन का उद्देश्य विद्यार्थी को उन कौशलों में दक्ष बनाना है जिसकी उसे भविष्य में एक पेशेवर सामाजिक कार्यकर्ता के रूप में किसी एजेंसी या संस्था में काम करने के दौरान आवश्कता पड़ती है। इसमें प्रारम्भ से लेकर अंत तक की समस्त क्रियाओं का उल्लेख रहता है। रिपोर्ट लेखन क्रिया भी शुरुआत से अंत तक चलतीहै। सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य करते वक्त हर भ्रमण कार्य के बाद जितने कार्य आपने किए, उन सब बातों को रिपोर्ट के रूप में लिखकर सुरक्षित रखना चाहिए। गृह भ्रमण के दौरान परिजनों से जितनी बातें हुई वो सारी भी रिपोर्ट मे लिखनी चाहिए। सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य मे सेवार्थी के किये गए साक्षात्कार की रिपोर्ट बनाने से अतीत और वर्तमान की बातों

को तुलनात्मक तरीके से देखा जा सकता है इससे सेवा प्रदान करने के लिए क्या -क्या किया है? और आगे क्या -क्या करना है? यह समझने में आसानी होती है। रिपोर्ट लेखन के द्वारा कार्यात्मक गुणवत्ता, निरंतरता बनी रहती है।

प्रतिवेदन के उद्देश्य कुछ सैद्धांतिक उद्देश्य होते है जिनका ज्ञान कार्यकर्ता को आवश्यक रूप से होना चाहिए -

❖ **समस्या का स्पष्ट चित्रण**- सेवार्थी की समस्या क्या है ? किस प्रकार की समस्या है ? प्रमुख समस्या क्या है ? समस्याओं से सम्बंधित समस्याएं क्या है ? इन सभी का सही चित्रण किया जाना चाहिए।

❖ **सेवार्थी की भावनाओ तथा विचारों का स्पष्टीकरण** - समस्या के बारे मे सेवार्थी क्या सोचता है ? और किस प्रकार समस्या को विश्लेषित करता है? समस्या के लिए अपना कितना दोष मानता है ? अपनी क्षमताओं और अक्षमताओं को किस प्रकार आंकता है ? आदि पूर्ण रूप से लिखा होना चाहिए।

❖ **समस्या के समाधान के पूर्व प्रयास**- सेवार्थी समस्या को लेकर कहाँ-कहाँ गया है तथा किस प्रकार की सहायता प्राप्त की है ? सहायता से स्थिति में क्या परिवर्तन और क्या विघटन आया है ? वर्तमान स्थिति में अपने पूर्व अनुभव का किस प्रकार प्रयोग कर रहा है ? को ज्ञात करना चाहिए।

❖ **कार्यकर्ता का समस्या के प्रति स्पष्ट दृष्टिकोण**- जिस प्रकार सेवार्थी का समस्या के प्रति दृष्टिकोण का ज्ञान महत्वपूर्ण है,उसी प्रकार कार्यकर्ता का भी दृष्टिकोण महत्वपूर्ण स्थान रखता है।वह समस्या का क्या रूप समझता है ? कौन- कौन से कारण समझाता है ? समस्या का समाधान किन-किन प्रविधियों से संभव है? आदि ये सब लेखन के रूप में महत्वपूर्ण रखता है।

❖ **समस्या समाधान** के **लिए विभिन्न प्रयासों का चित्रण-** कार्यकर्ता सेवार्थी को किस प्रकार की सुविधाएं दे रहा है ? क्या- क्या व्यवस्था तथा सुझाव दे रहा है ? आदि को लिखना चाहिए ।

एक अच्छे प्रतिवेदन लेखक के गुण:- एक अच्छे प्रतिवेदन लेखक में निम्नलिखित गुणों का होना आवश्यक हैं-

1. भाषा का समुचित ज्ञान।
2. उत्तम अभिव्यक्ति की क्षमता।
3. समस्या को स्पष्ट रूप से व्यक्त करने की क्षमता।
4. उपलब्ध समस्त सामग्री में से सम्बद्ध सामग्री का चयन करने व असम्बद्ध सामग्री को अलग करने की क्षमता।
5. प्रत्येक कथन के साथ उपयुक्त प्रमाण प्रस्तुत करने की क्षमता।
6. संतुलित मस्तिष्कव उत्तम निर्णय क्षमता।
7. पक्षपात व पूर्वाग्रह से मुक्त।
8. कम से कम शब्दों में अधिक बात कहने की क्षमता।
9. सरल भाषा प्रयोग की क्षमता।

प्रतिवेदन की संरचना- किसी प्रतिवेदन में निम्नलिखित अंत:वस्तु व स्वरूप पाये जाते हैं-

	अंत: वस्तु	**स्वरूप**
-	प्रस्तावना	- शीर्षक।
-	समस्या का विवरण।	- अनुक्रमणिका।
-	महत्त्व का वर्णन	-अध्यायीकरण।
-	अध्ययन क्षेत्र का विवरण	- ग्राफ रेखा चित्र।

- अध्ययन पद्धति का विवरण - नक्शे छाया चित्र।
- तथ्यों का वर्गीकरण - तालिकाएँ, संलग्न प्रपत्र।
- निष्कर्षों की प्रस्तुति -परिशिष्ट।
- समस्या व सुझाव।
- संदर्भ ग्रंथ सूची।

अत: इस प्रकार एक सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य प्रक्रिया में प्रतिवेदन लेखन तकनीक का प्रयोग किया जाता है जिससे सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य से जुड़ीप्रक्रिया, विधि आदि का आरम्भ से अंततक का विवरण रिपोर्ट लेखन के रूप मे प्रदर्शित किया जा सके।

4.12 सारांश

मानव समाज में आरम्भ में वैयक्तिक आधार पर सेवा करने की परम्परा रही है। यहाँ पर निर्धनों को भिक्षा देने, असहायों की सहायता करने, निराश्रितों की सहायता करने, वृद्धों की देखभाल करने आदि कार्य किए जाते रहे हैं, जिन्हें समाज सेवा का नाम दिया जाता रहा है। ऐतिहासिक दृष्टि से देखा जाए तो हम निश्चित रूप से यह कह सकते हैं कि भारत में भी अमेरिका, इंग्लैण्ड की भाँति शोषण का सरलतापूर्वक शिकार बनने वाले वर्गों की सहायता का प्रावधान प्राचीन काल से चला आ रहा है। पहले इस सहायता को समाज सेवा के रूप में देखा जाता रहा है, लेकिन धीरे-धीरे इसने अपना स्वरूप बदल लिया और उन्नीसवीं शताब्दी में समाज कार्य के रूप में सामने आयी।

वैयक्तिक समाज कार्य में व्यक्ति से तात्पर्य ऐसे सेवार्थी से है जो मनोसामाजिक समस्याओं से ग्रसित है यह व्यक्ति एक पुरूष, स्त्री, बच्चा अथवा वृद्ध कोई भी हो सकता है। अपनी आवश्यक्ताओं की पूर्ति के लिए जो भी व्यक्ति सहायता चाहता है, वैयक्तिक समाज कार्य उसको सहायता उपलब्ध कराता है। कोई भी समस्या व्यक्ति के सामाजिक समायोजन को प्रभावित करती है इसका स्वरूप कैसा भी क्यों न हो। समस्या शारीरिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक या मनोवैज्ञानिक इत्यादि प्रकृति की हो सकती है। सामाजिक कार्य की प्राचीनतम प्रणालियों में से वैयक्तिक कार्य एक प्रमुख प्रणाली है। इसका प्रयोजन व्यक्ति को समस्या - निवारण में तथा सामाजिक कार्य प्रणाली को संवर्धित करने में मदद करता है। इसमें सेवार्थी के साथ व्यावहारिक तादाम्य स्थापित करने के साथ- साथ उद्देश्यपूर्ण संबंध स्थापन में भी दक्षता की आवश्यक होती है। इसमें क्षेत्रकार्य ,अभिलेखन, साक्षात्कार, उपकरण के रूप मे भ्रमण कार्य, गृह भ्रमण, अवलोकन, घटना का अध्ययन, बातों को ध्यान से सुनना, साक्षात्कार कुशलता , सम्बन्ध स्थापन, अभिलेखन ,पर्यवेक्षण एवं रिपोर्ट लेखन आदि की सहायता से सेवार्थी को उसके तत्कालीन परिवेश के समायोनजा में मदद प्रदान की जाती है, वहीं कार्यकर्ता बेहतर सेवा आपूर्ति के लिये उपयुक्तदशाओं का सजृन करता है।

4.13 बोध प्रश्न

प्रश्न 01. सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य में विभिन्न उपकरणों को समझाइएं।

प्रश्न 02. सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य में साक्षात्कार प्रक्रिया को स्पष्ट कीजिए।

पश्न 03. प्रक्रिया तथा समस्या केंद्रित रिकार्डिंग में क्या अंतर है?

प्रश्न 04. पर्यवेक्षण एवं रिर्पोट लेखन से क्या तात्पर्य है?

प्रश्न 05. संबंध स्थापन को समझाइए।

प्रश्न 06. भ्रमण से क्या तात्पर्य है? गृह भ्रमण के दौरान प्रयुक्तकी जाने वाली तकनीकों का वर्णन कीजिए।

4.14 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

❖ मिश्रा, प्रयागदीन (2003). *सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य*.लखनऊ : हिंदी संस्थान।

❖ सिंह, ए.एन., सिंह, नीरजा ,संजय,मिश्रा,सुषमा (2012). *सामूहिक कार्य*.हल्दानी : उत्तरायन प्रकाशन।

❖ इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विशवविद्यालय (2010).*व्यक्तियों के साथ कार्य करना*.दिल्ली: समाज कार्य विद्यापीठ।

❖ सिंह, ए.एन., सिंह, नीरजा ,संजय,मिश्रा,सुषमा (2012). *वैयक्तिक कार्य*.हल्दानी : उत्तरायन प्रकाशन।

❖ सुभान,अब्दुल(1998). *समाज मनोविज्ञान*.रांची: जानकी प्रकाशन अशोक राज पथ चौहटा।

❖ यादव,सियाराम (2010).अधिगम कर्ता का विकास एवं शिक्षण अधिगम प्रक्रिया, इलाहाबाद: शारदा पुस्तक भवन।

❖ प्रसाद मणिशंकर, सत्य प्रकाश, कुमार अरूण, कुमार संजय, सैफ मो.खान एवं सिंह अभव कुमार(2103). *यूजीसी नेट/जेआरएफ/स्लेट समाज कार्य*.दिल्ली: अरिहंत पब्लिकेशन (इण्डिया)लिमिटेड।

❖ तेज, संगीता. पाण्डेय तेजस्कर (2010). *समाज कार्य*. लखनऊ: जुबली एच फाउन्डेशन।

इकाई – 5 वैयक्तिक कार्य में सैद्धांतिक अवधारणाओं का मार्गदर्शन

इकाई की रूपरेखा

5.0. उद्देश्य
5.1 प्रस्तावना
5.2 प्रक्षेपीय सिद्धांत
5.3 समस्या समाधान सिद्धांत
5.4 व्यवहार संशोधन सिद्धांत
5.5 संज्ञानात्मक सिद्धांत
5.6 अस्तित्व सिद्धांत
5.7 ग्रहणशीलता के दृष्टिकोण का सिद्धांत
5.8 प्रेमपूर्ण व्यवहार परिशोधन का सिद्धांत
5.9 मैं और मुझे का सिद्धांत
5.10 सारांश
5.11 बोध प्रश्न
5.12 संदर्भ एवं उपयोगी प्रश्न

5.0. उद्देश्य – इस इकाई के अध्ययन करने के पश्चात आप-

- वैयक्तिक कार्य की विभिन्न सैध्दांतिक अवधारणाओं से परिचित होंगे।
- इन सिद्धांतों की प्रासंगिकता किस प्रकार एक सामाजिक कार्यकर्ता के लिए सेवार्थी के समस्या समाधान में सार्थक साबित हो सकती है, इसकी जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- सेवार्थी के मनोविज्ञान, व्यक्तित्व तथा उसके पर्यावरण में इन सिद्धांतों की क्या भूमिका होती है? इसका विश्लेषण कर सकेंगे।

5.1 प्रस्तावना :-

सिद्धांत क्या है ? यह ऐसा प्रश्न है जिसका उत्तर आसानी से नहीं दिया जा सकता क्योंकि सिद्धांतों को विभिन्न विद्वानों ने अनेक प्रकार से परिभाषित किया है। भिन्न-भिन्न सिद्धांतों की समानताओं एवं उन्हें प्रतिपादित करने के उद्देश्यों की मूल अवधारणाओं केअध्ययन से ही सिद्धांत के बारे में एक सामान्य धारणा बनाई जा सकती है। सामान्यत: प्रयोगगत निष्कर्ष ही सिद्धांत के मूल आधार होते हैं। इन निष्कर्षों में शाश्वतता अधिक होती है। इसलिए सिद्धांत को बहुत सोच समझकर एवं अनुभव की कसौटी पर कसा हुआ विचार कहा जा सकता है। यह विचार उस ज्ञान के क्षेत्र में ऐसा तात्विक सारांश होता है जिसके द्वारा उस ज्ञान-क्षेत्र की विधिवत व्याख्या की जा सकती है। इसलिए विनफ्रेड एफ.हिल ने ज्ञान के किसी क्षेत्र की क्रमबद्व व्याख्या को सिध्दांत कहा है।उसके शब्दों में "A theory is a systematic interpretation of an area of knowledge"। वैज्ञानिक अध्ययनों में प्राय: कुछ निश्चित चरों के बीच कुछ निश्चित परिस्थितियों में पाये जाने वाले संबंधों का पता लगाया जाता है। इसलिए सिद्वांत

को इस प्रकार से परिभाषित किया जा सकता है " A theory may be defined as the interprestation of realitation betbeen certain variables under certain condition,"

उपर्युक्त विवेचन से निम्नलिखित तथ्य प्रस्तुत होते हैं कि सिद्वांत –

1. ज्ञान के वास्तविक भण्डार का तात्विक सारांश है ।
2. यह ज्ञान सामान्त: शाश्वत (Unchangable) होता है ।
3. सिद्धांत ज्ञान के क्षेत्र तक पहुंचने एवं उसकी व्याख्या करने का साधन होता है ।
4. क्यों और कैसे की समस्या का विधिवत समाधान प्रस्तुत करने का प्रयास करता है ।
5. कुछ निश्चित परिस्थितियों में दो या दो से अधिक चरों के मध्य संबंधों की व्याख्या करता है ।

समाज कार्यकर्ता के लिए सिद्धांत महज ज्ञान भर नही होते है। बल्कि सिद्धांतों द्वारा एक समाज कार्यकर्ता वह चक्षु प्राप्तकरता है जिसके माध्यम से विचार को व्यवहार में परिणत करने में सक्षम होता है। सिद्धांतोंके माध्यम से सेवार्थी को इस तरह बल प्राप्त होता है जिससे वह अपनी समस्या को सुलझाने में समर्थ हो जाता है । सिध्दांत एक सहायक ढाँचा है जिसके माध्यम से सेवार्थी व कार्यकर्ता के मध्य निष्कर्षों को प्राप्त किया जा सकता है और उन्हें बौध्दिक तथा भावात्मक सुरक्षा का भाव भी प्रदान होता है । इस इकाई के माध्यम से विभिन्न सिध्दांत को समझाने का प्रयास किया गया है जो सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य में सेवार्थी की समस्या समाधान हेतु एक माध्यम साबित होते है । इनका उल्लेख निम्नानुसार है -

5.2 प्रक्षेणीय सिद्धान्त -

यह सिद्धान्त मनोविज्ञान के अन्तर्गत व्यवहार परिशोधन के रूप में प्रयुक्तकिया जाता है। इस नाते यह सिद्धान्त व्यावहारिक मनोविज्ञान का अंग है। इसमें समस्याग्रस्त व्यक्ति, जिसकी भावनाएँ किसी कारण दब गई है और वह मनोसामाजिक समस्या से ग्रस्त हो गया है, के सामने नियोजित ढंग से उद्दीपन प्रस्तुत किया जाता है। उदाहरण के तौर पर अगर किसी व्यक्ति ने प्यार में धोखा खाया है तो उसके सामने प्यार की अच्छाईयों का गुणगान करने पर भड़क जाता है और अपनी दबी भावना को प्यार की बुराई के रूप में बाहर निकालता है। यहाँ प्यार का मुद्दा नियोजित ढंग से व्यक्ति के सामने रखा गया जिसके संदर्भ में व्यक्ति ने अपनी भावनाएँ व्यक्त की, यह प्रक्षेपण कहलाता। एक समाज कार्यकर्ता इस विधि का प्रयोग करके व्यक्ति के मन की बात जान सकता है और उसकी समस्या का निदान कर सकता है।

5.3 समस्या समाधान सिद्धान्त -

सर्वप्रथम समस्या समाधान सिद्धान्त को संमेटिकन शिक्षा शास्त्री जॉन डीवी ने प्रस्तुत किया मगर इसको व्यावहारिक एवं विस्तृत रूप पर्लमैन ने दिया। अत: इस सिद्धान्त के प्रणेता पर्लमैनमाना जाता है। इसमें समस्या का चयन करने के बाद मानसिक स्तर पर उसके समाधान के लिए कई योजना वैकल्पिक रूप में बनाई जाती है। फिर मानसिक स्तर पर ही यह मूल्यांकन किया जाता है कि कौनसी योजना सर्वाधिक कम समय, श्रम एवं संसाधन में बेहतर ढंग से समस्या का निदान कर सकती है। इसके बाद जो सर्वश्रेष्ठ योजना होती है उसके द्वारा व्यावहारिक स्तर पर समस्या का समाधान करते है। उदाहरण- समस्या यह है कि किसी गाँव में पर्यावरण के प्रति जागरूकता लानी है। इसके लिए निदान कर्ता कई विकल्प योजना के तौर पर मानसिक स्तर पर बना सकता है जैसे- पहला, टेलीविजन एवं रेडियो के माध्यम से पर्यावरण जागरूकता; दूसरा किताबें पर्यावरण सम्बन्धी गाँव में वितरित करके; पर्यावरण जागरूकता, पर्यावरण सम्बन्धित शिक्षण कक्षा गाँव में चला कर पर्यावरण जागरूकता। इन तीन विकल्पों में से अब

नियोजनकर्ता देखता है कि पर्यावरण जागरूकता किस विकल्पीय योजना के द्वारा सर्वाधिक बेहतर रूप में न्यूज, समय, श्रम एवं संसाधन के द्वारा होगी। अब नियोजन कर्ता इस निर्णय पर पहुँचता है कि तीन विकल्पों में से एक विकल्प, पर्यावरण के संदर्भ में शिक्षण कक्षा चलाकर जागरूकता फैलाना अच्छा होगा। इसके बाद नियोजन कर्ता अपने सभी संसाधनों द्वारा शिक्षण कार्य व्यावहारिक स्तर पर चलाना प्रारम्भ करता है। इस सिद्धान्त की विशेषता होती है कि इसमें उच्च बुद्धि और कल्पना की आवश्यकता पड़ता है।

इस सिध्दांत के माध्यम से कार्यकर्ता निम्नलिखित भूमिका को अदा करता है–

1. सेवार्थी की प्रेरणा में, परिवर्तन लाने के लिए कार्यकर्ता एक दिशा प्रदान करता है, सेवार्थी को एक ऊर्जा प्रदान करता है तथा निर्देशन के माध्यम से उसे समझाने का प्रयास करता है। इस सिध्दांत के माध्यम से सेवार्थी को भय एवं चिंतामुक्त बनाना है जिससे वह आत्म निर्भर बन सके और समाज में अपना जीवन- यापन सुचारू रूप से कर सके।
2. सेवार्थी की मानसिक, सांवेगिक तथा क्रियात्मक क्षमताओं का समस्यासमाधान में अनेकों बार अभ्यास कराना जिससे कि सेवार्थी के मन में दृढ़ विश्वास कायम हो जाय।
3. उन समस्त संसाधनों को सेवार्थी तक पहुँचाना जो कि सेवार्थी की समस्या को सुलझाने में सहायक सिध्द हो सक। इस सिध्दांत के माध्यम से कार्यकर्ता यह प्रयास करता है कि साधनों का संचयन कैसे किया जाय जिससेवह सेवार्थी हेतु लाभदायक बन सके।

समस्या समाधान का सिध्दांत निम्नवत बातों को महत्वपूर्ण मानता है–

4. कार्यकर्ता को यह प्रयास करना चाहिए कि सेवार्थी की जो भी समस्या हो वह समस्या सेवार्थी को ज्ञात होनी चाहिए।
5. सेवार्थी स्वयं की समस्या को किस आधार पर देखता है, उसके समस्या के प्रति किस प्रकार के प्रयास रहे हैं, किस प्रकार वह समस्या को देखता है एवं क्या अनुभव करता है, क्या दृष्टिकोण रखता है, कैसे व्याख्या करता है और साथ ही साथ समस्या समाधान के लिए क्या प्रयास किया है ?
6. व्यक्ति के जीवन पर इसका क्या प्रभाव पड़ा है ?

5.4 व्यवहार संशोधन सिद्धान्त -

यह बताना सही होगा कि व्यवहारवाद के जन्मदाता वाटसन थे। इनका मानना था कि "हमें कोई एक बच्चा दे दे, हम उसको डॉक्टर या डकैत जैसा चाहेंगे, वैसा बना देंगे।" व्यवहारवाद के अन्तर्गत कई सिद्धान्त है जो व्यक्ति के व्यवहार को अलग-अलग तरीके से परिवर्तित करने की बात करते है।

1. उद्दीपन अनुक्रिया सिद्धान्त - इस सिद्धान्त को 'थार्नडाइक' ने दिया। उन्होंने कहा था कि "एक व्यक्ति किसी कार्य को बार-बार करता है तो एक समय ऐसा आता है कि व्यक्ति सही काम करने में सफल हो जाता है"। इस प्रकार यह सिद्धान्त प्रयास और तुष्टि की प्रक्रिया को सीखने में प्रमुख आयाम मानता है।

2. शास्त्रीय अनुबन्धन सिद्धान्त - इस सिद्धान्त के प्रतिपादक पॉवलोव थे। उनका मानना था कि किसी व्यक्ति के सामने दो उद्दीपन स्वाभाविक एवं कृत्रिम एक साथ डाला जाए हो कुछ समय बाद व्यक्ति की जो अनुक्रिया स्वाभाविक उद्दीपन के प्रति होती है वही अनुक्रिया कृत्रिम उद्दीपन के प्रति होने लगती है। जैसे– बच्चा स्कूल नहीं जाना चाहता, पिता उसे टॉफी का लालच देते हैं। अब बच्चा टाफी के लक्ष्य में स्कूल जाना प्रारम्भ कर देता है। एक समय ऐसा आता है कि बच्चा टॉफी के बगैर स्कूल जाना ही प्रारम्भ कर देता है। इस प्रकार बच्चे की चाकलेट या टॉफी के प्रति जो स्वाभाविक अनुक्रिया थी वह अब स्कूल के प्रति भी बन गई। इस तरह एक समाजकार्य कर इसका सिद्धान्तों को जानने के पश्चात अच्छा कार्य कर सकता है।

3. अवलोकन से सीखना – यहाँ सीखने वाला एक अवलोकनकर्ता होता है जिसके लिए एक आदर्श होता है। वह एक ऐसे व्यक्ति का अनुसरण करना प्रारंभ कर देता है जिसके पास एक अच्छीसामाजिक एवं आर्थिक स्थिति होती है वह वैसा ही बनना चाहता है।उदाहरण के रूप में यदि हम समझे तो यह कह सकते है कि एक बच्चा किसी अन्य बच्चे के पास रखे खिलौने को देखकर लालायित होने लगते है ओर उसे प्राप्त करने का प्रयास करने लगता है।

4. समसामयिक घटनाएं - कुछ घटनाएँ ऐसी होती है जो मनुष्य के जीवन में अत्यधिक प्रभाव डालती है और मनुष्य के लिए तनावपूर्ण स्थिति, उद्वेग, क्रोध, घबराहट या भय को उत्पन्न कर देती है। जब व्यक्ति ऐसी भावनाओं से ग्रसित होता है तो वह असामान्य व्यवहार करने लगता है जो कि समाज को स्वीकार्य नहीं होता।

इस सिद्धांत के माध्यम से सेवार्थी की सहायता करने की जो प्रत्यक्ष प्रविधियां होती है उन्हें और सशक्त बनाने का प्रयास किया जाता है और जो प्रक्रियाए सेवार्थी के व्यवहार को कमजोर कर रही है उसे दूर करने का प्रयास किया जाता है। उन अवांछनीय व्यवहारों को पहचानना अत्यंत आवश्यक होता है जो व्यवहार को प्रभावित करते है। जो कारक वांछनीय व्यवहार को पुनःसुदृढ़ बनाने के लिए उत्प्रेरकों के रूप में काम करते हैं उन्हें सुदृढ़ बनाया जाना चाहिए। सामाजिक परिदृश्य में इस आवश्यकता को सेवार्थी हेतु अत्यधिक उपयुक्त माना जाता है।

5.5 संज्ञानात्मक सिद्धान्त -

इस सिद्धान्त के प्रतिपादक कोहलर तथा कोफ्मा थे। संज्ञानात्मक सिद्धान्त यह मानता है कि व्यक्ति उद्दीपक अथवा समस्या के प्रति समग्र रूप से सोचता है। वह समस्या के प्रति एक-एक चर को लेकर शीघ्र निर्णय नहीं लेता बल्कि व्यक्ति के मस्तिष्क में सम्पूर्ण परिस्थिति का चित्र बनता है। गेस्टाल्टवादियों के अनुसार जब सेवार्थी के सामने कोई समस्या आती है तो वह सब समस्याओं को अलग-अलग नहीं बल्कि उन्हें समग्र रूप में मिलाकर देखता है।संपूर्ण परिस्थिति को देखकर वह अपनी सूझ या अंर्तदृष्टि द्वारा समस्या का समाधान खोजता है। कार्यकर्ता का यह प्रयास होता है कि वह सेवार्थी की समस्या को समझे और उसके पश्चात ही सही समाधान हेतु उपयुक्त उपाय या रास्ता निकालने में सफल होता हैं। किसी परिस्थिति में सेवार्थी में जैसे ही सूझ उत्पन्न होती है, वह सही अनुक्रिया करने लगता है तथा इस प्रकार वह परिस्थिति में उस अनुक्रिया को करना सीख जाता है। सूझ द्वारा सीखने में सेवार्थी संपूर्ण परिस्थिति को एक साथ देखता है तथा उसे एक इकाई के रूप में समझता है।इसके अंतर्गत सेवार्थी संपूर्ण परिस्थिति के प्रत्यक्षीकरण के प्रति अनुक्रिया करता है। ग्लीटमैन ने अर्न्तदृष्टि के संदर्भ में कहा जाता है कि सूझपूर्ण अधिगम ऐसा अधिगम है जो किसी समस्या के घटकों या अवयवों के बीच संबंधों की समझ से होता है।इस प्रकार संज्ञानात्मक सिद्धान्त मानता है कि जब किसी व्यक्ति का संज्ञानात्मक पक्ष कमजोर हो जाता है तो व्यक्ति निर्णय लेने में असमर्थ हो जाता है। एक समाज कार्यकर्ता इस सिद्धान्त के जानकारी के बदौलत सेवार्थी के निर्णय शक्ति में सकारात्मक परिवर्तन ला सकता है। इसलिए यह सिद्धान्त मानता है कि अगर कोई समस्या व्यक्ति सामने आती है तो यह समस्या व्यक्ति के कार्यों का प्रतिफल होती है। समाज कार्यकर्ता व्यक्ति को इस समस्या से बाहर निकालने में किसी एक सिद्धान्त का प्रयोग करता है।

संज्ञानात्मक सिद्धांत को और अधिक निम्नवत बिंदुओं के माध्यम से समझा जा सकता है –

1. मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है इसलिए वह हमेशा ही यह प्रयत्न करता है कि प्रत्येक मनुष्य उसको प्यार करे, चाहे स्थिति कुछ भी क्यों न हो और प्रत्येक स्थिति को स्वीकार करें जिससे व्यक्ति का मनोबल हमेशा बढ़ा रहे।

2. मनुष्य के जीवन में हर स्थिति समान नहीं होती। जब वक्त बुरा होता है और कुछ अच्छा नहीं घटता है और उसकी बनाई योजनाओं के साथ नहीं चीजें नहीं चलती है। तो यह स्थिति भयावह, या डरावनी होती है।
3. मनुष्य का भावनाओं पर नियंत्रण नही होता है भावनाएं बाहरी ताकतों के माध्यम से कार्य करती है और उत्पन्न होती हैं और इन पर व्यक्ति का कोई नियंत्रण नहीं होता।
4. मनुष्य को यदि किसी भी वस्तु ने एक बार कुप्रभावित कर दिया तो वह सारे जीवन में उसको किसी न किसी रूप में प्रभावित करती रहेगी चाहे मनुष्य उससे कितना ही पीछा छुडाना क्यों न चाह ले।
5. कई बार अनेक प्रयासों के बावजूद भी यदि मनुष्य अपने लक्ष्यों को प्राप्त नहीं कर पाता है तो यह एक व्यक्ति की बड़ी त्रासदी या घटना मानी जाती है।

इन पाँच अतार्किक विचारों की तुलना में इतने ही तर्कपूर्ण विचार होते हैं। ये इस प्रकार हैं:

1. मनुष्य प्रेम हेतु हमेशा लालायित रहता है परंतु हर स्थिति में प्रत्येक व्यक्ति द्वारा उसे प्रेम मिलना संभव नही है।
2. कुछ भी भयावह या डरावना नहीं होता, यदि चीजें अपनी सुविधानुसार नहीं चल पा रही है तो उन्हें अपनी योजना के अनुसार पूर्व की स्थिति में लाया जा सक्ता है।
3. मनुष्य की भावनाएं मनुष्यस्वयं अपनी सोच से उत्पन्न करता है और इस सोच को नियंत्रित किया जा सकता है।
4. कोई घटना ऐसी नहीं होती है कि जिसको भुलाया नहीं जा सकता वक्त के साथ हमेशा चीजें बदल जाती है ।बुरी घटनाओं के असर को इस स्थिति को सीखने के अनुभव के रूप में इस्तेमाल करके, परिवर्तित किया जा सकता हैं।
5. यदि मनुष्य को अपना लक्ष्य प्राप्त नही होता है तो वह दुखी अवश्य होता है किंतु यह त्रासदी नहीं होती। दु:खी होने की अनुभूतिको गहन सोच एवं प्रयत्नोंसे बदला जा सकता है।

चिन्ताशील/तर्कपूर्ण भावनात्मक उपचार की चार अवस्थाएं होती है:

1. **तर्कपूर्ण का प्रस्तुतीकरण :-** सेवार्थी समस्या अथवा सेवार्थी की समस्या का उल्लेख किए बिना ही स्व-उल्लेखों की प्रासंगिकता को प्रकाश में लाने का प्रयास करता है।
2. **अतार्किक मान्यता का सिंहावलोकन :-** कई बार सेवार्थी के सामने ऐसे अतार्किक वक्तव्यों को रखा जाता है और सेवार्थी को यह महसूस कराने का प्रयास किया जाता है कि उसका वक्तव्य अतार्किक है।
3. **तर्कपूर्ण भावनात्मक रूप में सेवार्थी की समस्या का विश्लेषण :-** सेवार्थी को तर्कपूर्ण ढंग से उसकी समस्याके बारे में अवगत कराया जाता है और उसे यह जानकारी उपलब्ध कराई जाती है कि उसने समस्या को किस हद तक समझने का प्रयास किया है और समस्या को क्या नाम दिया है ?
4. **सेवार्थी को आन्तरिक वक्तव्यों को संबोधित करना सिखाना :-**

सेवार्थी के प्रति हमेशा यह प्रयास किया जाता है कि जो सेवार्थी में उद्विग्नता उत्पन्न करने वाली अभिवृतियाँ है उनको कैसे बदला जाय। सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य की प्रकिया में सहायक प्रक्रियाओं, जैसे खेल-कूद,नाच-गाना इत्यादि, के माध्यम से सेवार्थी को तार्किकता का संदेश देकर उसे समायोजन करना सिखाया जाता है। सेवार्थी को उसके व्यवहार में यथासंभव तर्कपूर्ण रहने तथा उसके आसपास की तर्कपूर्ण चीजों को देखने में मदद करता है। सेवार्थी को हमेशा से ही ऐसा प्रशिक्षित किया जाता है कि जो भी वह सामने वाले से बोले उसके वक्तत्व में ऐसी भाषा होनी चाहिए जिससे की प्रतिकूल घटनाएं गहन भावनाएं उत्पन्न न करें।

5.5 अस्तित्व सिद्धान्त :-

यह सिद्धान्त मानव जीवन की गरिमा एवं उसके वैयक्तिक स्वरूप को अस्तित्व प्रदान करता है। इस सिद्धान्त का मानता है कि व्यक्ति सिर्फ एक स्थूल अथवा मूल आकार भर ही नहीं है। बल्कि वह चेतनशील सत्ता है।

अपने इसी चेतनशील गुणों के कारण वह अपने आप को सक्षम बना सकता है। ऐसी मान्यता है कि मानव परिस्थितियों का दास होता हैं, मगर अस्तित्ववादी सिद्धान्त इसका खण्डन करता है और कहता है कि मनुष्य के पास परिस्थितियों से लड़ने तथा उस पर विजय प्राप्त करने की क्षमता होती है।

अस्तित्व सिद्धान्त के मुख्य बिंदु निम्नमुसार है -

1. मनुष्य केवल एक मौजूदा सत्ता नही है वह अपने अस्तित्व के प्रति अवगत होने तथा अपने अस्तित्व को अर्थ प्रदान करने में भी सक्षम होता है।
2. मनुष्य को बाहरी ताकतें किसी न किसी रूप में प्रभावित कर सकती है किंतु हमेशा ही मनुष्यइन प्रभावित करने वाली ताकतों या कारकों के प्रभाव में आ जाए यह स्वीकार योग्य नहीं होता है । प्रत्येक मनुष्य में यह क्षमता होती है कि वह इन बाहरी ताकतों से निपटने में सक्षम होता है । इस दृष्टिकोण के अनुसार प्रत्येक मनुष्य चाहें वह स्त्री हो या पुरूष अपने व्यक्तित्व के रचयिता होते हैं, यद्यपि अंशत: वे अपनी परिस्थितियों के रचयिता भी होते हैं।
3. व्यक्ति को समझने का अर्थ है कि जो समझने की प्रक्रिया में हैं,वह अपने अवलोकन, कल्पना तथा सोच के जरिए अन्य व्यक्ति के यहाँ और अभी जीवन में उसके स्थिर तथा गतिशील पक्षों को अनुभव करना है। समझना एक बौद्धिक और भावनात्मक प्रक्रिया होती है। जबकि स्पष्टीकरण एक बौद्धिक प्रक्रिया होती है जो बिना किसी भावनात्मक सहारे के होती है।
4. आजादी का तात्पर्य यह नहीं है कि प्रत्येक व्यक्ति कुछ भी कार्य करे जो वह करना चाहता है बल्कि आजादी का तात्पर्य यह है कि जिससे व्यक्ति किसी भी कार्य को सजगता और जिम्मेदारी से करे । वर्तमान समय में लोगों ने आजादी का गलत मतलब निकालना प्रारंभ कर दिया है जिससे स्वतंत्रता के अधिकार के रूप में उनकी अवधारणा गायब होती है, जिसके परिणामस्वरूप वे सामाजिक कार्य प्रणाली में समस्याएं उत्पन्न करते हैं।

i. यह दृष्टिकोण वैयक्तिक कार्य में निम्नवत लक्ष्यों के लिए काम करता है :

5. **भ्रम निवारण की प्रक्रिया में सहायता :-** एक व्यक्ति जिसकी अपने तथा दूसरों के बारे में गलत मान्यताएं हैं उसे समस्या के संबंध में भ्रमनिवारण की प्रक्रिया से गुजरना पड़ता है। यहाँ तक कि उद्देश्यपरक तथ्य स्थापित हो जाता है कि सेवार्थी की समस्या उसी के कार्यों का परिणाम हैं। बड़ी सम्भावना इस बात की है कि वह इससे इंकार करेगा और दूसरों अथवा परिवेश पर दोष लगाएगा। यहाँ भ्रम-निवारण का अर्थ यह जानना है कि व्यक्ति के अच्छे-बुरे कार्यों की वजह से समस्या कैसे उत्पन्न हुई? अपनी समस्या को जानना एक बेचैन करने वाली प्रक्रिया होती है और इसीलिए भावनात्मक समर्थन परामर्श की अन्य तकनीकों के अनुप्रयोग के जरिए सामाजिक कार्यकर्ता का शामिल होना आवश्यक है।
6. **उपयुक्त रूप से तथा उत्तरदायित्व के साथ कार्य करने की स्वतंत्रता के साथ सेवार्थी का सामना करना :** सेवार्थी को उन स्थितियों से जिनमें वह अपनी व्यवसायगत प्रवृतियों का दास होता है लेकिन वह जब तक अंदर की इच्छा शक्ति का उपयोग अपनी दासता को जोड़ने के लिए नहीं करेगा तब तक वह अपना कार्य पूर्ण स्वतंत्रता एवं उत्तरदायित्व के साथ नही कर सकता है ।उसको अपनी इच्छा शक्ति का प्रयोग करने के लिए प्रोत्साहित करना पड़ता है । समाज कार्य प्रणाली पुनरावृति की इस प्रक्रिया को प्रभावित कर सकती है । उदाहरण के लिए, यदि एक शराबी अपनी शराब पीने की समस्या से निजात पाना चाहता है तो उसे शराब से इंकार करने की अपनी स्वतंत्रता का इस्तेमाल करना होगा। इसका अर्थ उद्विग्नता तथा तनाव को अस्तित्व के तथ्यों के रूप में स्वीकार करना, तथा शराब के जरिए अस्थायी बचाव ढूँढ़ने की बजाए जिम्मेदारी पूर्वक सोचकर तथा कार्य करके जीवन के ऐसे तथ्यों को सम्भाल करने का निर्णय लेना स्वीकार करना होगा।

7. **सेवार्थी को पुरानी आदत बदलते के लिए प्रतिबद्ध होने में मदद करना:-** कार्यकर्ता का यह प्रयास होना चाहिए कि वह सेवार्थी को हमेशा प्रोत्साहित करता रहे जिससे सेवार्थी में जो भी पुरानी आदतों का समावेश हुआ है उसे आसानी से निकाला जा सके और सेवार्थी को स्वतंत्र रूप से सोचने हेतु तैयार कर सके। सेवार्थी का व्यवहार परिवर्तित करने के लिए , किसी भी अन्य उपलब्धि की तरह, नई सोच तथा कार्य के रूप में कदम दर कदम आगे बढ़ने की जरूरत होती है। कई बार ऐसा होता है कि कुछ प्रयासों को करने के पश्चात कार्यकर्ता हताश हो जाता है और सेवार्थी के प्रति एक चिड़चिड़ाहट पैदा करने लगता है इस स्थिति में कार्यकर्ता को समाज कार्य के सिध्दांत, धैर्य और साहस का सिध्दांत याद करना चाहिए और उसे उपयोग में लाना चाहिए। सामाजिक कार्यकर्ता सेवार्थी के लिए कार्य सुझाकर तथा ये कार्य करने के लिए उसे प्रेरित करके उसे सहायता उपलब्ध करा सकता है।

5.6 प्रेमवत व्यवहार परिशोधन का सिद्धान्त :-

इस सिद्धान्त अथवा मॉडल को 'हाल्मोस' नामक एक अंग्रेज विद्वान ने दिया था॥ उनका मानना था कि 'प्रेम' एक अमूल्य चीज है। यही सभी समस्या का निदान कर सकता है। जब समाज कार्यकर्ता सेवार्थी से पूरी तरह प्रेमवत व्यवहार करता है तो सेवार्थी उस पर विश्वास करता है। ऐसे में समाज कार्यकर्ता सेवार्थी के अन्दर मनचाहा परिवर्तन ला सकता है। देखने में आता है कि जब व्यक्ति अपने आस-पास के लोगों से प्रेमवत व्यवहार अपने प्रति प्राप्त करने में असफल होता है तो व्यक्ति में ही यह भावना पैदा हो जाती है और वह समाज व्यक्ति दोनों से अलग होते जाता है। इसलिए समाज कार्यकर्ता को उससे प्रेमवत व्यवहार करके अपना व्यवसायिक लक्ष्य प्राप्त करना चाहिए।

5.7 मैं और मुझे का सिद्धान्त :-

इस सिद्धान्त को 'I and Me' भी कहा जाता है। जिसके प्रतिपादक 'मीड' है। इसके तहत यह माना जाता है कि व्यक्ति को 'स्व' का निर्माण किस प्रकार हुआ है अथवा कैसे हुआ है? वह इस पर निर्भर करता कि व्यक्ति के बारे में कैसा सोचते एवं व्यक्ति से कैसा व्यवहार करते है। मनुष्य एक मनोसामाजिक प्राणी है। इस कारण व्यक्ति में स्व या आत्म तत्व तथा दैहिक या शारीरिक प्राणी होने के कारण घटनात्मक क्षेत्र तत्व होते हैं। ये दोनों तत्व अधिगम को प्रभावित करते हैं। घटनात्मक क्षेत्र एवं आत्म तत्व के द्वारा ही व्यक्ति बाह्य एवं आंतरिक जगत् से अनुभव प्राप्त करता है। ये अनुभव ही आगे चलकर अधिगम का रूप धारण करते है। व्यक्ति में स्व या आत्म निर्माण की प्रक्रिया शैशवावस्था से ही प्रारंभ हो जाती है। व्यक्ति में मैं और मेरा मुझकों इत्यादि जैसी अनुभूतियों का विकसित होना स्वके विकास का ही रूप है। विकास के इसी क्रम में शिशु अपनी पहचान बनाने लगता है। कार्ल रोजर्स ने स्व को दो रूपों आत्म-प्रत्यय एवं आदर्श स्व के रूप में बाँटा है। आत्म प्रत्यय का स्वरूप स्थायी होता है तथा इसमें परिवर्तन सरल नहीं होता। स्व का दूसरा रूप आदर्श स्व है इसमें व्यक्ति अपने विषय में विकसित छवि एक विशिष्ट रूप को आदर्श छवि मान लेता है। यह आदर्श छवि ही आदर्श स्व होती है। उदाहरण के तौर पर यदि कोई समाज किसी व्यक्ति को बहुत मान-सम्मान एवं अच्छा मानता है तो वह व्यक्ति अच्छा बनने एवं मान-सम्मान प्राप्त करने की भरपूर कोशिश करता है। अत: समाज कार्यकर्ता व्यक्ति के वातावरण को व्यक्ति के संदर्भ में सकारात्मक बदलकर व्यक्ति के स्व का पुनर्गठन करता है।

5.9 ग्रहण शीलता के दृष्टिकोण का सिद्धान्त :-

हमेशा यह देखा जाता है कि ऐसा कोई सिद्धांत नहीं है जो मानव दृष्टिकोण को सही रूप में व्याख्यायित कर सके। देखा जाए तो हर सिद्धान्त में कुछ न कुछ खामियाँ है जिसके कारण कोई भी सिद्धान्त व्यक्ति के गुणों अथवा उसकी समस्या का पूर्व समाधान नहीं कर पाता। इसलिए ग्रहणशील दृष्टिकोण का सिद्धान्त कहता है

कि समाज कार्य कर्ता को चाहिए कि सेवार्थी की समस्या को क्रमागत ढंग से पहले वर्णन करे, फिर विविध सिद्धान्तों का प्रयोग उचित स्थान पर करके समस्या का निदान करे। जैसे सीखने की प्रक्रिया में समाज कार्यकर्ता उद्दीपन-अनुक्रिया सिद्धान्त का भली-भाँति प्रयोग कर सकता है। निर्णय प्रक्रिया को तीव्र एवं सही बनाना है तो समाज कार्यकर्ता संज्ञानात्मक सिद्धान्त का प्रयोग कर सकता है। सेवार्थी से गहरा सम्बन्ध बनाना है तो समाज कार्यकर्ता प्रेमपूर्वक कार्य करने का प्रयोग सिद्धान्त में कर सकता है। इस प्रकार प्रत्येक सिद्धान्त की अपनी-अपनी विशेषताएँ एवं सीमाएँ है। व्यक्ति इसको समझ कर अपना अच्छे ढंग से कार्य कर सकता है।

5.10 सारांश :-

व्यक्ति समाज में रहता है। वह समाज में जन्म से लेकर मृत्यु पूर्व तक सभी अपनी क्रिया करता है। उसकी सम्पूर्ण क्रिया तीन पक्षों (अनुकूलन, समायोजन एवं परिवर्तन) के इर्द-गिर्द घूमती है। अनुकूलन का अर्थ है व्यक्ति द्वारा खुद में बदलाव का लाना, समायोजन का अर्थ है व्यक्ति द्वारा समाज के साथ अथवा खुद के पर्यावरण के अनुरूप क्रिया करना तथा परिवर्तन का अर्थ है कि व्यक्ति जिस भी समाज, पर्यावरण में रहना है वह न कुछ क्रिया करके पर्यावरण में अपने इच्छानुसार बदलाव लाता है। जब कभी व्यक्ति अनुकूलन, समायोजन एवं परिवर्तन की क्रिया में अपने-आप को असमर्थ पाता है तो वह मानसिक, आर्थिक, सामाजिक समस्याओं से घिर जाता है। ऐसी दशा में एक समाज कार्यकर्ता उसके लिए अवलम्बन, मार्गदर्शक एवं समस्या निदानकर्ता साबित होता है। सामाजिक वैयक्तिक कार्य में जब सेवार्थी व्यक्तिगत सामाजिक असंतुलनों के साथ संस्था में आता है तो इस प्रकार के असंतुलनों को सुधारने हेतु कार्यकर्ता को अनेक प्रकार की प्रणालियों एवं तकनीकों का सहारा लेना पड़ता है। वैयक्तिक कार्य में सेवार्थी अपनी एक या अधिक समस्याओं को लेकर वैयक्तिक कार्य संस्था या कार्यकर्ता के पास आता है परन्तु उसकी समस्याओं का संबंध उसके संपूर्ण व्यक्तित्व अर्थात शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, विगत जीवन के अनुभव, वर्तमान क्रियाओं तथा प्रतिक्रियाओंऔर भविष्य की आशाओं से होता है अत: समस्या को समझने के लिए ये कारक महत्वपूर्ण होते है परन्तु इन कारकों को तभी समझा जा सकता है जब कार्यकर्ता विभिन्न सिद्धांत के प्रयोग के माध्यम द्वारा सेवार्थी की समस्या को समझने का प्रयास करे। समाज एक व्यापक संकल्पना है। यहाँ अनेक मानवीय समस्याएँ पाई जाती है। जिनके जिम्मेदार भौतिक कारक या मानवीय कारक हो सकते है। इस प्रकार देखा जाए तो समाज कार्यकर्ता एक चिकित्सक की भूमिका निभाता है। उसे समस्याओं को समझने एवं उनके निदान के लिए कुछ उपागम एवं सिद्धान्त की आवश्यकता होती है। ये सिद्धान्त ही समाज कार्यकर्ता के प्रमुख शस्त्र हो सकते है।

5.11 बोध प्रश्न

प्रश्न 01. सिद्धांत से आपका क्या तात्पर्य है ?

प्रश्न 02. सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य प्रक्रिया में प्रयुक्त सैद्धांतिक विचारधाराओं पर प्रकाश डालिए।

प्रश्न 03. अस्तित्व सिद्धांत के मुख्य बिंदुओं पर प्रकाश डालिए।

प्रश्न 04 . चिन्तनशील सिद्धांत को परिभाषित कीजिए।

प्रश्न 05. . सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य प्रक्रिया में सिद्धांतों की भूमिका को स्पष्ट कीजिए।

512 सन्दर्भ एवं उपयोगी ग्रन्थ

❖ मिश्रा, प्रयागदीन (2003). *सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य*.लखनऊ : हिंदी संस्थान।

- सिंह, ए.एन., सिंह, नीरजा ,संजय,मिश्रा,सुषमा (2012). *सामूहिक कार्य.*हल्दानी : उत्तरायन प्रकाशन।
- इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय (2010).*व्यक्तियों के साथ कार्य करना.*दिल्ली: समाज कार्य विद्यापीठ।
- सिंह, ए.एन., सिंह, नीरजा ,संजय,मिश्रा,सुषमा (2012). *वैयक्तिक कार्य.*हल्दानी : उत्तरायन प्रकाशन।
- सुभान,अब्दुल(1998). *समाज मनोविज्ञान.* रांची: जानकी प्रकाशन अशोक राज पथ चौहटा।
- यादव,सियाराम (2010). *अधिगम कर्ता का विकास एवं शिक्षण अधिगम प्रक्रिया.* इलाहाबाद: शारदा पुस्तक भवन।
- प्रसाद मणिशंकर, सत्य प्रकाश, कुमार अरूण,कुमार संजय,सैफ मो.खान एवं सिंह अभव कुमार(2103). *यूजीसी नेट/जेआरएफ/स्लेट समाज कार्य.*दिल्ली: अरिहंत पब्लिकेशन(इण्डिया)लिमिटेड।
- तेज, संगीता. पाण्डेय तेजस्कर (2010). *समाज कार्य.* लखनऊ: जुबली एच फाउन्डेशन।

खंड 3

सामाजिक समूह कार्य का परिचय

इकाई - 1 सामाजिक समूह:विशेषताएँ और महत्व

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य
1.1 प्रस्तावना
1.2 समूह का अर्थ एवं परिभाषाएँ
1.3 सामाजिक समूह की विशेषताएँ
1.4 समूह का वर्गीकरण और महत्व
1.5 समूहों के लाभ
1.6 सारांश
1.7 बोध प्रश्न
1.8 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

1.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करके आप जानेंगे -

1. समूह क्या होता है एवं समूह का मनुष्य के जीवन में क्या महत्व है?
2. समूह का अर्थ एवं परिभाषाएँ
3. सामाजिक समूह की विशेषताएँ।
4. समाज में समूह के प्रकार एवं उनकी विशेषताएँ।
5. व्यक्तित्व विकास पर समूहों के प्रभाव को रेखांकित कर सकेंगे।

1.1 प्रस्तावना

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह समाज में रहकर ही अपना जीवन-यापन कर सकता है। समाज के बिना मनुष्य का जीवन असंभव नजर आता है । समाज का दायरा कितना बड़ा है यह कहना अत्यंत ही मुश्किल है इसलिए समूह मनुष्य के जीवन में एक अत्यन्त महत्वपूर्ण वास्तविकता है। वह जन्म से मृत्यु पर्यन्त न केवल विभिन्न प्रकार के समूहों में रहता है बल्कि निरन्तर नए समूहों का निर्माण भी करता है। समूहों के माध्यम से ही व्यक्ति अपनी विभिन्न प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। समूहों से पृथक व्यक्ति के अस्तित्व की साधारणतः कल्पना नहीं की जा सकती। विभिन्न समूहों के माध्यम से ही व्यक्ति का समाजीकरण और व्यक्तित्व का विकास होता है। प्रत्येक काल में चाहे वह वर्तमान काल हो या भूतकाल, प्रत्येक समाज में समूहों का अपना योगदान रहा है जिससे मनुष्य ने अपना जीवन निर्वाह किया है । मनुष्यों के अलावा हमें पशुओं में भी समूह के प्रतीक नजर आते हैं जैसे उनका कतार बनाकर चलना, साथ-साथ भागना, चारागाहों में एक साथ चरना आदि। मनोवैज्ञानिकों की मान्यता है कि व्यक्ति अपनी एक मूलप्रवृत्ति 'ग्रिगेरियस इन्सटिक्ट' (Gregarious Instinct) के कारण ही समूह में रहता है। समूहों के माध्यम से ही एक पीढ़ी के विचारों तथा अनुभवों को दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित किया जाता है। आमतौर पर समूह

शब्द का प्रयोग कुछ व्यक्तियों के संगठन जैसेपरिवार, भीड़, सामाजिक वर्ग, धार्मिक वर्ग, व्यावसायिक वर्ग, विभिन्न प्रजातियां, आदि के लिए किया जाता है। (समूहों को और अधिक स्पष्ट) विभिन्न विद्वानों द्वारा दी गई परिभाषाओं से किया जा सकता है-

1.2 सामाजिक समूह का अर्थ एवं परिभाषा-

अर्थ-

सामाजिक समूह ऐसे व्यक्तियों का एक संग्रह या संगठन है जिनके बीच किसीन-किसी प्रकार का सम्बन्ध पाया जाता है। समूह का अर्थ स्पष्ट करते हुए मेकाइवर एवं पेज ने लिखा है, "समूह से तात्पर्य व्यक्तियों के किसी भी ऐसे संग्रह से है जो एक-दूसरे के साथ संबंध स्थापित करते है। टी.बी.बाटोमोर ने कहा है कि, "सामाजिक समूह व्यक्तियों के उस संकलन को कहते है जिसमें विभिन्न व्यक्तियों के बीच निश्चित सम्बन्ध होते है और प्रत्येक व्यक्ति समूह और उसके प्रतीकों के प्रति सचेत होता है।' अन्य शब्दों में, एक सामाजिक समूह का कम-से-कम प्रारम्भिक ढाँचा और संगठन (नियमों, संस्कारों सहित) होता है और उसके सदस्यों की चेतना का मनोवैज्ञानिक अधिकार होता है। इस प्रकार एक परिवार, गांव, राष्ट्र, मजदूर संगठन अथवा राजनीतिक दल एक सामाजिक समूह है।

आर.बी.केटल ने अनुसार है कि समूह व्यक्तियों के उस एकत्रीकरण को कहते हैं जिसमें प्रत्येक व्यक्ति की कुछ आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए सभी का सहयोग लिया जाय। हेरी एम. जॉनसन भी समूह के निर्माण के लिए व्यक्तियों मे आपसी सहयोग को आवश्यक मानते हैं।

मर्टन के अनुसार, समूह के लिए निम्नलिखित बातों का होना आवश्यक है:

1. दो या दो से अधिक व्यक्तियों का होना।
2. इनमें सामाजिक सम्बन्ध का पाया जाना। यह सम्बन्ध व्यक्तियों में बार-बार अन्तः क्रिया से ही बनता है।
3. व्यक्ति को किसी समूह का सदस्य माना जाने के लिए यह आवश्यक है कि वह स्वयं अपने को किसी समूह विशेष का सदस्य समझे, उसके प्रति 'हम की भावना' रखे। साथ ही यह भी आवश्यक है कि समूह के अन्य सदस्य तथा दूसरे समूह भी उसे उस समूह विशेष का सदस्य समझें।

कुछ विद्वानों द्वारा समूह को निम्न प्रकार से परिभाषित किया गया है-

विलियम के अनुसार:- "एक सामाजिक समूह व्यक्तियों के उस निश्चित संग्रह को कहते हैं जो परस्पर सम्बन्धित क्रियाएं करते हैं और जो इस अन्तःक्रिया की इकाई के रूप में ही स्वयं या दूसरे के द्वारा मान्य होते हैं।"

सेण्डरसन के अनुसार :- "समूह दो या दो से अधिक उन व्यक्तियों का संग्रह है जिनके मध्य मनोवैज्ञानिक अन्तःक्रिया का निश्चित प्रतिमान पाया जाता है। वे अपने एक विशिष्ट सामूहिक व्यवहार के कारण अपने सदस्यों तथा सामान्य रूप से दूसरे के द्वारा ही एकवास्तविक वस्तु माने जाते है।'

सैरिफ एवं सैरिफ के अनुसार :- "समूह एक सामाजिक इकाई है जिसका निर्माण ऐसे व्यक्तियों से होता है जिनके बीच (न्यूनाधिक) निश्चित परिस्थिति एवं भूमिका विषयक संबंध होतथा व्यक्ति-सदस्यों के आचरण को, कम-से-कम समूह के लिए महत्वपूर्ण मामलों में, नियमित करने के लिए जिसके अपने कुछ मूल्य या आदर्श-नियम हों।"

आर.एम.विलियम के अनुसार – 'एक सामाजिक समूह मनुष्य के उस निश्चित समुदाय को कहते हैं, जो अन्तःसंबंधित भूमिकाओं को अदा करतेहैं और जो अपने या दूसरों के द्वारा अंतःक्रिया की इकाई के रूप मेंस्वीकृत होते हैं।'

अतः इन समस्त परिभाषाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि सामाजिक समूह दो या दो से अधिक व्यक्तियों का संकलन है जो एक-दूसरे से अंतःक्रिया करते हैं। उपुर्यक्त परिभाषाओं को औरबेहतर तरीके से विभिन्न विशेषताओं के माध्यम से समझा जा सकता है।

1.3 सामाजिक समूह की विशेषताएँ

आगबर्न एवं निमकाफ ने सामाजिक समूहों के संदर्भमें कहा था कि जब कभी दो या दो से अधिक व्यक्ति एक साथ मिलते हैं और एक-दूसरे को प्रभावित करते हैंतो वे एक सामाजिक समूह का निर्माण करते है। सामाजिक समूहों की विशेषताओं को निम्नलिखित तथ्यों के माध्यम से स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है-

1. **व्यक्तियों का समूह :-** किसी भी समूह का निर्माण एक अकेले व्यक्ति द्वारा नहीं हो सकता। इसके लिए दो या दो से अधिक व्यक्तियों का होना आवश्यक है।
2. **उद्देश्य पूर्ति :-** प्रत्येक समूह का निर्माण किसी न किसी उद्देश्य के कारण ही होता है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए समूह के सदस्यों में कार्य-विभाजन कर दिया जाता है।
3. **सामान्य रुचि :-** किसी भी समूह की स्थापना उन्हीं व्यक्तियों द्वारा होती है जिनकी रुचि एक समान होती है जैसे-एक सी पसंद का होना,खेलना-कूदना आदि।
4. **एक समान हित :-** जब व्यक्ति का हित समान होता है तो वह समूह का निर्माण करना आरंभ कर देताहै। विरोधी हितों वाले व्यक्तियों के समूह का निर्माण करना असंभव हो जाता है।
5. **लक्ष्य :-** कोई समूह, समूह के रूप में उसी समय तक कायम रह सकता है जब तक वह किसी लक्ष्य की प्राप्ति हेतु एक साथ मिलकर प्रयास करते है यदि लक्ष्य प्राप्ति न हो तो समूह में एकता की भावना नहीं रह पायेगी और समूह टूट जायेगा।
6. **ऐच्छिक सदस्यता :-** समूह की सदस्यता ऐच्छिक होती है। इसका तात्पर्य यह है कि सदस्य अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु समूह को स्वीकारता है। व्यक्ति सभी समूहों का सदस्य नहीं बनता वरन् उन्हीं समूहोंकी सदस्यता ग्रहण करता है जिनमें उसके हितों, आवश्यकताओं एवं रुचियों की पूर्ति होती हो।
7. **स्तरीकरण :-** समूह में सभी व्यक्ति समान पदों पर नहीं होते वरन् वे अलग-अलग प्रस्थिति एवं भूमिका निभाते है। अतः समूहोंमें पदों का उतार-चढ़ाव पाया जाता है।
8. **सामूहिक आदर्श :-** प्रत्येक समूह में सामूहिक आदर्श एवं प्रतिमान पाए जाते है जो सदस्यों के पारस्परिक व्यवहारों को निश्चित करते है एवं उन्हें एक स्वरूप प्रदान करते हैं। प्रत्येक सदस्य से यह अपेक्षा की जाती है कि वह समूह के आदर्शों एवं प्रतिमानों जैसे प्रथाओं, कानूनों, लोकाचारों, जनरीतियों आदि का पालन करें।
9. **स्थायित्व :-** समूह में थोड़ी बहुत मात्रा में स्थायित्व भी पाया जाता है। यद्यपि कुछ समूह अपने उद्देश्यों की पूर्ति के बाद ही समाप्त हो जाते हैं, फिर भी वे इतने अस्थिर नही होते कि आज बने और कल समाप्त हो जाएं इसलिए समूह में स्थायित्व पाया जाता है।
10. **समझौता:-** किसी भी समूह की स्थापना तभी सम्भव है जब उसके सदस्यों में समूह के उद्देश्यों, कार्य-प्रणाली, स्वार्थ पूर्ति, नियमों आदि को लेकर आपस में समझौता हो।
11. **ढाँचा :-** प्रत्येक समूह की एक संरचना या ढाँचा होता है अर्थात् उसके नियम, कार्यप्रणाली, अधिकार, कर्तव्य, पद एवं भूमिकाएं आदि तय होते है और सदस्य उन्हीं के अनुसार आचरण करते है।

12. **अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्ध :-** एक समूह में परस्पर अन्तःक्रिया का होना अत्यंत ही आवश्यक होता है जब तक वह किसी अन्य व्यक्ति के साथ अन्तःक्रिया नहीं करेगा तब तक वह समूह का सदस्य नहीं कहला सकता।

13. **आदान-प्रदान :-** एक समूह के सदस्य अपने विचारों का ही आदान-प्रदान नहीं करते वरन् एक-दूसरे के कष्ट में सहयोग एवं सहायता भी करते हैं। सहयोग एवं आदान-प्रदान से ही समूह के सदस्य अपने सामान्य हितों की पूर्ति कर पाते है।

14. **स्पष्ट संख्या :-** एक सामाजिक समूह में सदस्यों की संख्या स्पष्ट होनी चाहिए जिससे उसके आकार एवं प्रकार को स्पष्ट रूप से समझा जा सके।

15. **हम-भावना :-** समूह के सदस्य एक-दूसरे की सहायता करते है तथा अपने हितों की प्राप्ति हेतु ही वे इकट्ठे होते है।

16. **एकता की भावना :-** समूह के सदस्य एकता तथा सहानुभूति की भावना से बंधे होते है।

उपर्युक्त विशेषताओं से स्पष्ट होता है कि समूह का निर्माण अकारण ही नहीं होता है इसके पीछे अनेक कारण होते है। मनुष्य की स्वार्थता एक समूह निर्माण में प्रभावी कारण नजर आता है। समूह का निर्माण क्यों और कैसे होता है? इस संदर्भ में मैकाइवर ओर पेज ने समूह में निम्नलिखित विशेषताओं की ओर ध्यान आकर्षित किया है, उनका मानना है कि सामान्यहित ही सामूहिकता की भावना को जन्म देता है इसका स्पष्टीकरण देते हुए उन्होने तीन बातों को मुख्य रूप से कहा है –

1. मनुष्य स्वयं ही आवश्यकता की पूर्ति कर सकता है पर वह व्यावहारिक नहीं है।
2. व्यक्ति समाज के अन्य सदस्यों से संघर्ष करके अपने लक्ष्य की प्राप्ति कर सकता है पर वह मानव समाज के लिए विघटनकारी है।
3. व्यक्ति कुछ लोगों के साथ सहयोग करके अपने लक्ष्य की प्राप्ति कर सकता है। अतः मैकाइवर और पेज के अनुसार यह तीसरा तरीका ही समूह निर्माण का कारक बनता है।

1.4 समूहों का वर्गीकरण एवं महत्व-

सामाजिक समूह वर्गीकरण के संदर्भ में अनेक विद्वानों ने अनेक प्रकार के मत दिए हैं। कुछ ने साधारण तरीके से व्यक्त किया है तो किसी ने व्यापक रूप से वर्गीकृत किया है। विभिन्न विद्वानों द्वारा किए गये समूह वर्गीकरण को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है-

❖ **कूले का वर्गीकरण -** चार्ल्स कूले ने समूहों को दो रूपों में वर्गीकृत किया है प्रथम प्राथमिक समूह (Primary Group) और द्वितीय, द्वितीयक समूह (Secondry Group), यद्यपि कूले ने' द्वैतीयक समूह' शब्द का प्रयोग नहीं किया है।

प्राथमिक समूह (Primary Group) - कूले ने अपनी पुस्तक 'सोशल आर्गनाइजेशन' (Social Organization) में सन 1909 में प्राथमिक समूह की अवधारणा को प्रस्तुत किया। कूले ने प्राथमिक समूह को स्पष्ट करते हुए कहा कि जिन सदस्यों में आमने-सामने के सम्बन्ध पाए जाते हों अर्थात सदस्य एक-दूसरे के सम्पर्क में प्रत्यक्ष रूप से आते हों, उस समूह को प्राथमिक समूह के नाम से जाना जाता है। जैसे- मित्र, पड़ोसी, साथी, परिवार के सदस्य तथा सदैव मिलने वाले लोग आते हैं। चार्ल्स कूले ने सर्वप्रथम खेल-कूद के साथियों, परिवार तथा पड़ोस की प्रकृति को स्पष्ट करने हेतु ही 'प्राथमिक समूह' शब्द का प्रयोग किया है। कूले ने प्राथमिक समूहों के संदर्भ में कहा है कि ये समूह प्राथमिक समूह इसलिए है क्योकि ये महत्व एवं प्रभाव की दृष्टि से व्यक्ति के जीवन में प्राथमिक है।

प्राथमिक समूह को परिभाषित करते हुए चार्ल्स कूले ने लिखा है कि प्राथमिक समूहों से मेरा तात्पर्य ऐसे समूहों से है जिनकी विशेषता आमने-सामने के घनिष्ठ सम्बन्ध और सहयोग है। वे अनेक अर्थो में प्राथमिक है, परन्तु मुख्यतः इस बात में कि वे व्यक्ति की सामाजिक प्रकृति और आदर्शों के निर्माण में मौलिक है। घनिष्ठ सम्बन्धों का परिणाम यह होता है कि एक सामान्य सम्पूर्णता में वैयक्तिकताओं का इस प्रकार एकीकरण हो जाता है जिससे प्रायः कई प्रयोजनों के लिए व्यक्ति का अहम् समूह का सामान्य जीवन और उद्देश्यबन जाता है। इस सम्पूर्णता के वर्णन के लिए अति सरल विधि 'हम' कहना हैं क्योंकि यह अपने में उस प्रकार की सहानुभूति और पारस्परिक एकात्मीकरण (Mutual Identification) को समाविष्ट करता है जिसके लिए 'हम' ही स्वाभाविक अभिव्यक्ति है। प्राथमिक समूहों को परिभाषित करते हुए, जिसबर्ट ने कहा कि *प्राथमिक समूह व्यक्तिगत सम्बन्धों पर आधारित होता है, जिसमें सदस्य तुरन्त एक-दूसरे के साथ व्यवहार करते हैं*। अन्य समाजशास्त्री किम्बाल यंग ने प्राथमिक समूहों के संदर्भ में कहा है कि प्राथमिक समूह में परस्पर घनिष्ठ आमने-सामने के सम्पर्क होते हैं और सभी व्यक्ति समरूप कार्य करते हैं। ये ऐसे केन्द्र-बिन्दु हैं जहां व्यक्ति का व्यक्तित्व विकसित होता है।इन सभी परिभाषाओं के माध्यम से यह कहा जा सकता है कि कूले ने परिवार, क्रीड़ा समूह व पड़ोस को प्राथमिक समूह माना है जबकि मैकाइवर व पेज ने परिवार, क्रीड़ा-समूह, मित्र-मण्डली, गपशप समूह, साझेदारी, स्थानीय भाईचारा, अध्ययन समूह, गैंग, जनजाति परिषद् आदि को इस श्रेणी में रखा है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि किसी समूह को प्राथमिक समूह कहलाने के लिए भौतिक एवं आन्तरिक विशेषताओं का होना आवश्यक है। इस प्रकार से कुछ विशेषताओं के माध्यम से प्राथमिक समूहोंको समझा जा सकता है-

1. शारीरिक समीपता (Physical Proximity)

प्राथमिक समूह के लिए प्रो. डेविस शारीरिक समीपता को महत्व देते है ताकि व्यक्तियों में घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित हो सके। व्यक्ति के एक-दूसरे के निकट होने, साथ-साथ, उठने-बैठने, खाने-पीने, साथ-साथ पढ़ने तथा बातचीत करने से उनमें विचारों तथा भावनाओं का सरलता से आदानप्रदान हो जाता है। निकट सम्पर्क से व्यक्तियों में परिचय बढ़ता है तथा एक-दूसरे के प्रति आदर, सहानुभूति एवं सहयोग पनपता है। प्राथमिक सम्बन्ध के लिए केवल शारीरिक समीपता ही काफी नहीं है। शारीरिक निकटता प्राथमिक समूहों के निर्माण का अवसर प्रदान करती है, लेकिन अवसर का लाभ उठाना सम्भव हो सकेगा या नहीं, यह परिस्थिति पर निर्भर करता है। यह परिस्थिति संस्कृति के द्वारा परिभाषित होती है।

2. समूह का लघु आकार(Small Size of the Group)

एक ही समय में अनेक व्यक्तियों के साथ संवेदनात्मक संपर्क बनाये रखना बड़ा मुश्किल हो जाता है। अतः समूह जितना छोटा होगा, सदस्यों में उतनी ही अधिक मात्रा में निकटता और घनिष्ठता होगी। यदि समूह का आकार बड़ा है तो उसके सभी सदस्य एक-दूसरे से नहींमिल पाएंगे, उनमें अन्तःक्रिया की मात्रा कम होगी। समूह के बड़े आकार के होने पर व्यक्ति इसकी एक इकाई मात्र बनकर रह जाता है । समूह का आकार छोटा होने से सदस्यों के मध्य निकटता एवं घनिष्ठता अधिक होती है।

3. सम्बन्धों की अवधि (Duration of Relationship)

जब अधिक समय सदस्य एक-दूसरे के साथ बिताते हैं तो उनके मध्य संबंधोंमें घनिष्ठता आ जाती है क्योंकि सदस्य एक-दूसरे के हाव-भाव, आचरण से परिचित हो जाते हैं एवं घनिष्ठता बढ़ती जाती है। अतः सम्बन्धों की अवधि का

घनिष्ठता के साथ सीधा सम्बन्ध पाया जाता है। सम्बन्धों में घनिष्ठता का होना प्राथमिक सम्बन्धों की स्थापना के लिए आवश्यक है।

विभिन्न विशेषताओं के आधार पर प्राथमिक समूह के महत्क्को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है -

प्राथमिक समूहों का महत्व (Importance of Primary Group)

प्राथमिक समूह का सामाजिक जीवन में अत्यंत ही महत्व है। जिसके आधार पर मनुष्य का समस्त सामाजिक जीवन प्रभावित होता है। निम्नलिखित प्रमुख महत्वों के आधार पर प्राथमिक समूहों को स्पष्ट किया जा सकता है-

1. **गुणों का विकास :-** प्राथमिक समूहों का सर्वप्रमुख महत्व मनुष्यके गुणोंमें होता है। प्राथमिक समूह सम्पूर्ण मानव जीवन का एक लघु रूप प्रस्तुत करते हैं। जन्म के पश्चात् शिशु अपने जीवन के प्रारम्भिक वर्ष परिवार में माता-पिता तथा अन्य बच्चे/बच्चियों के सम्पर्क में ही व्यतीत करता है, अपने जीवन के प्रारंभिक वर्षो (निर्माणकाल) में प्रत्येक व्यक्ति प्राथमिक समूह में ही अन्तःक्रिया के द्वारा व्यवहारोंके मौलिक प्रतिमान सीखता है।
2. **मनोवैज्ञानिक सुरक्षा :-** प्राथमिक समूहों का महत्व इस दृष्टि से भी है कि ये अपने सदस्यों को मनोवैज्ञानिक सुरक्षा प्रदान करते है। ऐसे समूह का प्रत्येकसदस्य भली-भांति जानता है कि संकट के समय उसे इसी समूह से सहायता मिल सकती है। इस प्रकार व्यक्ति प्राथमिक समूह के माध्यम से अपने व्यक्तित्व में सुरक्षा-व्यवस्था को एकीकृत कर लेता है।
3. **मनोरंजन प्रदान करता है :-** मनोरंजन व्यक्ति के जीवन में एक महत्वपूर्ण साधन है जिनके अभाव में व्यक्ति अनेक प्रकार की मानसिक समस्याओं से जूझता रहता है। प्राथमिक समूह के माध्यम से व्यक्ति मनोरंजन इत्यादि गतिविधियों के माध्यम से स्वस्थ एवं सकुशल जीवन-यापन करता है।
4. **सामाजिक प्रतिमानों के पालन एवं नियंत्रण में योगदान:-** प्राथमिक समूह सामाजिक नियन्त्रण बनाए रखने की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। प्राथमिक समूह सामाजिक नियमों के पालन में भी अपूर्व योगदान देते हैं। व्यक्ति अपने परिवारजनों, मित्रों, साथियों और पड़ोसियों की दृष्टि में गिरना नहीं चाहता है। अतः वह साधारणतः कोई ऐसा कार्य नहीं करना चाहता जिसे लोग अनुचित समझते हों। इसलिए सामाजिक रीति-रिवाज, परम्पराओं और सामाजिक नियंत्रण जैसी गतिविधियों की प्राथमिक समूह में भूमिका होती है।
5. **व्यक्ति की कार्यक्षमता में वृद्धि :-** शिल्स ने अपने अध्ययन के आधार पर यह कहा कि, बड़े व्यापारिक समूहोंमें जब प्राथमिक समूह बन जाता है तो ये व्यक्ति के कार्य करने की क्षमता को सकारात्मकरूप से प्रभावित करते है। प्राथमिक समूह व्यक्ति की कार्यक्षमता को बढ़ाने में अपूर्व योगदान देते है। ऐसे समूहों में व्यक्ति सब चिन्ताओं से मुक्त होकर मानसिक दृष्टि से सन्तुष्टिका अनुभव करता है। यहां उसकी थकान दूर हो जाती है और वह पहले से अधिक उत्साहवर्धक काम करने को तैयार हो जाता है।
6. **व्यक्ति व समाज के बीच कड़ी :-** प्राथमिक समूह व्यक्ति और समाज के बीच प्रमुख कड़ी का काम करते है।
7. **व्यक्तित्व निर्माण में योग :-** प्राथमिक समूह व्यक्ति के व्यक्तित्व निर्माण में सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। जन्म से लेकर निरंतर ही वह निर्माण की प्रक्रिया में भागीदारी होता है। समाजीकरण की प्रक्रिया द्वारा परिवार, पड़ोस, मित्र-मण्डली एवं अन्य प्राथमिक समूह उसके व्यक्तित्व का निर्माण कर उसे एक सामजिक प्राणी बनाते हैं।
8. **पशु प्रवृत्तियों का मानकीकरण :-** प्राथमिक समूह अपने सदस्यों की पशु प्रवृत्तियों का मानवीकरण करते हैं। कूले लिखते हैं, पशु प्रवृत्तियों का मानवीकरण ही सम्भवतः सबसे बड़ी सेवा है जो प्राथमिक समूह करतेहैं।

अतः मनुष्य के सामाजिक जीवन में प्राथमिक मूल्य अपनी महती भूमिका को अदा करतेहैं जो प्रत्येक व्यक्ति के संपूर्ण जीवन में महत्व रख्ता है।

द्वितीयक समूह (Secondry Group)

चार्ल्स कूले ने प्राथमिक समूह की अवधारणा का उल्लेख किया है न किद्वितीयक समूह की। इतना अवश्य है कि प्राथमिक समूह की अवधारणा के कारण ही द्वितीयक समूह की अवधारणा का विकास हो सका है। द्वितीयक समूह सभ्य और विकसित समाज की देन है। जहाँ सम्बन्धों में आत्मीयता एवं घनिष्ठता का अभाव पाया जाता है तथा जीवन औपचारिकताओं से भरा होता है। सामाजिक जटिलता में वृद्धि ने द्वैतीयक समूहों कोजन्म दिया है। अनेक विद्वानों द्वारा द्वितीयक समूह को निम्न प्रकार से परिभाषित किया है-

बीरस्टीड के अनुसार- "वे सभी समूह द्वितीयक है जो प्राथमिक नहीं है।" इस परिभाषा से स्पष्ट है कि प्राथमिक समूह में पायी जाने वाली विशेषताओं के विपरीत प्रकार की विशेषताओं को व्यक्त करने वाले समूह ही द्वितीयक समूह है।

ऑगबर्न एवं निमकॉफ ने द्वितीयक समूह के संदर्भ में कहा है कि'द्वितीय समूह उन्हें कहते हैं जिनमें प्राप्त अनुभवों में निष्ठता का अभाव होता है। आकस्मिक सम्पर्क ही द्वितीयक समूह का सारतत्व है।''

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार परद्वितीयक समूहों की निम्नलिखित विशेषताएँ बतायी जा सकती है -

1. द्वितीयक समूह जान-बूझकर कुछ उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए संगठित होकर बनाये जाते हैं।
2. इन समूहों में सदस्यों का एक-दूसरे को व्यक्तिगतरूप से जानना आवश्यक नहीं है। अपनी आवश्यकताओं के अनुसार ये अपने समूह का निर्माण करते हैं और संचार जैसे साधनों के संपर्क में आकर समूह का निर्माण करते हैं
3. इन समूहों मे आवश्यक नहीं है कि शारीरिक निकटता रहे।
4. द्वितीयक समूह का आकार प्राथमिक समूह की तुलना में काफी विस्तृत होता है।
5. इन समूहों में सदस्यों के उत्तरदायित्व सीमित होते है।
6. द्वितीयक समूह में जिन संबंधो का निर्माण होता है उसके पीछे कुछन-कुछ समझौते आवश्यक होते है।
7. द्वितीयक समूह में सम्बन्धों में औपचारिकता पायी जाती है। यहां व्यक्ति के बजाय प्रस्थिति का महत्व अधिक होता है।
8. द्वितीयक समूह का निर्माण किसी विशिष्ट उद्देश्य के आधार पर होता है। उद्देश्य पूर्ण होते ही इनकी प्रकृति में बदलाव आ जाता है और यह समाप्त हो जाते हैं। इन संबंधोंमें घनिष्ठता का भी अभाव होता है।

अतः ये सभी विशेषताएँ द्वितीयक समूहों में पाई जाती है। इन विशेषताओं के आधार परसामाजिक जीवन में द्वितीयक समूह के महत्व को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है-

द्वितीयक समूहों का महत्व -

वर्तमान समय में द्वितीयक समूहों का महत्व भी दिनों-दिन बढ़ता जा रहा है। छोटे समूहों के स्थान पर अब बड़े समूहों का निर्माण हो रहा है। छोटे उद्योगों के स्थान पर अब बडे उद्योगों में कार्य करने वाले सदस्यों की संख्यामें निरंतर वृद्वि हो रही है। आज के समय में लोग प्राथमिक समूहों की अपेक्षा द्वितीयक समूहों पर अधिक निर्भर रहने लगे है। द्वितीयक समूहों के विकास ने जहाँ एक ओर विविध समस्याओं को जन्म दिया है वहीं दूसरी ओर कुछ महत्वपूर्ण महत्वों को स्पष्ट किया है जिन्हें निम्न बिंदुओं के माध्यम से समझा जा सकता है

1. **दक्षता** - द्वितीयक समूह का संगठन सावधानीपूर्वक सोचविचार कर किया जाता है। मुख्य बल कार्य की उपलब्धि पर होता है। भावना उपलब्धि के अधीन होती है। भौतिक सुखों में उन्नति, लक्ष्य-निर्देशित द्वितीयक समूहों के उत्थान के बिना असम्भव होगा।

2. **अवसर के माध्यम** - द्वितीयक समूहों में प्राथमिक समूहों की अपेक्षा अवसर के महत्व अधिक होतेहैं। पूर्व में केवल कुछ सीमित कार्यो जैसे- कृषि एवं लघु उद्योग के आधार पर व्यवसाय आधारित कार्य होते थे पर आज के वर्तमान दौर में अनेक व्यवसाय आधारित कार्य होने लगे है जो विशेष निपुणता प्राप्त व्यक्तियों के लिए खुले हुए हैं।

3. **विस्तृत दृष्टिकोण** - द्वितीयक समूह अपने सदस्यों के दृष्टिकोण को विस्तृत कर देता है। प्राथमिक समूह स्वार्थी हितों का समूह होता है। इसके सदस्य किसी विशेष स्थान के निवासी होते हैं तथा इसका आकार लघु होता है। पडोस-समूह के सदस्य पड़ोस के हितों की ही देखभाल करते हैं, इसी प्रकार परिवार अपने हितों की ही चिंता करता है। दूसरी ओर, द्वितीयक समूह के सदस्य बिखरे हुए होते हैं, उसकी सीमाएं प्राथमिक समूह से परे होती है।

4. **सामाजिक परिवर्तन एवं प्रगति में सहायक**- द्वितीयक समूह ने व्यक्ति के सामाजिक परिवर्तन हेतु मार्गप्रशस्त किया है। इन समूहों द्वारा व्यक्ति की सोचने समझने की शक्ति में बदलाव आया है। अब व्यक्ति भाई-भतीजावाद से कुछ सीमा तक मुक्त होता है और प्रथाओं, रुढ़ियों एवं अन्धविश्वासों से छुटकारा प्राप्त करता है। द्वितीयक समूहों के माध्यम से व्यक्ति विभिन्न प्रकार के व्यवहारों से परिचित होता है और उन्हें ग्रहण करने का प्रयत्न करता है।

5. **व्यक्ति में जागरुकता पैदा करते है** - द्वितीयक समूह व्यक्ति और समाज में जागरुकता उत्पन्न करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका का वहन करते है। इन समूहों के माध्यम से व्यक्ति में अपने अधिकारों के प्रति सजग रहने की भावना का विकास होता है। द्वितीयक समूह के माध्यम से स्त्रियों के सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक जीवन में अन्तर देखने को मिल रहा हैं। लोग अब अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हो रहें हैं ।

6. **सामाजिक नियन्त्रण में सहायक**- द्वितीयक समूहों के माध्यम से आज के जटिल औद्योगिक समाजों में सामाजिक नियंत्रण बनाए रखा जा सकता है।प्रथाएँ, परम्पराएँ, रुढ़ियाँ और धर्म आदि के माध्यम से आज के समय में समाज में नियंत्रण स्थापित करना असंभव है अतः यहाँ पुलिस, अदालत, कानून तथा प्रशासनिक संगठनों के माध्यम से ही व्यवस्था बनाए रखी जा सकती है जो द्वितीयक समूहों के माध्यम से ही संभव है।

अतः इस प्रकार से वर्तमान समय में द्वितीयक समूह के महत्व को समझा जा सकता है जिसने वर्तमान समय में अपनी महती भूमिका को अदा किया है।

समनर का वर्गीकरण

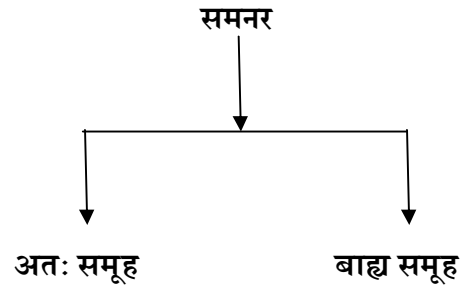

समनर ने समूहों को मुख्यतः दो भागों में विभक्त किया है–
अन्तःसमूह एवं **बाह्य समूह**।

समनर ने अन्तःसमूहों के संदर्भ में कहा है कि जिनसमूहों में संबंध पाया जाता है वह अंतःसमूह कहलाते है इसके अलावा जो समूह शेष बच जाते है वे बाहय समूह के अंर्तगत आते हैं इस प्रकार परिवार, कबीला, कॉलेज जिनका वह सदस्य है, उसके अन्तः समूह हैं। अन्तः समूहों की भावना अन्तः समूहों के सदस्यों को अन्य सभी लोगों से अलग करती है। दूसरे सब लोग अन्तः समूह के सदस्यों के लिए या अनेक बाह्यसमूह होते हैं। व्यक्ति बाह्य समूह की परिभाषा अन्तः समूह के संदर्भ में करता है। बाह्यसमूह उन व्यक्तियों का समूह है, चाहे वह औपचारिक तौर पर संगठित हों अथवा न हों। जिन समूह केविरूद्ध हम प्रतिस्पर्धा ,संघर्ष एवं घृणा की भावना रखते है वे बाह्य समूह के अंर्तगत आते हैं।

यदि एक शब्द में कहा जाय तो अंतः समूह को'हम' कहा जाता है और बाहय समूह को 'वे' अथवा 'दूसरे' से संबोधित किया जाता है। अतः समनर ने समूहों को हम और वे के रूप में वर्गीकृत किया हैं।

जार्ज हासन (George Hasen) का वर्गीकरण

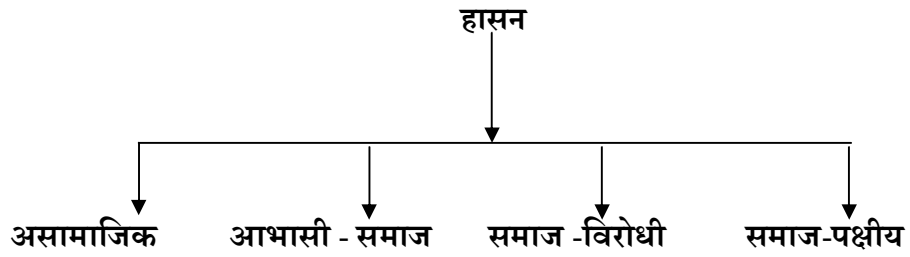

जार्ज हासन ने समूहों का वर्गीकरण दूसरे समूहों के साथ उनके संबंधोंके आधार पर किया है। इस प्रकार उसने **असामाजिक, आभासी-समाज, समाज-विरोधी** एवं **समाज-पक्षीय** समूहों का उल्लेख किया है। हासन ने **असामाजिक समूह** उन्हें कहा है जो समाज में केवल अपना हित चाहते है एवं उन्हेंदूसरों केहित से कोई मतलब नहीं होता हैं न ही वह किसी सामाजिक समूह में कोई भागीदारी रखता है। **आभासी-समूह**, समाज में तो भाग लेता है परन्तु केवल अपने हित की ही सोचता है। **समाज-विरोधी** समूह समाज के हितों के विरूद्ध कार्य करता है और **समाज-पक्षीय** समूह वह है जो समाज के हितों के लिए कार्य करता है। वह निर्माणकारी कार्य करता है तथा लोगों के कल्याण के बारे में चिंतित रहता है।

मिलर का वर्गीकरण-

मिलर ने सामाजिक समूहों को **क्षैतिज एवं उदग्र** में विभक्त किया है। क्षैतिज समूह विशाल एवं अन्तःमुखी होते हैं जैसे- राष्ट्र, धार्मिक संगठन एवं राजनैतिक दल। क्षैतिज समूह के दूसरे प्रकार में आर्थिक वर्ग आदि आते है। चूँकि उदग्र समूह क्षैतिज समूहों का भाग है, अतएव व्यक्ति दोनों का ही सदस्य होता है।

चार्ल्स ए. एलवुड का वर्गीकरण -

चार्ल्स ए. एलवुड ने समूहोंको तीन रूपों में विभक्त किया है-

- ऐच्छिक एवं अनैच्छिक समूह।
- संस्थागत एवं असंस्थागत समूह।

- ❖ अस्थाई एवं स्थाई समूह।

गिलिन एवं गिलिन का वर्गीकरण –

गिलिन एवं गिलिन ने समूहों को निम्न प्रकार से वर्गीकृत किया है-

- ❖ खून के रिश्ते के आधार पर।
- ❖ शारीरिक विशेषताओं के आधार पर।
- ❖ भौतिक सामीप्य के आधार पर।
- ❖ सांस्कृतिक रूप से व्युत्पन्न हितों के आधार पर।

➢ सन्दर्भ-समूह (Reference Group

सन्दर्भ समूहों को परिभाषित करते हुए, **न्यूकॉब तथा टर्नर** ने कहा है कि एक सन्दर्भ -समूह वह समूह है जिसका व्यक्ति तुलना के लिए एक प्रामाणिक समूह के रूप में प्रयोग करता है, अर्थात् एक ऐसा समूह जिससे व्यक्ति अपने मूल्य प्राप्त करता है।

डॉ.एस.सी.दुबे के अनुसार:- सन्दर्भ-समूह वह समूह होता है जिसके नियमों, व्यवहार-प्रतिमानों, मनोवृत्तियों, आदर्शों एवं मूल्यों को व्यक्ति आदर्श मानकर अपने आचरण या व्यवहार में ढालने का प्रयत्न करता है। यह वह समूह है जिसका अस्तित्व प्रायः व्यक्ति के मस्तिष्क में होता है।

अतः इन परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि वर्तमान समय में मनुष्य को अनेक समस्याओं एवं परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है। आज व्यक्ति यह चाहता है कि वह अपने को किसी ऐसे समूह से सम्बन्धित कर ले जिसकी समाज में प्रतिष्ठा हो तथा साथ ही जिसके माध्यम से उसकी आवश्यकताओं और अभिलाषाओं की पूर्ति हो सके। सन्दर्भ-समूह व्यक्ति की उच्च अभिलाषाओं का ही परिणाम है। इसी प्रकार व्यक्ति के व्यवहार पर उसके सन्दर्भ-समूह(Reference-Group) का भी काफी प्रभाव पड़ता है। यह बात अवश्य है कि अलग-अलग व्यक्तियों के सन्दर्भ समूह भिन्न -भिन्न होते हैं। यह भी सम्भव है कि कई व्यक्तियों का एक सन्दर्भ-समूह हो। इतना निश्चित है कि वह सन्दर्भ समूह जिससे व्यक्ति अपने को सम्बन्धित मानता है अर्थात् जिसका वह सदस्य तो नहीं है परन्तु जिसका सदस्य बनने की वह आकांक्षा या अभिलाषा रखता है, उसके सम्मुख एक व्यवहार-प्रतिमान प्रस्तुत करता है।

➢ संदर्भ समूह का महत्व

संदर्भ समूहों का मानव जीवन में अत्यंत ही महत्व है। संदर्भ समूह के महत्व को निम्नलिखित बिंदुओं के माध्यम से समझा जा सकता है -

1. **व्यक्ति की सामाजिक स्थिति को ऊँचा उठाने में सहायक:-** संदर्भ समूह व्यक्ति की सामाजिक स्थिति को ऊँचा उठाने में अधिक सहायक होता है। समाज में व्यक्ति किसी न किसी समूह का सदस्य अवश्य ही रहता है इसलिए वह अपने लिए किसी सन्दर्भ-समूह को चुन लेता है और उसके मूल्यों,आदर्शों एवं आचरणों को अपने व्यक्तित्व में ढालने का प्रयत्न करता है तो इस बात की सम्भावना रहती है कि कालान्तर में उसकी सामाजिक स्थिति ऊँची उठ जाय। अतः इस प्रकार संदर्भ समूह के माध्यमसे वह अपनी सामाजिक स्थिति को ऊँचा उठा सकता है।
2. **सामाजीकरण हेतु-** सामाजीकरण प्रक्रिया मनुष्य के जन्म के साथ ही प्रारंभ हो जाती है, वह जन्म से ही ऐसा व्यवहार करना प्रारंभ कर देता है जैसा व्यवहार उसका समूह कर रहा होता है। व्यक्ति अपने सन्दर्भ-समूह की

अभिवृत्तियों, मूल्यों, आदर्शों, आचरणों एवं व्यवहारो-प्रतिमानों को अपना लेता है। वह उसी प्रकार का व्यवहार करने लगता है जिस प्रकार के व्यवहार की उसके सन्दर्भ -समूह के सदस्यों से अपेक्षा की जाती है।

3. **सामाजिक गतिशीलता -** समाज को गतिशीलता प्रदान करने में संदर्भ समूह का अत्यंत ही महत्व होता है एक समाज विशेष में सामाजिक गतिशीलता को बढ़ाने में सन्दर्भ समूह सिद्धांत सहायक प्रमाणित हुआ है।

तथापि इस सिद्वांत का महत्व इस तथ्य में है कि यह हमें समाज के समूह-व्यवहार तथा उस दिशा, जिसमें किसी विशेष सामाजिक पर्यावरण में व्यक्ति का व्यवहार बदल सकता है, के विषय में ज्ञान कराता है। यह वर्तमान औद्योगीकृत एवं जटिल समाज में वर्तमान खिंचावों एवं दबावों की मनोवैज्ञानिक व्याख्यामें सहायक हो सकता है।

1.6 समूहों के लाभ

सामाजिक जीवन में ही मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति से लेकर समस्त सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक कार्य समूहों के माध्यम से ही सपन्न हो पाते हैं। इसके अतिरिक्त समूहों के अन्य लाभों को निम्नलिखित बिंदुओं के माध्यम से समझा जा सकता है

- मानव अपनी लगभग सभी आवश्यकताओं की पूर्ति समूह के माध्यम से ही करता है। चाहें वह मनोरंजन संबंधी होया रोजगार संबंधी।

1. यदि किसी समस्या का समाधान समूह के माध्यम से किया जाए तो उस समस्या को बेहतर तरीके से हल किया जा सकता है।
2. समूह सदस्यता के माध्यम से हम दान-धर्म, परोपकार, दया, करूणा, उत्तरदायित्व तथा इसी तरह के अन्य कार्यों को कर सकते है।
3. चाहें मित्रता हो, प्रेम हो, दु:ख हो या सुख हो इन सभी कार्यो हेतु समूह अपनी भूमिका निभाते है।

वर्तमान समय में सरकारी एवं गैरसरकारी योजनाओंपरियोजनाओं में समूह संबंधी कार्योंको अधिक प्रधानता दी जा रही है। स्वयं सहायता समूह (Self Help Group) आदि कार्यक्रमों के माध्यम से महिलाओं मेंसमूह की भावना जाग्रत कर उन्हें सशक्त करने का प्रयास किया जा रहा है। साथ ही मिल-जुलकर समस्याओं का समाधान एवं आजीविका के साधन को कैसे खोजा जाता है? यह समूह के माध्यम से पूर्ण किया जा रहा है। अनेक अध्ययन करने के पश्चात यह निर्णय निकलकर सामने आ रहे हैं कि व्यक्ति और समाज के विकास में समूहों का अत्यंत ही महत्व है और इन समूहों को और अधिक सशक्त बनाने की आवश्यकता है। समाज कार्य अभ्यास में भी समूह की समझ प्रत्येक कार्यकर्ता को होनी चाहिए जिससे कि वह समाज में जाकर समस्याओं का समाधान उचित प्रकार से कर सके।

1.7 सारांश -

विश्व के प्रत्येक भाग में किसी-न-किसी प्रकार के समूह अवश्य पाये जाते है। व्यक्ति का व्यवहार बहुत कुछ इस बात पर निर्भर करता है कि वह किस समूह का सदस्य है अथवा किस समूह से अपने को सम्बन्धित मानता है। प्राथमिक समूहों (जैसे- परिवार, पड़ोस, मित्र-मण्डली, आदि) के सदस्यों के व्यवहार में आत्मीयता, सहानुभूति व सहयोग देखने को मिलता है, उनके सम्बन्धों में घनिष्ठता एवं आन्तरिकता पायी जाती है। दूसरी ओरद्वितीयक समूह जैसे किसी मिल, फैक्ट्री, राजनीतिक दल, आदि के सदस्यों के व्यवहारों में इन बातों का अभाव पाया जाता है। उनके सम्बन्ध अप्रत्यक्ष, अवैयक्तिक तथा औपचारिक प्रकार के होते हैं। यहां सम्बन्धों का उतना महत्व नहीं है जितना व्यक्ति द्वारा किए जाने वाले कार्य का। यहाँ व्यक्ति का एक-दूसरे के प्रति व्यवहार दूर के रिश्तेके समान होता है जिसमें

निकटता और आत्मीयता का अभाव पाया जाता है। भीड़ और श्रोता-समूह के सदस्यों के व्यवहार में भी रात-दिन का अंतर देखने को मिलता है।

समूहों का मानव जीवन में अत्यंत ही महत्व है और इन्हीं महत्वों के कारण कई प्रकार के लाभ समूहों से होते है। समूह की सबसे अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि समूह व्यक्ति के व्यक्तित्व को आदर्श रूप में ढालने का एक साधन है जो कि समस्या-समाधान, आत्म-प्रतिष्ठा का निर्माण, दृढ़ संकल्प तथा समाज में व्यक्ति के समाजीकरण के मामलों के लिए अवसर उपलब्ध कराता है। अंत में यह कहा जा सकता है कि सामाजिक समूह कार्य अभ्यास के लिए समूह बहुत ही महत्वपूर्ण अंग है जिसको समूह कार्य प्रक्रिया प्रारंभ होने के पूर्व इसका अध्ययन अत्यंत ही आवश्यक है।

1.8 बोध प्रश्न

प्रश्न 01. समूह को परिभाषित कीजिए।

प्रश्न 2. मैकाइवर एवं पैज ने समूह को किस प्रकार से समझाया है? उल्लेख कीजिए।

प्रश्न 3. मनुष्य के समूह निर्माण के पीछे क्या-क्या कारण होते है?स्पष्ट कीजिए।

प्रश्न 4. समूह की विशेषताओं को रेखांकित कीजिए।

प्रश्न 5. समूहों के विभिन्न प्रकारों को वर्गीकृत कीजिए।

प्रश्न 6. समूहों के महत्व को स्पष्ट कीजिए।

1.7 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

- सचदेवा, डी .आर., भूषण, विद्या. (2012) ***समाजशास्त्र.*** लखनउ : डॉर्लिग किंडरस्ले (इंडिया) प्रा.लि.।
- कूले, सी. एच. (1937). *सोशल आर्गनाइजेशन.* न्यूयार्क : चार्ल्स स्क्राइबनर्स संस।
- कोरी, एम.एस. (2002). *ग्रुप प्रोसेस एंड प्रैक्टिस.* न्यूयार्क : ब्रुक्स कोले।
- फैरीस, ई. (1937). *दि नेचर आफ ह्युमन नेचर*न्यूमार्क : मैकग्राव हिल बुक।
- होमैन, जी.सी. (1950). *दि ह्युमन ग्रुप* न्यूयार्क : हारकोर्ट. ब्रास एंड वर्ल्ड।
- जोनसन, डी. डब्ल्यू एंड जॉनसन, पी. एफ. *जोइनिग टुगेदर,* न्यूजर्सी : प्रिंटिस हाल।
- शाह, एम.ई. (1977) *ग्रुप डाइनामिक्स.* नई दिल्ली : टाटा-मैकग्रा हिल।
- सिंह, ए.एन. एवं सिंह, ए.पी. (2008). *समाज कार्य.* लखनऊ– प्रकाशक ।
- Mishra, P.D. & Mishra Bina (2008). *Social Group Work Theory and Practice.: Lucknow :*
- मिश्रा, प्रयागदीन. (2008). *सामाजिक सामूहिक कार्य.* लखनऊ : हिंदी संस्थान ।
- सिंह,ए.एन., सिंह, नीरजा,संजय,मिश्रा,सुषमा (2012). *सामूहिक कार्य.* हल्दानी : उत्तरायन प्रकाशन।

इकाई-2 समूह कार्य का ऐतिहासिक विकास

इकाई रूपरेखा

2.0 उद्देश्य
2.1 प्रस्तावना
2.2 इंग्लैण्ड में सामाजिकसमूहकार्य का ऐतिहासिक विकास
2.3 अमेरिका में सामाजिक समूह कार्य का ऐतिहासिक विकास
2.4 भारत में सामाजिक समूह कार्य का ऐतिहासिक विकास
2.5 सामाजिक समूह कार्य का शिक्षात्मक विकास क्रम
2.6 सांराश
2.7 बोध प्रश्न
2.8 संदर्भएवं उपयोगी ग्रंथ

2.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करके विद्यार्थी निम्नलिखित तथ्यों को स्पष्ट समझ सकेगें -

1. सामाजिक समूह कार्य के आरम्भ होने काऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य
2. इंग्लैण्ड में सामाजिक समूह कार्य का प्रारम्भ, उसके चरण और विकास
3. अमेरिका में सामाजिक समूह कार्य का प्रारम्भ, उसके चरण और विकास
4. भारत में सामाजिक समूह कार्य का प्रारम्भ

2.1 प्रस्तावना

सामाजिक समूह कार्य को समाजकार्य की एक प्राथमिक प्रणाली के रूप में जाना जाता है। जिसका उद्देश्य व्यक्तियों की सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और मनोवैज्ञानिक समस्याओं का निराकरण करके उनका विकास करना है। सम्पूर्ण विश्वमें इस प्रकार के कार्य सदियों से होते आ रहे हैं। किन्तु व्यावसायिक समाज कार्य के रूप में सामाजिक समूह कार्य का विकास अधिक लंबा नहीं है। पूर्व में इस प्रकार के कार्य करने की मनुष्य की भावना धर्म के आधार पर थी। जिससे मनुष्य दूसरों की सहायता भावानात्मक आधार पर करता था। लोग असहायों, अनाथों, रोगग्रस्त व्यक्तियों को सुरक्षा प्रदान करने के लिए आगे आए। जिसका स्वरूप दान पद्धति थी।

प्रारम्भिक काल में धर्म के आधार पर लोग दूसरों की सहायता करना अपना कर्तव्य समझते थे परन्तु मध्य काल में यह कार्य पादरी करने लगे। वृद्धों, गरीबों तथा रोगियों के लिए संस्थाओं की स्थापना की गई। गाई डी मान्टे पोतियनि (Gvy De Monteselliers) द्वारा स्थापित क्रान्सिसिकन्स ने निर्धनों, अपाहिजों, पीडितों की चिकित्सा तथा आश्रय देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। फ्रांस के श्रेष्ठ समाज सुधारक फादर विन्सेंट डी पाल ने इस दिशा में महत्वपूर्ण कार्य किया। 1663 में भिक्षा लड़कियों Daughters for Charity का सामान्य ढंग का संगठन बनाया गया। जो सामान्य वर्ग की महिलाओं को जोड़कर बनायागया था। ये महिलाएं कृषि आधारित कार्य करती थीं। भिक्षा का कार्य भी करती थीं और साथ ही साथ गरीबों की सहायता भी करती थी। उन्होंने इस कार्य के लिए राज दरबार की महिलाओं कोभी व्यक्तिगत रूप से अनाथों और बीमारों की सेवा करने के लिए प्रोत्साहित किया। भिक्षा की महिलाएं जो निर्धन परिवारों में भोजन और वस्त्रों का वितरण करती थी इन दोनों संगठनों ने मिलकर समूह कार्य के क्षेत्र में महती भूमिका निभाई।

फादर विन्सेंट डी पाल के विचारों ने समूह कार्य के क्षेत्र में एक क्रांतिकारी परिवर्तन को जन्म दिया जिससे फ्रांस में ही नहीं, बल्कि अन्य देशों में भी इस प्रकार में कार्यों को वैज्ञानिक आधार प्राप्त हुआ।

सामाजिक समूह कार्य के विकास को मुख्यतः 3 खण्डों में विभाजित किया जा सकता है। जिससे इसके विकास क्रम को समझने में आसानी होगी।

2.2 इंग्लैण्ड में सामाजिक समूह कार्य का ऐतिहासिक विकास

इंग्लैण्ड में सामाजिक समूह कार्य के इतिहास को चार चरणों में विभाजित किया जा सकता है:

1. आवश्यकता ग्रस्त व्यक्तियों की सहायता का काल
2. सामुदायिक सेवाओं के आधार पर सहायता का काल
3. श्रम कल्याण के आधार पर सहायता का काल
4. सुधारात्मक सेवाओं के आधार प सहायता का काल

2.2.1 आवश्यकता ग्रस्त व्यक्तियों की सहायता का काल- 14 वीं शताब्दी तक आवश्यकताग्रस्त व्यक्तियों की सहायता करना पुण्य का कार्य समझा जाता था। चर्च का प्रमुख उद्देश्य ही गरीबों को दान देना और उनकी सहायता करना था। चर्च के काफी प्रयत्नों के बावजूद भी गरीबों और बेसहारों की स्थिति में कोई संतोष जनक परिवर्तन नजर नहीं आया। चर्च द्वारा अनेकानेक प्रयत्न किए गए किन्तु कोई स्थायी समाधान प्रस्तुत नहीं किया गया। जिससे जरूरत मंदों की सहायता कर उनका निश्चित विकास किया जा सके।

1349 में किंग एडवर्ड ने यह आदेश पारित किया कि प्रत्येक स्वस्थ शरीर वाला व्यक्ति कोई न कोई कार्य अवश्य करेगा। जिससे लोगों की बेरोजगारी को कम किया जा सके। एडवर्ड द्वारा किया गया यह प्रथम प्रयास था जिसमें यह बात निकलकर सामने आई कि गरीबी के लिए व्यक्ति स्वयं ही जिम्मेदार है तथा इसके लिए किसी दूसरे को जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता। इस प्रकार से इस नियम द्वारा सक्षम को काम करने के लिए बाध्य किया गया।

1561 में हैनरी नियमावली में भिक्षा माँगने वालों के लिए पंजीकरण आवश्यक कर दिया। इस कानून के अन्तर्गत महापालिका अध्यक्ष तथा न्यायाधीशों के लिए यह आदेश जारी किया गया कि वे ऐसे आवश्यकता ग्रस्त व्यक्तियों (जैसे वृद्ध, निर्धन, अनाथ इत्यादि) के प्रार्थना पत्रों की जाँच करें जो वास्तविक रूप से काम करने में अक्षम है। यह इस प्रकार का पहला अधिनियम था जिसके द्वारा जरूरतमंदों के प्रति जिम्मेदारी का आभास हो सके।

1536 में गरीबों एवं जरूरतमंदों की सहायता के लिए एक सरकारी योजना का भी निर्माण किया गया। जिसमें यह नियम बनाया गया कि गरीबों का उनकी चैरिटियों में पंजीकरण अवश्य हो लेकिन वे वहाँ कम से कम 3 वर्षों से रह रहे हों। स्वस्थ शरीर वाले भिक्षा माँगने वाले व्यक्तियों को काम करने के लिए बाध्य किया गया। तथा जो 5 से 14 वर्ष के आयु के बीच में ऐसे बच्चे जो बेकार एवं आवारा घूमते थे, उनको उनके माता-पिता के साथ प्रशिक्षण दिया जा सके, ऐसा प्रावधान किया गया। 1572 में ''एलिजाबेथ क्वीन'' ने गरीबों की सहायता के लिए एक सामान्य कर लगा दिया। साथ-साथ नया कानून पालन करने हेतु ओवरसियर नियुक्त किए गए। यह भी मान लिया गया कि सरकार ऐसे व्यक्तियों को आश्रय प्रदान करेगी जो स्वयं अपनी सहायता करने में असमर्थ हैं। 1576 में सुधारगृह (House of corrections) बनाए गए जहाँ पर ऐसे व्यक्तियों को रखा गया जो काम करने के लिए सक्षम थे किन्तु कार्य नही कर रहे थे। खास कर युवकों को ऐसे काम करने के लिए बाध्य किया गया। **1601 में धनहीनों के लिए एक कानून बना जो कि 43 एलिजाबेथ के नाम से जाना जाता था। इस कानून में निर्धनों को 3 वर्गों में विभाजित कर दिया गया। जिसमें सर्वप्रथम पुष्ट शरीर वाले निर्धन ,शक्तिहीन निर्धन , आश्रित बच्चों को शामिल किया गया। पुष्ट शरीर वाले निर्धन (Abue Bodied Pear) पुष्ट शरीर वाले निर्धनों के अन्तर्गत ऐसे निर्धनों**

को रखा गया जो कि हृष्ट-पुष्ट हो एवं कार्य करने योग्य हों इनसे सुधारग्रहों में काम लिया जाता था। कोई भी व्यक्ति इन्हें भिक्षा नहीं दे सकता था । यदि कोई व्यक्ति कार्य के लिए मना कर देता उसे कारागृह में डाल दिया जाता था। शक्ति हीन निर्धन के अन्तर्गत वे व्यक्ति आते थे जो कि रोगी, वृद्ध, अंधे, बहरे, गूंगे, लंगडे, पागल हों और महिलाएं जिनके पास छोटे-छोटे बच्चे थे इसके अंतर्गत आते थे। ये लोग काम करने में असमर्थ होते थे। ऐसे व्यक्तियों के लिए बाहर से सहायता का प्रबंध किया गया था जिससे इनकी मूलभूत आवश्यकताओं जैसेरोटी-भोजन, वस्त्र, मकान आदि को पूरा किया जा सके। आश्रित बच्चे ऐसे बच्चे जिनके माता-पिता नहीं थे या फिर उनके माता-पिता ने उन्हें घर से निकाल दिया था या फिर इतने गरीब थे कि उनके माता-पिता उनकी सहायता नहीं कर सकते थे ऐसे बच्चे उन नागरिको को दे दिए जाते थे जो उनका भरण-पोषण कर सके। इस प्रकार से यह कानून अत्यन्न ही महत्वपूर्ण एवं सार्थक साबित हुआ। इसके अलावा लॉ ऑफ सेटेलमेंट 1662 का कानून बना, 1795 में 1662 के कानून का पुनः संशोधन किया गया। ये कानून सामाजिक समूह कार्य के क्षेत्र में अत्यंत महत्वपूर्ण माने जातेहैं। 1832 में निर्धन कानूनों की प्रशासनिक तथा व्यावहारिक कार्यविधि संबंधी जाँचकरने के लिए एक राजकीय आयोग बनाया गया। इस आयोग की प्रमुख सिफारिश निम्नानुसार थी -

1. स्पिनहम लैण्ड तरीके के अन्तर्गत दी जाने वाली आंशिक सहायता को कम किया जाए।
2. सहायता चाहने वाले सभी समर्थ प्रार्थियों को कार्यगृहों में रखा जाए।
3. केवल रोगी, वृद्ध, अशक्त एवं नवजात शिशुओं सहित विधवाओं को ही बाहर सहायता दी जाए।
4. विभिन्न पैरिसो में सहायता संबंधी प्रशासन का एक ''निर्धन कानून संघ'' के रूप में समन्वय हो।
5. निर्धन सहायता प्राप्त करने वालों की स्थिति समुदाय में निम्न वेतन पाने वाले मजदूरों की तुलना मेंकम हो।
6. नियंत्रण के लिए केन्द्रीय परिषद की स्थापना की जाय।

14 अगस्त, 1834 में एक नया निर्धन कानून 'द न्यू पूअर लॉ' लाया गया किंतु इससे भी कोई खास सफलता प्राप्त नहीं हुई। सन 1847 में निर्धन कानून कमीशन के स्थान पर निर्धन कानून बोर्ड गठित किया गया। जिसका कार्य निर्धनता के कारणों तथा सामाजिक सुधार के प्रभावशाली साधनों के लिए किए गए कारणों का निरीक्षण करना था। 1834 के नवीन गरीब कानून के प्रति एडविक चड़विक ने असंतोष प्रकट किया। इस कारण से आयोग के स्थान पर परिषद का गठन किया गया और एड़विक चड़विक को इसका महाआयुक्त नियुक्त किया गया। उन्होंने निर्धनता के कारणों की खोज करने का प्रयत्न किया। सामाजिक सुधार के प्रभावशाली साधनों की खोज की। आवास गृहों की कमी के कारण कई लोग एक साथ पलंग पर सोते थे जिससे बाल अपराध, लड़ाई-झगड़ा, अनैतिकता, छुआ-छूत की बीमारी बढ़ती थी। पीने के पानी के कारण भी लोग बीमार होते थे। अतः इस कारण चड़विक ने अपना ध्यान स्वास्थ्य की ओर अधिक आकृष्ट किया। उन्होंने संक्रामक रोग से बचने के लिए एक कार्यक्रम बनाया। जिसमें नि:शुल्क टीके लगाए जाने लगे,पार्कों तथा बगीचों को बनाने में रूचि दिखाई। अतः उनके प्रयास के परिणामस्वरूप सन 1898ई. में जन स्वास्थ्य एक्ट की स्थापना हुई। चाड़विक इसके सदस्य बने। अतः समूह कार्य के इतिहास में चाड़विक का नाम भी लिया जाता है। औद्योगिक क्रांति के आने से समाज के अनेक क्षेत्रों में विकास हुआ। किंतु इसके साथसाथ अनेक समस्याओं का भी जन्म हुआ। इस प्रकार की समस्याओं से निपटने के लिए क्रिश्चियन सोसायटी तथा श्रम संघ ने महत्त्वपूर्ण कार्य किए। 1844 में चार्टिस्टों ने पहला सहकारी भंडार खोला जिसके मालिक श्रमिक थे। इस प्रयास के उपरांत अन्य नगरों में भी इस प्रकार के प्रयास किए गए। चार्टिस्ट की शक्ति में कमी होने पर फ्रेडरिक हेन्सन मारिस, चार्ल्स क्रिम्सके तथा जे. एम.लुडलो के निर्देशन में मजदूरों की शैक्षणिक, आध्यात्मिक तथा सामाजिक दशाओं में सुधार करने का प्रयास किया गया। श्रमिकों के लिए रात्रि पाठशालाएँ खोली गई। कैनन सेमुअल, अगस्टस, वाटनेट

1937 ई. में लंदन के हाइट चौपल स्थित सेंट जूड गिरजाघर में उस क्षेत्र में रहने लगे जिसमें निर्धन रहते थे। वे उनके पादरी बने। वाटनेट ने पाया कि हाइट-चौपल के 8000 निवासियों में अधिकांशतः दीन-दु:खी असहाय, अपाहिज, बेकार थे। वे दुर्गन्ध युक्त जगहों में रहते थे। उनकी दशा अत्यंतही दयनीय थी। वाटनेट आक्सफोर्ड तथा कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में गए तथा उनको वहाँ के लोगों के दयनीय स्थिति से अवगत कराया। उन्होंने विधार्थियों को इनके वैयक्तिक अध्ययन (Case Work) तथा शैक्षिक सहायता देने के लिए प्रोत्साहित किया। उनके प्रयास से विश्व का प्रथम व्यवस्था गृह बना। इस व्यवस्था गृह के तीन मुख्य उद्देश्य थे–

1. निर्धनों की शिक्षा और संस्कृति का विकास करना। सामाजिक सुधार की अत्यन्त आवश्यकता के संबंध में विद्यार्थी तथा व्यवस्था गृह के अन्य निवासियों को जानकारी देना। सामाजिक तथा स्वास्थ्य समस्याओं का निराकरण और सामाजिक विधि निर्माण में व्यापक हितों की सामान्य जागृति उत्पन्न करना। इन उद्देश्यों को बढ़ाने के अतिरिक्त, सांस्कृतिक प्रभाव भी डालना था। अतः भाषण तथा वाद-विवाद, गोष्ठियों आदि का आयोजन करना भी शामिल था।
2. निर्धनों की दशा सुधारने हेतु सामाजिक सुधारकरना अत्यंत आवश्यक होता है, अतः इस संबंध मेंविद्यार्थियों तथा व्यवस्था गृह के अन्य-निवासियों को जानकारी देना।
3. समस्याओं के निराकरण और सामाजिक विधि निर्माण में व्यापक परिवर्तन हेतु सामाजिक तथा स्वास्थ्य समस्याओं के प्रति लोगों में जनजागृति उत्पन्न करना।

समूह कार्य के इतिहास के परिप्रेक्ष्य में यदि हम ध्यान आकर्षित करें तो इसका विकास व्यवसाय के रूप में 20 वीं शताब्दी में ही प्रारंभ हुआ है। परंतु इसके सिद्धांतों तथा व्यावहारिक दक्षताओं का उपयोग बहुत पहले से होता चला आ रहा है। इसी विकास क्रम में चैरिटी ऑर्गेनाइजेशन सोसायटी (Charity Origination Society) ने अपनी विशेष भूमिका अदा की।

जॉन एडम्स हिल तथा डिवाइन आदि ऐसे समाज सुधारक थे जिन्होंने मानवीय आवश्यकताओं की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित किया। इन्होंने उन सामाजिक समस्याओं को दूर करने का प्रयास किया जो सामाजिक वातावरण से उत्पन्न होती थी। किंतु जैसे-जैसे सामाजिक समस्याएँ गंभीर होती गई सामाजिक संगठनों ने भी सेवाओंमें परिवर्तन करना प्रारंभ कर दिया। अब समूहों की सहायता व्यक्ति, संगठित होकर करने लगे। जिससे समस्याओं केहल खोजने में सहायता मिली। इस प्रकार से इंग्लैण्ड में आवश्यकताग्रस्त व्यक्तियों की सहायता उपयुक्त कानूनों एवं नियमों के माध्यम से समूह कार्य के रूप में की जाती थी।

2.2.2 सामुदायिक सेवाओं के आधार पर सहायता का काल - सामुदायिक स्वास्थ्य सेवाओं के अंतर्गत लगभग 500 से अधिक स्वास्थ्य अभ्यागतों की नियुक्ति की गई जो रोगों को रोकने का प्रबन्ध करते थे। इसी तारतम्य में 1886 में बीमार तथा अपंग बच्चों के लिए अपंग बालकों का सहायता संघ (Invalid children And Association)बनाया गया। इसके कुछ ही दिनों के बाद विद्यालय बच्चे-देखभाल कमिटी (स्कूल चिल्ड्रन केअर कमिटी) तथा क्षय रोगियों के लिए डिस्पेंसरी खोली गई।

1895 में मिस स्टेवार्ट को रॉयल फ्री हॉस्पीटल में अल्मोनर के रूप में नियुक्त किया गया। इसी अल्मोनर के प्रयास से चिकित्सीय समाज कार्य का प्रारम्भ हुआ। भोजन के क्षेत्र में भी एक नया प्रावधान 1906 में पास किया गया जिसे The Proposition of meal act के नाम से भी जाना जाता है। जिससे भोजन का प्रावधान

अधिनियम भी कहा जाता है। इस अधिनियम के पास होने के पश्चात विद्यालय में नि:शुल्क स्वल्पाहार की सुविधाएँ प्रदान की गई।

1844 ई. में यंग मैन क्रिश्चन एसोसिएसन (Yong men's Christian association) की स्थापना जॉर्ज विलियम्स नामक बस विक्रेता ने समस्त युवक और युवतियों को इस उद्देश्य के साथ प्रेरित करने के लिए किया कि वे ईसाई जीवन पद्धति पर चलने की प्रेरणा प्राप्त कर सके। सन 1860 में एक महिला द्वारा डैस ''अलो-क्लब'' की स्थापना कनेक्टीकट में की गई। जिसे चर्च महिला समूह के नाम से जाना जाता है। इस क्लब के माध्यम से खेल-कूद, नृत्य, संगीत नाटक आदि अनेक प्रकार के कार्यक्रमों का प्रबंध था। इसी के परिणाम स्वरूप अन्य क्लबों की भी स्थापना इस उद्देश्य के साथ की जाने लगी कि इसमें बच्चे भाग ले सकें और उनकी दशाओं में सुधार होसकें।

1865 में ही कॉमन्स समाज की स्थापना सुविधाओं के लिए एवं पार्कोंउद्यानों की स्थापना के लिए की गई। इस कामन्स समाज का उद्देश्य ऐसे लोगों की मुख्य रूप से सहायता करना था जो मानसिक रूप से कमजोरहैं और जिनको रहने के लिए स्थानों का अभाव है।

1844 में पहला सहकारी भंडार चार्टिस्टो द्वारा रोजडेल में खोला गया। जिसके मालिक श्रमिक थे। मानवतावादी रॉबर्ट ओवेन ने सहकारी उपभोक्ता भंडारों को प्रारम्भ कर एक उदाहरण प्रस्तुत किया। उन्होंने ऐसे औद्यौगिक समुदाय की स्थापना की जहाँ पर कम कीमत पर स्वास्थ्य सुविधाएँ, आवास सुविधाएँ दी जातीं थीं जो स्वच्छता से भरपूर थी। मजदूरों तथा उनके परिवारों के लिए खेल के मैदान के साथसाथ पुस्तकालय एवं अन्य मनोरंजन की सुविधाएँ उपलब्ध थी।

2.2.3 श्रम कल्याण के आधार पर सहायता का काल - इग्लैंण्ड में सन 1802 ई. में स्वास्थ्य एवं सदाचार कानून बनाया गया। इस कानून के अंतर्गत दिनभर में12 घंटे काम करना निश्चित कर दिया गया जो प्रातः 6 बजे से लेकर 9 बजे रात तक कार्य कर सकते थे। तथा बच्चों से रात में काम लेना बंद कर दिया गया।1833 में डाक, कारखाना, अधिनियम बना उस समय कारखानों में 9 वर्ष से कम उम्र के बच्चों से काम कराना वर्जित कर दिया गया। 13 वर्ष के बच्चे दिन में सिर्फ 9 घंटे तथा पूरे सप्ताह के अन्तर्गत48 घंटे काम कर सकते थे। इस समय तक निरीक्षकोंकी नियुक्ति भी केन्द्रीय तथा राष्ट्रीय कार्यालय के अन्तर्गत करना प्रारम्भ कर दिया गया। कारखाना अधिनियम में सुधार करते हुए 1847 में एक आदेश जारी किया गया कि औरतों तथा 18 वर्ष से कम उम्र के बच्चे प्रत्येक दिन में अधिक से अधिक काम 10 घंटे का काम कर सकतेहैं।

2.2.4 सुधारात्मक सेवाओं के आधार पर सहायता का काल- जेल की दशाओं मेंसुधार करने के लिए श्रीमती एलिजाबेथ फ्राई नाम की महिला ने जेल के अंदर बच्चों को शिक्षित करने के उद्देश्य से एक विद्यालय की शुरूआत की और अध्यापक के रूप में जेल में बंद अपराधी औरतों में से एक का चुनाव किया गया। प्रौढ़ महिलाओं के लिए जेल में बुनाई-कढ़ाई का काम भी उनके द्वारा शुरू किया गया। बाल अपराधियों के सुधार हेतु सन 1912 में काल अधिनियम पास हुआ। 1950 में दूसरा काल अधिनियम पास किया गया। तथा इस अधिनियम के तहत काल समितियाँ एवं काउन्टी काउंसिल बनाई गई जिसका उत्तरदायित्व काल का भी देखभाल करना था।

इंग्लैंड में 20वीं शताब्दी के पूर्व समूह कार्य का उद्देश्यसामाजिक चेतना तथा सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना का विकास करना था। परन्तु 1920 के पश्चात् इसका उपयोग व्यक्ति के व्यक्तित्व में सकारात्मक परिवर्तन तथा उसके विकास के लिए किया जाने लगा। द्वितीय विश्व युद्ध के समय इग्लैंड के शिक्षा मंत्रालय द्वारा युवा सेवाओं के रूप में समूह समाज कार्य को मान्यता प्राप्त हुई। युवाओं के प्रशिक्षण में समूह कार्य का ज्ञान कराया जाने लगा और इस संदर्भ में अनेक कार्यक्रम आयोजित किए जाने लगे और इसके साथ ही 1960 तक जो समूह कार्य शिक्षा अपर्याप्त थी

1960 के बाद इसमें व्यापक परिवर्तन हुआ और अनेक विद्यालयों/महाविद्यालयों/विश्वविद्यालयों में समूह कार्य शिक्षा में तेजी से विस्तार हुआ।

अतः इस प्रकार से इंग्लैण्ड में सामाजिक समूह कार्य के ऐतिहासिक विकास को मुख्य बिन्दुओं द्वारा प्रदर्शित करने का प्रयास किया गया है एवं यह भी स्पष्ट किया गया है कि इंग्लैण्ड में किस प्रकार से कानूनों का निर्माण हुआ और उन्हें किस प्रकार से प्रभावी बनाने के लिए समयानुसार उसमें परिवर्तन किया गया।

इग्लैंड में बनाए गए कुछ महत्वपूर्ण विधान एवं कार्य एक नजर में

1. इंग्लैण्ड में भी अन्य यूरोपीय देशों की भाँति गरीबों की देखरेख का कार्य चर्च करते थे।

2. प्रारम्भ में क्लेश, दु:ख, गरीबी तथा अन्य समस्याओं के लिए ईसाई लोग एकदूसरे की सहायता करते थे।

3. मध्यकाल में क्लेश, दु:ख, गरीबी तथा अन्य समस्याओं के लिए पादरी कार्य करते थे।

4. गाई डी मान्टेपेलियर्स (Guy De Montepelliers)ने हास्पिटल की तथा सेंटफ्रैंसिस डि एसिसी ने (Saint Francis de Assisi) फ्रैंसिस कैन्स (Francis Cans) की स्थापना की, जिसका उद्देश्य निर्धन, अपाहिजों, पीड़ितों को शिक्षा देना तथा रोगियों की चिकित्सीय सहायता तथा निराश्रितों को आश्रय देना था।

5. सोलहवीं शताब्दी के सुधार काल में भिक्षावृत्ति को रोकने का प्रयास किया गया तथा सामान्य दान पेटियों (Common Chests) की स्थापना की गयी।

6. 1523 ई0 में ज्यूरिख तथा स्विटजरलैंड में अलरिक ज्वीगली ने सहायता के लिए प्रभावकारी योजना प्रस्तुत की।

7. सर्वप्रथम 1531 में हेनरी अष्टम ने स्टैट्यूट ऑफ हेनरीVIII पास किया।

8. सन 1536 ई0 में इंग्लिश सरकार ने निर्धनों को पंजीकृत कराके उनकी चर्च द्वारा सहायता की योजना बनाई।

9. 1576 ई0 में सुधारगृह (House of Correction) स्थापित हुए जहाँ पर गरीबों को व्यावसायिक प्रशिक्षण दिया जाता था।

10. सन 1601 ई0 में एलिजाबेथ का धनहीनों के प्रति कानून बना।

11. फादर विंसेन्ट ने 1633 में 'भिक्षा की लड़कियाँ' नामक संघ की स्थापना की जिनमें महिलाएँ भिक्षा का कार्य करती थीं

12. अतः 14 अगस्त, सन् 1834 ई0 को नवीन गरीब कानून (The New Poor Law) बना।

13. सन 1844 ई0 में चार्टिस्टों ने पहला सहकारी भंडार खोला जिसके मालिक श्रमिक ही थे।

14. सन 1844 ई0 में जार्ज विलियम्स नामक वस्त्र विक्रेता ने युवकों तथा युवतियों को ईसाई जीवन पद्धति पर चलने की प्रेरणा दी और इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए नवयुवक ईसाई संघ (Young Men Christian Association) की स्थापना की।

15. सन 1848 ई0 में चडविक के प्रयास से जनस्वास्थ्य ऐक्ट The Public Health Act की स्थापना हुई और चडविक उसके सदस्य बने।

16. सन 1860 ई0 में एक चर्च महिला समूह ''डैस अवे क्लब'' की स्थापना कनेक्टीकट में की गयी।

17. 1874 ई0 में प्रौढ़ शिक्षा का कार्यक्रम प्रारंभ हुआ।

18. प्रथम सेटलमेन्ट टायनबी हाल (Toynbee Hall)सन् 1884 ई0 में कैनन बारनेट (CanonBarnett)द्वारा स्थापित किया गया।

19. 1886 ई0 में सेटेलमेन्ट हाउसेज आरंभ हुआ।

20. सन 1886 ई0 में स्वच्छता सहायता समिति (Sanitary Aid Committee) की स्थापना संक्रामक रोगों की रोकथाम के लिए की गयी। गृहों की दशा सुधारने का प्रयत्न किया।

21. सन 1895 ई0 में मिस स्टेवार्ट (Stewart) ने हास्पिटल सोशल सर्विस का प्रारम्भ किया।

22. डब्ल्यू मोरे इडे (W. Moore Ede) ने 1896 ई0 ने सेटलमेन्ट आन्दोलन का दर्शन प्रस्तुत किया।

23. वेथनाल ग्रीन में आक्सफोर्ड हाउस, साउथवार्क में वीमेन्स यूनिवर्सिटी सेटलमेन्ट, केनिंग टाउन में मान्सफील्ड हाउस आदि की स्थापना की गयी।

24. सामाजिक वैयक्तिक समाज कार्य तथा सामूहिक समाज कार्य लगभग समान परिस्थितियों में औद्योगिक क्रांति के फलस्वरूप इंग्लैण्ड और अमेरिकामें विकसित हुआ।

25. कैनन वारनेट ने सेटलमेन्ट के लिए उन सिद्धान्तों को प्रतिपादित किया जो आगे चलकर समाज कार्य की सभी प्रणालियों के आधारभूत सिद्धांत माने जाने लगे। उन्होंने व्यक्ति के महत्व को, मान, सम्बन्ध, आत्म निश्चय पर बल दिया।

26. कैनन की विचारधारा को आधार मान कर ही सामूहिक समाज कार्य पद्धति का आधुनिक रूप से विकास सम्भव हो सका।

2.3 अमेरिका में सामाजिक समूह कार्य का ऐतिहासिक विकास

अमेरिका में सामाजिक समूह कार्य का विकास पिछले लगभग60 वर्षो में ही प्रतीत होता है। प्रारम्भ में इसका स्वरूप केवल मनोरंजनात्मक था। लोग इसे केवल खेल-कूद, सांस्कृतिक गतिविधियों के परिप्रेक्ष्य में ही समझते थे। समय के साथ-साथ इनकी कार्य प्रणालियों और उनके उद्देश्यों में बदलाव आया । अमेरिकी सामाजिक समूह कार्य इंग्लैण्ड के समूह कार्य की तरह ही प्रतीत होता है।20 वीं शताब्दी के प्रारम्भ में दोनों की कार्य प्रणालियाँ लगभग समान ही नजर आती है। परन्तु 1935 के बाद इनकी कार्य प्रणालियों में कुछ अन्तर देखा जा सकता है। अमेरिका के सामाजिक समूह कार्य और इतिहास को निम्नलिखित बिन्दुओं द्वारा स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है

2.3.1 स्वकीय दान संगठन समितियाँ(प्राइवेट चैरिटी) -

इंग्लैण्ड के समूह समाज कार्य और अमेरिका के समूह समाज कार्य में जो प्राथमिक भिन्नताएँ नजर आती हैं उसमें सर्वप्रथम स्वकीय दान संगठन पद्धति को देखा जा सकता है। इंग्लैण्ड में निर्धनों को जो सहायता प्रदान की जाती थी, उसके अंतर्गत निर्धनों को निवास हेतु Poor House or Work House प्रदान किए जाते थे। जबकि अमेरिका में निर्धनों, अनाथों और आश्रितों को उनके रहने एवं उनमें कुछ सुधार लाने हेतु भिक्षागृह एवं सुधार गृह बनवाये गए थे। अमेरिका में पहला भिक्षागृह 1657 में न्यूयॉर्क के अंतर्गत खोला गया। कुछसमय पश्चात ऐसे कई भिक्षागृह अन्य नगरों में भी खोले जाने लगे।

इंग्लैण्ड में वैयक्तिक रूप से निर्धनों एवं आश्रितों को जो सहायता प्रदान की जाती थी उसमें अस्पतालों का अत्यधिक महत्व था एवं इसी प्रकार के माध्यमों से निर्धनों की सहायता की जाती थी। जबकि अमेरिका में जो वैयक्तिक दान पद्धति थी उसका स्थान बहुत ही कम था। जो कुछ थोड़ी-बहुत दान पद्धति थी, उसे 18 वीं शताब्दी तक बंद कर दिया गया था। एक ऐसी ही गैर सरकारी चैरिटी का भी अमेरिका में निर्माण कराया गया था जो राष्ट्रीयता पर आधारित थी। ऐसी अन्य समितियों के लिए इनकी दशाओं को सुधारने केलिए नियम-कानूनों का निर्माण भी कराया गया।

अत: इस प्रकार के कार्यों को सुचारू रूप से क्रियान्वित करने के लिये 1898 में न्यूयॉर्क नगर में पहला समाज कार्य पाठ्यक्रम संगठित किया गया। जितने भी गैस-सरकारी संगठन कार्य कर रहे थे उनको भी ठीक से संचालित करने के लिये Council of Social Agencies की स्थापना भी की गई। समस्त समूह कार्यों को किस प्रकार क्रियान्वित किया जाए एवं उनके सफल संचालन के लिए किस प्रकार से संयुक्त होकर धन को एकत्रित किया जाए इसके लिए Community Chest की भी स्थापना की गई जिसके अंतर्गत समस्त एकत्रित धन को संगठित रूप से रखने की व्यवस्था थी।

अमेरिका में समूह समाज कार्य के विकास में एक और महत्वपूर्ण विकास तब नजर आया जब The Settlement House movement को चलाया गया। इस आन्दोलन का उद्देश्य उन गन्दे एवं भीड़-भाड वाले इलाके, जहाँ अत्याधिक लोग निवास करते थे, हटाकर उन्हें एक अन्य प्रकार की संस्था, जिसका नाम Settlement House था, के अंतर्गत उन्हें रखा जाता था। इस संस्था में रहने वाले जितने भी व्यक्ति थे उनमें से अधिकतर समाज सुधारक बन गए और उन्होंने गन्दी बस्तियों की सफाई, बाल अपराधियों के विशेष न्यायालय, आवास के लिए उचित विधान व्यवस्था के लिए कालान्तर में माँग रखीं। इस प्रकार से अमेरिका में समूह समाज कार्य का प्रारंभ नजर आता है।

2.3.2 युवाओं के सथ कार्य करने का काल -

अमेरिका में युवाओं के साथ कार्य करने का युग उस समय प्रारंभ हुआ जब जॉर्ज विलियम द्वारा स्थापित Young men's christian Association (YMCA) की स्थापना इंग्लैण्ड में हुई और इसने निरंतर युवाओं के क्षेत्र में कार्य किया। इसकी सफलता को ध्यान में रखते हुए अमेरिका में भी एस.जे.वी. सुलिवान द्वारा बोस्टन शहर में सन 1851 में Young men's christian Association की स्थापना इसी उद्देश्य के साथ की गई जिससे युवाओं के क्षेत्र में कुछ प्रगतिशील कार्यक्रम को क्रियान्वित किया जाए। इसी तरह की एक और अन्य संस्था 1866 में बोस्टन में ही लुक्रेटिया बोयड के द्वारा Young men's christian Association स्थापित की गई जिससे महिलाओं के क्षेत्र में भी प्रगतिशील कार्य हो सकें इसके लिए YMCA नामक संस्था को संचालित किया गया। इसके उपरान्त अमेरिका में युवाओं के क्षेत्र में कार्य करने के लिए निरंतर नई संस्थाओं का गठन किया गया जैसे- 1910 American boys Scout. 1911 में Camfire Girls इस प्रकार से अमेरिका में युवाओं के सर्वांगीण विकास हेतु इन उपर्युक्त संस्थाओं का निर्माण और विकास किया गया।

2.3.3 आवश्यकता ग्रस्त व्यक्तियों के साथ कार्य करने का युग-

अप्रवासी भारतीय जो अमेरिका में जाकर निवास कर रहे थे उनकी स्थिति अत्यन्त दयनीय एवं विचारणीय थी। न उनके भाषा का मेल-जोल था और न ही विचारधाराओं का मेल। भिन्न-भिन्न भाषा समूह के कारण उन्हें व्यक्तिगत रूप से इंगित करने की आवश्यकता थी। सर्वप्रथम कैनन सॅमुअल (Cannonannon Samuels) द्वारा अप्रवासी भारतीयों के उत्थान के लिए कदम उठाए गए। इन्होंने इनकी गन्दी बस्तियों, आपस में पड़ोस भावना, अच्छे ढंग से जीवनयापन करने के तौर तरीके पर विशेष ध्यान दिया। इस कार्य हेतु सैमुअल का दृष्टिकोण यह था कि इन अप्रवासी भारतीयों के बीच शिक्षित लोगों को रखा जाए ताकि जीवन शैली एवं पड़ोस भावना का विकास किया जा सके। इस व्यवस्था को सर्वप्रथम अमेरिका में स्टैन्टन क्वाइट (Stanton Coit) और (Charles B. Stover) (चार्ल्स बी. स्टोवर) ने लागू किया। इनके द्वारा 1857 में न्यूयॉर्क शहर में ''पड़ोस संघ'' की स्थापना की गई। चूँकि यह व्यवस्था दलितों के सुधार हेतु स्थापित की गईतत्पश्चात इसने ''विश्वविद्यालय बन्दोबस्त आवास'' का रूप ले लिया।

इसी तरह एक और संस्था का आरम्भ किया गया जिसका नाम ''हल हाऊस'' था। इसे शिकागो में स्थापित किया गया। जिसकी नींव जीन एडम्स (Jane Adems) एवं एलेन गेट्स (Allen Gates) ने डाली। विभिन्न देशों से अप्रवासी, जिनमें इटैलियन, जर्मन, ग्रीक, पोलिस तथा रूसी आदि थे, इनके लिए सेटलमेंट हाऊस खोला गया। बालक एवं बालिकाओं के लिए दैनिक नर्सरी एवं किंडर गार्डन स्थापित किए गए।

महिलाओं केलिए 1889 में न्यूयार्क में कॉलेज सेटेलमेंट, 1892 में बोस्टन में तथा 1894 में शिकागो कॉमर्स की स्थापना की गई। हेनरी स्ट्रीट सेटेलमेंट की स्थापना भी 1894 में न्यूयॉर्क में की गई। इन संस्थाओं का निर्माण सामाजिक तथा सामूहिक सुधार हेतु किया गया। इन सभी में सेटेलमेंट हाउस के लोगों का सर्वांगीणविकास हुआ।

2.3.4 कल्याण सेवाओं के संगठन का युग-

समाज समूह कार्य के प्रचार प्रसार की दृष्टि से संयुक्त राज्य अमेरिका में1917 से 1929 की अवधि महत्वपूर्ण है। इस समय में विभिन्न राज्य कल्याण सेवाओं के महत्व को समझ कर आगे आए। कल्याण सेवाओं के संगठनों का एवं सम्पूर्ण राज्य प्रणाली के प्रयास का समन्वय किया गया। परिणामस्वरूप राज्य में गवर्नर द्वारा कल्याण विभाग एवं सलाहकार बोर्ड की स्थापना की गई।

2.3.5 संघीय सहायता एवं अनुदान का युग-

समाज में रहने वाले लोगों की सहायता एवं आवश्यक सामग्री को प्रदान करने हेतु ''संघीय कार्यक्रम'' अत्यधिक प्रभावी रहा है। इस प्रकार अनुदान में भूमि प्रदान की जाती थी। वृहत भूमि के विक्रय से जो राशि प्राप्त होती उसे संघीय कार्यक्रम में व्यय किया जाता। संघीय कार्यक्रम में निम्न प्रकार के कार्य महत्वपूर्ण है:

-विकलांग लोगों के लिए व्यवस्था उत्पन्न करना।

-लड़कियों की शिक्षा।

-असमर्थ व्यक्तियों की सहायता।

बाद में सरकार द्वारा प्राप्त अनुदान में कार्यों की संख्या में वृद्धि हुई और संघीय सहायता एवं अनुदान का प्रसार व्यापक हुआ।

2.3.6 जन कल्याण (1929 उपरान्त) युग –

1. समाज कल्याण के विषय में समस्याओं का सामना करते हुए इसे राष्ट्रीय स्तर पर समझना अति आवश्यक था। यह तब संभव हुआ जब सरकारी एवं गैरसरकारी संगठनों ने समाज कल्याण कार्यक्रम में भाग लिया।

2. समाज कल्याण करने के लिये राज्य सरकार द्वारा प्रदत्त सेवाएँ एवं केन्द्र सरकार द्वारा अन्य समूहों को भी प्रेरित किया गया।

सरकारी एवं गैर-सरकारी संस्था की भागीदारी 1930 तक कुछ पहलुओं में देखने को मिलती है। राष्ट्रीय स्तर के संगठनों का कार्य-भार भी गैर सरकारी संस्था के नेतृत्व में था। ये संगठन निम्नलिखित थे

1. 1876 की American Association on Mental Deficiency.
2. 1895 की National Society for the Study of Education.
3. 1899 की National Consumers league-
4. 1904 की National Child Labour Committee.

2.3.7 कार्यक्रम एवं क्रियान्वयन का युग-

अमेरिका में सामाजिक समूह कार्य के क्षेत्र में अनेक कार्यक्रमों का आयोजन जैसे मनोरंजन के क्षेत्र,शिक्षा के क्षेत्र, स्वास्थ्य, धार्मिक आदि क्षेत्रों में किया गया। जिससे समूह कार्य को और प्रभावी बनाया जा सके।

ये कार्यक्रम निम्नानुसार थे-

1. ***मनोरंजनात्मक एवं शिक्षात्मक कार्यक्रम*** - इसके संदर्भ में प्रौढ़ शिक्षा एवं विद्यालयी शिक्षा को अधिक महत्व दिया गया। 1866 में इसी तारतम्य में पहले खेल-मैदान का निर्माण किया गया जो बालक बालिकाओं के लिए उनके मनोरंजन एवं शिक्षा के क्षेत्र में सहायक हो सके। इसकी प्रभावशीलता को देखते हुए1885 में राष्ट्रीय स्तर पर इसे प्रारंभ किया गया। आगे चलकर इन्हीं कार्यक्रमों के अंतर्गत खेलकूद व शारीरिक क्रियाओं को भीशामिल किया गया जिसमें कला संगीत, अभिनय, नृत्य आदि थे।

2. शिक्षा के कार्यक्रम के अंतर्गत प्रौढ़ शिक्षा को अधिक महत्व प्रदान करने के लिए 1870 एवं 1880 के मध्य प्रौढ़ शिक्षा आन्दोलन भी चलाया गया। इस आन्दोलन का यह परिणाम निकला कि सार्वजनिक पुस्तकालयों एवं विश्वविद्यालयों में निःशुल्क प्रसार सेवाएँ प्रारम्भ हुई।

3. ***व्यवहार परिवर्तन कार्यक्रम*** - युवकों के व्यवहार में परिवर्तन हेतु कई प्रकार के मनोरंजनात्मक कार्यक्रमों तथा शिक्षात्मक कार्यक्रमों को शामिल किया गया जिससे युवकों के चरित्र का निर्माण हो सके। इस आवश्यकता को ध्यान में रखते हेतु 1875 से 1895 के मध्य बड़े प्रोटेस्टेन्ट समुदाय ने अपना युवक कार्यक्रम संगठित किया। धार्मिक भावनाओं के विकास के साथसाथ चरित्र निर्माण एवं व्यवहार निर्माण के लिए भी ब्याज़ स्काउट, गर्ल्स स्काउट, कैम्फायर गर्ल्स आदि संगठनों का विकास हुआ। इस प्रकार की और अन्य संस्थाओं ने भी इस बात पर जोर दिया कि व्यक्ति का समुदाय तथा सामाजिक परिस्थितियों से सम्बन्ध होता है जो कि उसके व्यवहार को प्रभावित करती है। अतः इन्हीं उद्देश्यों के साथ उपर्युक्त व्यवहार एवं चरित्र निर्माण कार्यक्रमों को संचालित किया जाता है।

4. ***उपचार के क्षेत्र में मनोरंजनात्मक कार्यक्रम*** - किसी भी बीमारी के क्षेत्र में व्यक्ति का वातावरण प्रमुख भूमिका निभाता है। अत: इसी उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए उपचार के क्षेत्र में मनोरंजन कार्यक्रमों को भी शामिल किया गया। ये कार्यक्रम व्यक्ति को शारीरिक, मानसिक तथा सांवेगिक व्याधियों से मुक्ति दिलाने या प्रभाव को कम करने का प्रयास करते हैं। इन कार्यक्रमों के माध्यम से हृदय रोग, तनाव ग्रस्त बच्चे, मानसिक रोगी, बाल अपराधी आदि क्षेत्रों में मनोरंजन उपचार के साथ इसका प्रयोग किया जाता है। वर्तमान समयमें इस क्रियाविधि का उपयोग अस्पतालों में मुख्य रूप से किया जाने लगा है। जिसमें अनेक गतिविधियों के माध्यम से व्यक्ति के सामूहिक सम्बन्धों को दृढ़ता प्रदान होती है। जिससे रोगों का निदान करने में आसानी होती है।

5. ***अन्य कार्यक्रम*** - समूह कार्य के क्षेत्र मेंऐसे कई संगठन हैं जिसके माध्यम से सामूहिक गतिविधियों को कराया जाता है। जैसे राजनीतिक पार्टियाँ, औद्योगिक संस्थाएँ, श्रमिक संघ इत्यादि। इन संगठनों का उद्देश्य मनोरंजनात्मक कार्यक्रमों द्वारा व्यक्तियों को अपनी रूचियों के अनुसार शिक्षा मनोवृत्ति तथा व्यवहार को नियंत्रित करने के लिये कार्यक्रमों का आयोजन करना है। अतः इस प्रकार से समूह के कार्यक्रमों को देखा जा सकता है।

2.3.8 अमेरिका में समूह कार्य का व्यावसायिक रूप -

अमेरिका में सामूहिक कार्यकर्ताओं में व्यावसायिक चेतना जागृत करने के लिए 1935 में समाज कार्य की राष्ट्रीय कांफ्रेंस में सामाजिक समूह कार्य को एक भाग के रूप में अलग से एक अनुभाग बनाया गया। ''सोशल वर्क ईयर बुक'' में भी समूह कार्य के लिए एक खण्ड प्रदान किया गया जिसमें समूह कार्य के कई लेख प्रकाशित हुए। 1935 में ही समाज कार्य के राष्ट्रीय कांफ्रेंस में शिक्षा प्रक्रिया के रूप में समूह कार्य को परिभाषित किया गया।

सन 1937 में ग्रेस क्वाइल ने समूह कार्य के संदर्भ में कहा कि ''सामाजिक समूह कार्य का उद्देश्य सामूहिक स्थितियों में व्यक्ति की पारस्परिक क्रिया द्वारा व्यक्तियों का विकास कर ऐसी सामूहिक स्थितियों को उत्पन्न करना

जिससे सामान्य उद्देश्यों के लिए एकीकृत, सामूहिक क्रिया हो सके। (Cogle Gravel Social Group Work Social Work year Book] 1957 NASW)

अमेरिका में बनाए गए कुछ महत्वपूर्ण विधान एवं कार्य एक नजर में-

1. सन 1911 ई0 में नेशनल फेडरेशन ऑफ सेटलमेन्ट की स्थापना समरूपता बनाए रखने के लिए की गयी।
2. सन 1896 ई0 में प्रथम बाल क्लब की स्थापना की गयी।
3. सन 1906ई0 तक अनेक क्लबों का निर्माण हुआ और सलाह तथा सहयोग के लिए राष्ट्रीय संगठन बनाया गया।
4. सन 1910 में सर बेडेन पावेल द्वारा अमरीकी बाल स्काउट संघका संगठन किया गया।
5. सन 1912 में लड़कियों के लिए समान संगठन जूलियट लॉ द्वारा बनाया गया। जिसका नाम बालिका गाइड रखा गया।
6. कैम्प फायर गर्ल्स का गठन सन् 1918 में डा0 लूथर गुलिक के नेतृत्व में हुआ। जिसका उद्देश्य पैदल सैर, खेल, गाना, मनोविनोद, प्रयोग शाला, विचार विमर्श, सांस्कृतिक तथा शैक्षिक क्रियाओं में भाग लेने के लिए अवसर प्रदान करना था।
7. प्रथम विश्व युद्ध के समय वाई. एम.सी. ए. तथा साल्वेशन आर्मी को भी नियुक्त किया गया।
8. सन 1923 में क्लीवलैंड में समाजकार्य के स्कूल में प्रथम प्रशिक्षण कोर्स समूह अनुभव कार्य के नाम से प्रारम्भ हुआ।
9. सन 1926 में एक प्रयोगात्मक सेटलमेंट की नींव प्रशिक्षण के उद्देश्य से रखी गयी।
10. सन1930 तक सामूहिक कार्य विकास के लिए अनेक कदम उठाए गए तथा संबंधित संगठनों का विकास हुआ।
11. पिट्सबर्ग में 4 व 5 नवम्बर 1933 ई0 को विभिन्न संस्थाओं के समूह नेताओं की एकबैठक हुई। यह अपने प्रकार की प्रथम बैठक हुई जिसमें विभिन्न प्रकार की समितियो का निर्माण हुआ जैसे-अनुसंधान समिति, प्रशिक्षण समिति, स्तर निर्धारण समिति इत्यादि।
12. सन 1935 राष्ट्रीय समाज कार्य कांफ्रेंस का आयोजन।
13. सन 1936 में अमेरिकन एसोसिएशन फार द स्टडी आफ द ग्रुप वर्क का गठन, जिसको आज अमेरिकन एसोसिएशन आफ ग्रुप वर्क्स के नाम से जानते हैं।

सन 1935 ई0 में प्रथम बार समूह कार्य अनुभव, जो कि नेशनल कान्फ्रेरेन्स आफ सोशल वर्क था, अलग संगठित हुआ। इसने सामूहिक कार्य के विकास में बहुत योगदान दिया और समाज कार्य के लिए सामूहिक कार्य को एक आवश्यक प्रणाली बताया। उसके पश्चात् अमेरिकन एसोसिएशन फार द स्टडी आफ ग्रुप वर्क को संगठित किया गया। इसके लगभग वे ही सदस्य थे जो कि नेशनल कान्फ्रेरेन्स ऑफ सोशल वर्क में थे। सन् 1936 में जो अमेरिकन एसोसिएशन फार द स्टडी आफ ग्रुप वर्क बना था वह व्यावसायिक ढ़ाँचे पर आधारित नहीं था। इसमें ऐच्छिक तथा व्यवसायी दोनों प्रकार के कार्यकर्ता थे। प्रारंभिक अवस्था में यह समस्या बनी रही कि सामूहिक कार्यकर्ता समाज कार्य संगठन में सम्मिलित हो या शिक्षा संगठन में। आगे चलकर देश की परिस्थितियों ने सामूहिक कार्य के महत्व को बढ़ा दिया और इसकी गणना व्यावसायिक स्तर पर की जाने लगी। सन् 1946 में सामूहिक कार्यकर्ताओं का अलग संगठन

बना और उसका नाम अमेरिकन एसोसिएशन ऑफ ग्रुप वर्क्स रखा गया। उपर्युक्त महत्वमूर्ण विधानों एवं व्यक्तियों के प्रयत्नों के कारण सन् 1950 तक 21 विश्वविद्यालयों में सामूहिक कार्य अध्ययन प्रारंभ हो गया।

2.4 भारत में सामाजिक समूह कार्य का ऐतिहासिक विकास

भारत में सामाजिक समूह कार्य -

भारत में सामाजिक समूह कार्य के वास्तविक रूप को 20 वीं शताब्दी के प्रारंभ में देखा जा सकता है। जब 1936 में सर दोराबजी टाटा स्कूल ऑफ सोशल वर्क द्वारा समाज कार्य की व्यावसायिक शिक्षा प्रारम्भ हुई। उसी समय से ही देश के अन्य महाविद्यालयों, विश्वविद्यालयों में समाज कार्य देखा जा सकता है। समूह कार्य का भारत में प्रयोग आज इस आधार पर किया जाता है व्यक्तियों को किस प्रकार से समूह के माध्यम से उनकी आवश्यकताओं को पूरा किया जाए और समस्याओं कोकैसे दूर किया जाए? अतः इस हेतु समूह कार्य प्रक्रिया के माध्यम से इसे दूर करने का प्रयास किया जाता है। समूह कार्य के पाठ्यक्रम को और अधिक सुविधाजनक बनाने हेतु 1979 में विद्यालय एसोशिएसन द्वारा 1979 में स्वदेशी सामग्री तैयार करने का प्रयास किया गया। इसके पूर्व 1960 के दशक में भी समूह कार्य के क्षेत्र में सामग्री तैयार करने के लिए एसोसिएशन और तकनीकी सहकारी मिशन (USA) ने संयुक्त रूप से समूह कार्य व्यवसाय के लिये न्यूनतम मानकों का निर्धारण किया। इसके अलावा भास में समूह कार्य का ऐतिहासिक विकास खोजने के प्रयास करने वालों में बीडी मेहतार (1987) और हेलन जोसिक (1997) इससे सहमत है कि भारत में समाजकार्य के क्षेत्र में विद्यालयों में सैद्धांतिक रूप से विद्यार्थियों को परिपक्वता तो प्रदान कराई जाती थी लेकिन व्यावसायिक रूप से सशक्त नहीं बनाया जाता था। लेकिन धीरे-धीरे समूह कार्य के क्षेत्र में प्रगति हुई और कुछ विश्वविद्यालयों और महाविद्यालयों में समूह कार्य को क्षेत्र कार्य के रूप में प्रयोग में लाया जाने लगा और अनेक माध्यमों जैसे नुक्कड़ नाटक, रैलियाँ, आम सभाओं, स्वच्छता कार्यक्रमों आदि के माध्यम से कार्य करना प्रारम्भ हो गया।

भारत में सामाजिक समूह कार्य के इतिहास की ओर मजूमदार, मेहता, गोरे, राजा राम शास्त्री, पाठक आदि सामाजिक कार्यकर्ताओं ने अपनेअपने लेखों द्वारा समूह कार्य को स्पष्ट करने का प्रयास किया है। यदि हम भारतीय साहित्य की ओर नजर डालें तो समाज सुधार तथा समूह कार्य के क्षेत्र में राजराम मोहन रॉय का योगदान अत्यधिक नजर आता है। इसके अलावा मुस्लिम तथा मराठाओं का भी साहित्यउपलब्ध होता है। लेकिन प्राचीन ग्रन्थों के अध्ययनों से स्पष्ट हो जाता है कि भारत में समूह कार्य की जड़ें काफी प्राचीन है। समूह कार्य का प्राचीन इतिहास और अन्य इतिहास के लिए आगे की इकाई में इसका वर्णन किया जायेगा।

2.5 सामाजिक समूह कार्य का शिक्षात्मक विकास क्रम -

समूहकार्य के शिक्षात्मक विकास के क्षेत्र में सर्वप्रथम पहला पाठ्यक्रम क्लेवलैंक वेल्टर्न रिजर्व विश्वविद्यालय में स्कूल ऑफ सोशल वर्क में क्लेश केसर द्वारा प्रस्तुत किया गया। जब क्लेश केसर पहली बार 1935 में न्यूयॉर्क गई तो क्रेश कोली ने पाठ्यक्रम को और आगे विस्तारित किया। समूह कार्य को पद्धति और क्षेत्र अभ्यास के रूप में पेश किया जाता था। इससे समूह कार्य को आगे बढ़ाते हुए लगभग 10 विश्वविद्यालयों ने 1937 तक विशेष पाठ्यक्रम प्रदान किया। 1930 के दशक के आरम्भ में उस समूह कार्य को अधिक पहचान मिली जब समूह कार्यकर्ताओं का10-15 लोगों का एक लघु समूह वर्ग न्यूयॉर्क में मिला। इस समूहने NCSW में समस्त समूह कार्यकर्ताओं को प्रतिस्थापित किया। इसके बाद 1936 में समूह कार्य के अध्ययन हेतु अमेरिकन एसोसिएशन की स्थापना की गई। जिसका उद्देश्य समूह कार्य के अभ्यास और सिद्धान्त में सुधार करना था जिससे कि धर्म के प्रचारप्रसार को आगे बढ़ाया जा सके।

1936 में समूहकार्य के क्षेत्र में एक विशिष्ट उपलब्धि तब प्राप्त हुई जब समूह कार्य को राष्ट्रीय समाज कार्य सम्मेलन के प्रभाव के कारण समूह कार्य को एक विशिष्ट विषय के रूप में माना जाने लगा। इसके बाद 1940 तक समूह कार्य और मजबूत हो गया और इनके माध्यमसे मनोरंजन, प्रौढ़, शिक्षा आदि कार्यक्रम संचालित होने लगे। 1955 में सामूहिक कार्यकर्ताओं द्वारा राष्ट्रीय समाज कार्यकर्ता एसोसिएसन (NCSW)बनाने के लिये अन्य व्यावसायिक समूह के साथ कार्य करना प्रारम्भ कर दिया। द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात अनेक समस्याएँ समाज के सामने उत्पन्न हो गई। इन उत्पन्न समस्याओं के समाधान के लिए भी सामूहिक कार्यकर्ताओं ने अपनी महती भूमिका अदा की। 1940-1950 के दशक तक इन्होंने सेवा निवृत्त सैनिकों और युद्ध से प्रभावित व्यक्तियों की सहायता करने का प्रयास किया। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद समूहकार्य के क्षेत्र में साहित्य लिखने वालों की संख्या में अत्यंत वृद्धिहुई और अनेक विद्वानों ने समूहकार्य के संदर्भ में अनेक पुस्तकों का प्रकाशन दो वर्ष के अन्दर ही कर दिया। ये पुस्तकें निम्न थी :

''सोयायटी ऑफ ग्रुप वर्क प्रैक्टिस'' (1949), हलैट बी ट्रैकर्स की ''सोशियल ग्रुपवर्क'' (1949), ग्रस कोली की ''ग्रुप वर्क विद अमेरिकन यूथ'' (1949) और जिस्ला कोनाप्का की ''थ्रेपटिक ग्रुप वर्क विथ चिल्ड्रन (1949) प्रमुख है।

इन सभी पुस्तकों का मुख्य उद्देश्य समाजकार्य में समूहकार्य को एक सहायक प्रणाली के रूप में स्पष्ट किया। किन्तु 1960 के दशक में समूह कार्य के क्षेत्र में कमी को देखा गया। और सामुदायिक संगठन को अधिक महत्ता प्रदान की गई। यह क्रम आगे बढ़ता गया और इसे 1970 के दशक में महसूस किया गया। लेकिन 1978 तक आते-आते इसने पुनः अपना स्थान प्राप्त कर लिया और 1978 में समूह कार्यकर्ताओं नेएक वार्षिक सम्मेलन का आयोजन किया जिसे मुख्य रूप से समूह कार्य को आरम्भ करने वाली ग्रेस कोली के सम्मान में रखा गया था।(नॉर्दन कुलेड 2001) सम्मेलन योजना समिति सदस्यता अभियान संगठन The association advancement of social work with group में रूपान्तरित हो गया। (SWG, 2006)

समूह कार्य को कैसे आगे बढ़ाया जाए? इस सम्बन्ध में जागरूकता लाने और वृद्धि करने के लिए सम्पूर्ण USA और Comasa में संगठित होकर प्रयास किया। 1979 में समूह कार्य के क्षेत्र में सामूहिक विकास हेतु सर्वप्रथम विचारगोष्ठी का आयोजन किया गया। तब से लेकर आज तक हर साल व्यवसाय साधन के रूप में समूह कार्य पर विचार गोष्ठी का आयोजन किया जा रहा है।

चीन में भी समाज कार्य को बढ़ावा देने के लिए वर्ष 2006 में सामाजिक नीति प्रयासों की एक श्रृखंला प्रारम्भ की जो समाज कार्य के क्षेत्र में अत्यन्त ही सार्थकता प्रदान करती है। धीरे-धीरे समाज कार्य के क्षेत्र में विशेषज्ञता प्राप्त की।

अतः इस प्रकार से समूह कार्य के विकास क्रम को शिक्षा एवं व्यवसायिकता के क्षेत्र में जोड़कर देखा जा सकता है।

समूह कार्य शिक्षा के क्षेत्र में निम्नलिखित पुस्तकों का भी प्रकाशन हुआ है जिससे समूहकार्य को और अधिक स्पष्ट रूप से समझा जा सके:

1. 1990 में मोरगैनेट द्वारा युवा किशोरों में लिए पुस्तक का प्रकाशन किया।
2. 2008 में राबर्ट सलमान द्वारा एन साइक्लोपीडिया ऑफ सोशल ग्रुप वर्क विद ग्रुप्स 1 का प्रकाशन किया गया।

3. 2007 में ग्राविन,चार्ल्स डी, लॉरी एम गुलियर द्वारा - ए हैंड बुक ऑफ सोशल वर्क विद ग्रुप्स का प्रकाशन किया गया।

4. 2005 में मार्क डोयल द्वारा - यूजिंग ग्रुप वर्क का लेखन किया गया॥

5. 2003 में डोयल, मार्क व सवडा, कैथरिन द्वारा - द एसेंसिएल्स ऑफ ग्रुप वर्कर का लेखन किया गया॥

6. 2001 में रोनाल्ड टोसलैंड व राबर्ड रिवास द्वारा - एन इंट्रोडक्शन टू ग्रुप वर्क प्रैक्टिस का प्रकाशन किया गया।

7. 2001 अलीसी एलबर्ट एस द्वारा सोशल वर्क विथ ग्रुप वर्क प्रैक्टिस का प्रकाशन किया गया।

8. 2000 में हेलन नार्दन व रोसली करलैंड द्वारा सोशल वर्क विथ ग्रुप वर्क का लेखन कार्य किया गया।

9. 1997 में नोरको ए तथा वलैस आर ने समाज कार्य समूह में लिंग आधारित विषयों पर प्रकाश डाला।

10. 1996 में हर्लेट ने युवा अवस्था से अधिक उम्र के व्यक्तियों हेतु उपचारी समूह कार्य पर विशेष बल दिया।

11. 1995 में टोसलैंड द्वारा लिखित पुस्तक को बडों और परिवार की देखभाल कार्यकर्ता के लिए प्रकाशित किया।

12. 1994 में ब्राउन ए तथा मिस्ट्री टी ने जाति और लिंग आधारित विषयों पर प्रकाश डालते हुए मिश्रितसमूह वाले समाज कार्य पर अपना ध्यान आकर्षित किया।

13. 1994 में काक्स व पार्सन्स ने वृध्दों को सशक्त बनाने वाले समूह कार्य पर अपने सिध्दांत प्रस्तुत किए।

14. 1994 में ही ब्रेटन ने सोशल वर्क विद ग्रुप में एम्पावरमेंट ओरिएंटिड ग्रुप वर्क की संकल्पना की

15. 1993 में कैरेल एस ने बच्चों के लिए समूह अनुभवों के बारे में पुस्तक का प्रकाशन किया।

16. 1992 में पहरूजी ने सोशल वर्क विद ग्रुप पुस्तक के माध्यम से समूह कार्य के आदर्श प्रस्तुत किए।

17. 1991 में रोज एस व एडिल्सन ने भी बच्चों और किशोरों के लिए विशिष्ट समूह कार्य अभ्यास पर पुस्तक का लेखन किया॥

18. 1990 में मोरगैनेट द्वारा युवा किशोरों के लिए जीवन निपुणता और समूह परामर्श पर एक पुस्तक लिखी॥

19. 1990 में ही ग्लासमैन यू तथा केट्स एल द्वारा समूह कार्य में मानवीय विचारधारा पर लेखन कार्य किया॥

2. 6 सारांश

समूह समाजकार्य के शिक्षा एवं व्यवसाय के स्तर में हुए विकास को उपर्युक्त कार्यो के माध्यस से समझा जा सकता है। यह भी कहा जा सकता है कि समूह कार्यका प्रारंभ अनेकानेक कारणों से हुआ है जिसने आज वर्तमान समय में इसकी महती भूमिका को प्रकट किया है। किंतु अनेक प्रयासों के वाबजूद भी समूह कार्य को एक स्पष्ट व्यावहारिक रूप अभी तक प्राप्त नहीं हो पाया है । इस कारण से समूह कार्यकर्ताओं का एक अभाव ही नजर आता है। आज आवश्यकता है कि समाज कार्य में समूहकार्य जैसी विधा को महत्व दिया जाय और इसका अलग से संगठन बनाकर इसे विकसित किया जाय तब ही समाज में उत्पन्न होने वाली सामूहिक समस्याओं का उचित निराकरण प्रस्तुत किया जा सकता है।

2. 7 बोध प्रश्न

प्रश्न 01.शिक्षा एवं व्यवसाय में स्तर पर समूह कार्य के क्षेत्र में आये विकास कीचर्चा कीजिए ।

प्रश्न 02. इग्लैण्ड में समूहकार्य के विकास क्रम की चर्चा कीजिए।

प्रश्न 03. अमेरिका में सामाजिक समूहकार्य में किस प्रकार परिवर्तन है ? वर्णन कीजिए।

प्रश्न 04. अमेरिका में सामाजिक समूह कार्य के माध्यम से किस प्रकार के कार्यक्रमों का क्रियान्वयन किया गया? उल्लेख कीजिए।

प्रश्न 05.सामाजिक समूह कार्य के शिक्षात्मक विधान क्रम का उल्लेख कीजिए।

2. 8 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

- सचदेवा, डी .आर. भूषण विद्या, (2012). ***समाजशास्त्र***. लखनऊ: डॉर्लिंग किंडरस्ले (इंडिया) प्रा.लि.
- डीवे, जे. थिंक हाऊवी (1933). *ए रीस्टेटमैंट ऑफ द रिलेशन ऑफ रिफलैक्टिव थिंकिंग टु द एजूकेटिव प्रासेस (संशोधित संस्करण)*. बॉ स्टोन डी.सी. हीथ.
- फैरिस, एल्यवर्थ (1937). द *नेचर आफ ह्युमैन नेचर* मैकग्रा-हिल : बुक कं.इंक
- इंदिरा गांधीराष्ट्रीय मुक्त विशवविद्यालय (2010). *समूहों के साथ कार्य करना.*दिल्लीः समाज कार्य विद्यापीठ।
- सिंह, ए.एन. एवं सिंह ए.पी. (2008). *समाज कार्य*. लखनऊ: (इंडिया) प्रा.लि.
- मिश्रा, प्रयागदीन (2008). *सामाजिक सामूहिक कार्य.* लखनऊ : हिंदी संस्थान

इकाई-3 भारत में सामाजिक समूह कार्य का इतिहास

इकाई रूप रेखा

3.0 उद्देश्य
3.1 प्रस्तावना
3.2 प्राचीन काल में समूह कार्य का विकास
3.3 मध्यकाल में समूह कार्य का विकास
3.4 आधुनिक काल में समूह कार्य का इतिहास
3.5 अन्य क्षेत्रों के साथ समूह कार्य
3.6 सारांश
3.7 बोध प्रश्न
3.8 संदर्भएवं उपयोगी ग्रंथ

3.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप निम्नलिखित जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

- ❖ नियोजन ढंग से भारत में समूह कार्य का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य।
- ❖ प्राचीन काल में समूह कार्य का रूप एवं विकास क्रम।
- ❖ मध्य काल में समूह कार्य के क्षेत्रमें किए गए कार्यों का अध्ययन।
- ❖ स्वतंत्रता पश्चात अर्थात आधुनिक काल में समूह कार्य का विकासात्मक एवं किए गए कार्यों का अध्ययन।
- ❖ भारत में समूह कार्य शिक्षा का प्रारम्भ।
- ❖ अन्य संस्थाओं एवं समुदायों के साथ समूह कार्य की प्रक्रिया।

3.1 प्रस्तावना

भारत में यदि हम समूह कार्य में संदर्भ में अध्ययन करते हैं तो स्पष्ट होता है कि इसका इतिहास प्राचीन है। आदिकाल में समूह कार्य के कुछ हिस्से नजर में आते हैं इसके बाद मध्ययुगीन काल में समूह कार्य को स्पष्ट देखा जा सकता है। आधुनिक काल में समूह कार्य में कार्यक्रमों एवं क्रियान्वयन में अंतर स्पष्ट होता है। समूह कार्य को समाज कार्य की एक प्रणाली के रूप में जाना जाता है। आधुनिक समाज में समूह कार्य को व्यावसायिकता के क्षेत्र से भी जोड़कर देखा जा रहा है जिसकी उत्पत्ति वर्तमान में ही हुई है।

आदिकाल और आधुनिक काल में जो समूह कार्य की स्थिति थी और इसका जो वास्तविक स्वरूप है उसी को केंद्रित करते हुए इस इकाई को प्रस्तुत किया जा रहा है, जो सामाजिक समूह कार्य के विकास एवं स्वरूप को आपके सामने प्रस्तुत करेगा, जिससे समूह कार्य के प्रति आपकी समझ मजबूत होगी।

3.2 प्राचीन काल में समूह कार्य का विकास-

प्राचीन काल में समूह कार्य आधुनिक समूह कार्य से एकदम भिन्न था। पूर्व में समूह कार्य व्यवस्थित नहीं था और इसे केवल व्यक्ति की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु किया जाता था। समूह कार्य को अन्य सामाजिक संस्थाओं द्वारा किया जाता था और ये संस्थाएँ लोगों के जीवन पर अपना प्रभाव डालती थीं। कालांतर में आगे चलकर इन संस्थाओं द्वारा पुऩदेखा स्थितियों एवं अनुभव को उपलब्ध कराया गया। जिसके फलस्वरूप उनके ही सदस्यों को

लाभ प्राप्त हुआ। प्रो. राजाराम शास्त्री ने वैदिक काल की सामुदायिक समाज की व्यवस्था का वर्णन करते हुए लिखा है कि इस व्यवस्था में समुदाय के आवश्यकताओं को पूरा करने का दायित्व प्रत्येक व्यक्ति का था। व्यक्ति की आवश्यकताओं को सामूहिक प्रयास से पूरा किया जाता था। इस काल में विशिष्ट सहायता की आवश्यकता रखने वाले व्यक्तियों का उत्तरदायित्व शासक, धनी तथा साधारण समुदाय के सदस्यों द्वारा आपस में बाँट लिया जाता था। (शास्त्री,राजाराम ओपीसिट, वर्ष 4)

प्राचीन काल में सहायता का कार्य धर्म के आधार पर था। मंदिरों और आश्रमों की स्थापना, संत-महात्मा के लिए निवास स्थान, मंदिरों में रहने वालों के लिए भोजन, कपड़े आदि अन्य वस्तुओं के द्वारा समूह कार्य किया जाता था। जिनके पास स्वयं का घर नहीं था, उन्हें मदिरों में रखने की व्यवस्था थी। जो वृद्ध एवं बीमार हो, उनकी सहायता करने का उत्तरदायित्व भार जाति और समुदाय परिषदों पर था। (Garg –MS sourse E. Historical background of social work in india , in social welfare in india op.cit.p.2) मठों और मंदिरों के माध्यम से समूह सहायक की परंपरा का संचालन किया जाता था। संघ तथा गुण शब्द ऋग्वेद तथा अथर्ववेद में समूह कार्य को प्रतीत करते थे।

आगे चलकर संघ का नाम बौद्ध भिक्षुओं ने अपनाया जो अपने आपको सामूहिक रूप से भिक्षु संघ कहते थे। पौराणिक कथाओं से प्रतीत होता है कि प्राचीन काल में दो प्रकार की संन्यासी बस्तियाँ थीं-प्रथम आवास और दूसरा आराम। ऐसी बस्तियों को गाँव के बाहर बनाया जाता था जिसे भिक्षु स्वयं बनाते थे और उनकी मरम्मत स्वयं करते थे इसे आवास कहा जाता था। जब कोई धनी व्यक्ति इन भिक्षुओं को दान में देता था तथा उसकी स्वयं देखभाल करता था उसे 'आराम' कहा जाता था। आराम की सभी संपत्ति सामूहिक होती थी। इसका उपयोग संघ में सभी सदस्य द्वारा किया जाता था। संघ को दी जाने वाली कोई भी संपत्तिकिसी भी व्यक्ति द्वारा व्यक्तिगत रूप से अधिकार में नहीं ली जा सकती थी। बोधिसत्व ने मगध में ही गाँव के तीस व्यक्तियों को एकत्र किया और गाँव की भलाई एवं उन्नति के लिए कार्य करने को प्रेरित किया जिससे गाँव की सड़कों का निर्माण, बांधों का निर्माण, तालाब आदि कार्यों को किया गया। मौर्य वंश के काल में जनता को ध्यान में रखते हुए उनकी भलाई के लिए अनेक सामूहिक कार्यों को किया गया। (डॉ. पी. मिश्र, वर्ष, पृ.25)। हड़प्पा संस्कृति से लेकर बौद्व काल तक जनता की भलाई के लिए उपदेश दिए जाते थे। मौर्य काल में भी जनता की भलाई के लिए उपदेश दिए गए। अशोक ने भी कहा कि सहायता के लिए मेरी प्रजा किसी भी समय मुझसे आकर मिल सकती है। शिक्षा के क्षेत्र में भी प्राचीन काल में गुरूजनों द्वारा शिक्षा देने की परंपरा को देखा जा सकता है। बौद्ध काल में शिल्प संघों का निर्माण कर आर्थिक व्यवस्थाको मजबूती प्रदान की गई। लोगों को आभास हो गया कि संयुक्त रूप से कार्य करके अधिक धन अर्जन किया जा सकता है।

अतः प्राचीन काल में इन समस्त उपर्युक्त उदाहरणों के माध्यम से समूह कार्य को समझा जा सकता है। मध्य काल में इसके अंतर्गत अनेक परिवर्तन दिखेंगे।

3.3 मध्य काल में समूह कार्य का इतिहास

समूह कार्य के क्षेत्र में मध्य काल या स्वतंत्रता के पूर्व के काल को उस समय से देखा जा सकता है जब 18वीं शताब्दी के प्रारंभ में ही अनेक सामूहिक प्रयास समाज की आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक और धार्मिक व्यवस्था के सुधार हेतुकिए गए।

यह कोशिश बंगाल से रामपुर मिशन के रूप में देखी जा सकती है जिसकी स्थापना 1780 में की गई थी। समाज के क्षेत्र में कार्यरत व्यक्तियों एवं समाज सुधारकों का मत था कि हिंदुओं की सामाजिक दशा में सुधार तब ही लाया जा सकता है जब इनका बालविवाह निषेध कराया जाए, बालिकाओं की भ्रूण हत्या पर रोक लगाई जाय, सती

प्रथा को समाप्त किया जाए और विधवाओं का पुर्नविवाह कराया जाए।(prishevar Prasad .Bandage and freedam ,Rajesh public cation,new delhi 1977 p.441)

इन्हीं सामाजिक बुराईयों के क्षेत्र में कार्य करने वाले कुछ प्रमुख व्यक्तियों एवं संस्थाओं को समूह कार्य के क्षेत्र में इस प्रकार देखा जा सकता है-

राजाराम मोहन राय (1774-1843)- एक साधारण परिवार में जन्में राजाराम मोहन राय, जिन्होंने सर्वप्रथम सामाजिक कुरीतियों की ओर समस्त जनता का ध्यान आकर्षित कराया। सन 1828 में ब्रह्म समाज की स्थापना की। इस ब्रह्म समाज की स्थापना का उद्देश्य था कि किस तरह से जाति बंधनों को तोड़ा जाए किस प्रकार सती प्रथा को तोड़ा जाए, बाल विकास के लिए शिक्षा की व्यवस्था की जाए, किस प्रकार से बाल विधवाओं की स्थिति में सुधार किया जाए और इसके अलावा दान तथा संयम को उत्साहित करने के उद्देश्य से इस संस्था का निर्माण किया गया था। इन सभी कार्यों को करने के लिए सामूहिकता की भावना अनिवार्य थी तथा इसी कारण इन सभी समाज सुधार कार्यों में समूह कार्य का प्रयोग किया जाता था।

स्वामी दयानंद सरस्वती (1824-1883) - दयानंद सरस्वती को 19वीं शताब्दी के प्रमुख समाज सुधारवादी के रूप में जाना जाता है । इनका जन्म काठियावाड़ के टंकारा नामक गाँव में हुआ था। दयानंद मूर्ति पूजा के कट्टर विरोधी थे। उनका मानना था कि एक पत्थर जो स्वयं की रक्षा नहीं कर सकता वो हमारी रक्षा कैसे कर सक्ता है? सन 1875 में इन्होंने आर्यसमाज की स्थापना बंबई में की सामूहिक कार्य के सिद्धांतों तथा प्रविधियों का उपयोग करते हुए जाति प्रथा, बाल विवाह , धर्म परिवर्तन लोगों के लिए गृह प्रवेश-निषेध नीति आदि के विरोध में आवाज उठाई जाय।

स्वामी विवेकानंद (1863-1902) - 12 जनवरी 1863 को जन्मे नरेन्द्र, जो आगे चलकर स्वामी विवेकानंद कहलाए, दलितों की व्यवस्था को देखकर दु:खी होते थे। इसी कारण 1897 में रामकृष्ण मिशन की स्थापना की। जिसका उद्देश्य दलितों का कल्याण एवं उनका सामाजिक शैक्षिक विकास करना था । इन्होंने अलग-अलग व्यक्तियों के समूह बनाकर देश सेवा का कार्य किया ।

एनी बिसेन्ट (1847- 1933)- शिक्षा और समाज सुधार के क्षेत्र में एनी बिसेन्ट का नाम अत्यंत ही आदर के साथ लिया जाता है। उनका जन्म 1847 में लंदन में हुआ। वे सामाजिक समस्याओं के प्रति अत्यंत ही चिंतित थी। इसी कारण उन्होनें नेशनल रिफार्मर के संपादक ब्राडलो के साथ मिलकर समाज सुधार के क्षेत्र में अत्यंत महत्त्वपूर्ण कार्य किया । उन्होंने आबादी का नियम एक परिपत्र लिखा, जिसमें जनन-नियंत्रण की आवश्यकता पर अत्यधिक बल दिया गया। सन 1881 में मैडम बलावस्की तथा कर्नल आलकट ने मद्रास में ब्रह्म समाज की स्थापना की। बिसेन्ट ने सारा जीवन इसी में लगा दिया। थियोसोफिकल सोसाइटी की स्थापना और प्रारंभिक कार्यक्रम में इनका मुख्य योगदान था । सन 1907 में वे भारत में थियोसोफिकल सोसाइटी की अध्यक्षा बन गई। थियोसोफिकल सोसाइटी ने निम्न उद्देश्यों को लेकर समाज में कार्य किया -

1. मानव जाति के लिए एक ऐसे सार्वभौमिक भ्रातृत्व का आधार-बिंदु तैयार करना जिसमेंजाति, धर्म, लिंग, वर्ण आदि का कोई भेद-भाव न हो।
2. धर्म, दर्शन और विज्ञान के तुलनात्मक अध्ययन को प्रोत्साहित करना।
3. प्रकृति के रहस्यपूर्ण नियमों तथा मनुष्य की अंतर्निहित शक्तियों के विषय में अन्वेषण करना।

एनी बिसेंट ने शिक्षा के क्षेत्र में भी अत्यधिक कार्य किया और शिक्षा के महत्त्व को बताते हुए व्यापक प्रचार-प्रसार किया । 1917 में ऐनी बिसेंट को इंडियन नेशनल कांग्रेस की अध्यक्षा बना दिया गया । उनकी प्रमुख पुस्तकों में 'आत्म कथा', 'प्राचीन ज्ञान', उपनिषदों का ज्ञान' आदि मुख्य हैं।

महात्मा गांधी (1869-1947) -गांधी जी ने हमेशा ही समूह कार्य प्रविधि के माध्यम से आंदोलनों को क्रियान्वित किया। यदि हम कहें कि समूह कार्य का वास्तविक रूप गांधी के आंदोलनोंसे स्पष्ट होता है तो यह गलत नहीं होगा। गांधी जी ने मानव को एवं मानव गरिमा और आत्मसम्मान को विशेष महत्त्व दिया। आज वे ही मूल्य सामूहिक समाज कार्य के मूल्य माने जाते हैं। गांधी द्वारा अनेक प्रशिक्षण केंद्रोंकी स्थापना की गई जिसमें लोग साथ-साथ कार्य किया करते थे। गांधी स्वयं ही रोगियों, अछूतों, ग्रामीणों के बीच उनके साथ मिलकर कार्य करते थे।

उपर्युक्त प्रमुख व्यक्तियों एवं संस्थाओं के अतिरिक्त कुछ अन्य महत्त्वपूर्ण व्यक्ति एवं संस्थाओं को समूह कार्य योगदान के क्षेत्र में शामिल किया जा सकता है-

1. सन 1815 में राजाराम मोहन राय द्वारा आत्मीय समाज की स्थापना की गई जो बाद में चलकर बह्म समाज कहलाया। यह समाज सती प्रथा के विरूद्ध से रामपुर मिशनरियों द्वारा प्रारंभ किया गया।
2. ईश्वर चंद्र विद्यासागर ऐसे प्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने विधवा विवाह विरोध के खिलाफ आंदोलन चलाया। उनके सतत प्रयासों से ही हिंदू विधवा पुनर्विवाह अधिनियम1856 पारित किया गया।
3. सन 1861 में न्यायमूर्ति रानाडे ने विधवा पुर्नविवाह के कारणों और हितों को ध्यान में रखते हुए विधवा विवाह एसोसिएशन की स्थापना की जिसका उद्देश्य विधवा पुर्नविवाह को प्रोत्साहन देना था।
4. केशवचंद्र सेन ने स्त्री शिक्षा पर अधिक जोर दिया।
5. सन 1867 में प्रार्थना समाज की स्थापना की गई।
6. आर्य समाज की स्थापना 1875 में की गई जिसका उद्देश्य मूर्ति पूजा, जाति-प्रथा, बाल-विवाह, छुआ-छूत प्रथा के विरूद्व तथा विधवा पुनर्विवाह करने के पक्ष में था।
7. सन 1882 में शशिपद बेनर्जी द्वारा बंगाल में हिन्दू विधवाओं के लिए एक विधवा गृह की नींव डाली।
8. सन 1882 में पंडित रमाबाई ने आर्य महिला समाज का गठन किया। इसके साथ भारतीय ईसाई मिशनरियों के दृष्टिकोण और उनकी सोच के समर्थन में महिलाओं की स्थिति केसुधार में कार्य किया।
9. स्त्रियों की शिक्षा पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता पर जनता का ध्यान आकर्षित कराते हुए1883 में केश्वचन्द्र सेन द्वारा शिक्षा पर विशेष बल दिया गया।
10. सन 1896 में कार्वे द्वारा पूना में विधवा गृह की स्थापना की गई।
11. सन 1892 में युवा सुधारकों ने मद्रास में मद्रास हिंदू समाज सुधार संघ की स्थापना की।
12. सन 1905 में गोपाल कृष्ण गोखले द्वारा 'सर्वेन्ट ऑफ इंडिया सोसाइटी' की नींव डाली गई। इसके द्वारा राजनैतिक कार्यो के साथ-साथ सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक और दलित वर्ग के लिए कार्य आरंभ किए गए।
13. 1906 में वी.आर.शिंदे द्वारा बंबई में भारत दलित वर्ग मिशन समाज की स्थापना की गई।
14. 1908 में बंबई संघ द्वारा सेवा सदन की स्थापना की गई। इसका उद्देश्यमहिला कार्यकर्ताओं को प्रशिक्षित करना था।
15. 1917 में समाज सेवा सम्मेलन की पहली बैठक की गई।
16. 1917 में ही एनी बिसेंट एवं मारगैरेट कासिन्स द्वारा मद्रास में प्रांतीय महिला संघ की स्थापना की।
17. 1925 में राष्ट्रीय स्तर पर महिलाओं की राष्ट्रीय सभा की गई।
18. एन.एम.जोशी तथा चंद्रावरकर ने बंबई में सोशल सर्विस लीग की स्थापना की जो मिल में काम करने वाले लोगों के लिए तथा उनके बच्चों के लिए मनोरंजन का प्रबंध करती थी व रात्रि पाठशालाएँचलाती थी।

उर्पयुक्त विद्वानों ने मध्य काल में समूह कार्य को लेकर अनेक प्रयास किए जिनके परिणामस्वरूप आज समूह कार्य को काभी हद तक मान्यता प्राप्त हो रही है किंतु यह कार्य अधिकतर अवैज्ञानिक ज्ञान के आधार पर ही थे। यह कार्य वर्तमान आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर ही किए जाते थे। इन प्रयासों में कोई स्पष्ट सिद्धांत प्रणालियाँहीं थी । इस दृष्टिकोण को सहायता करने वाले लोगों ने बाद में संशोधित किया जब पश्चिमी देशों में एक व्यवसाय के रूप में समाज कार्य विकसित हुआ और इसका प्रभाव भारत में भी देखा गया ।

3.4 आधुनिक काल में समूह कार्य का इतिहास

स्वतंत्रता प्राप्ति पश्चात के काल को हम आधुनिक काल के रूप में देख रहे हैं। इस काल के प्रारंभ से ही सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं शारीरिक विकास जैसे अनेक कार्यक्रमोंको समूह कार्य के क्षेत्र में प्रारंभ किया गया । बच्चों, युवाओं एवं वृद्धों के लिए अनेक प्रकार के कार्यक्रमों को चलाया गया ।बच्चों के लिए एन.सी.सी., एन.एस.एस., गर्ल्स स्काउट, ब्वायज स्काउट आदि संगठनों को बनाया गया। युवाओं के कल्याण हेतुयुवा कल्याण निदेशालय एवं नगरों में युवक कल्याण समितियाँ बनायी गई। जो महिलाएँ नौकरी करने के लिए जाती थी उनके लिए अलग से मनोरंजन गृहों का निर्माण किया गया । वृद्धों के लिए दिवा केंद्रों का निर्माण किया गया जिसके माध्यम से वृद्ध एक-दूसरे के साथ मिलकर जीवन-यापन कर सकें, तो इस प्रकार से अनेक कार्य स्वतंत्रता के पश्चात होने लगे। यदि व्यावसायिक एवं औपचारिक रूप से देखा जाए तो समाज समूह कार्य का प्रारंभ बीसवीं शताब्दी में ही हुआ जब बंबई में एक संस्था सोशल सर्विस लीग ने छः सप्ताह का संक्षिप्त पाठ्यक्रम समाज कार्यकर्ताओं के लिए चलायाइन्हें प्रशिक्षण देकर समाज की वर्तमान समस्याओं से लड़ने के लिए सक्षम बनाया। तत्पश्चात 1936 में सर दोराबजी ग्रेजुएट स्कूल ऑफ सोशल वर्क की स्थापना बंबई के एक स्लम क्षेत्र देवनार में की गई। इस संस्था का मुख्य उद्देश्य समाज कार्य को एक व्यावसायिक सेवा प्रदान करने वाले यंत्र के रूप में विकसित करना है जिससे समाज कार्य को एक व्यावसायिक रूप प्रदान किया जा सके और कार्यकर्ताओं में एक व्यावसायिक के गुण को विकसित किया जा सके। समाज कार्य करते समय समाज कार्य की मुख्य प्रणालियों (सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य, सामाजिक समूह कार्य, सामुदायिक संगठन, सामाजिक क्रिया, समाज कल्याण प्रशासन और सामाजिक शोध) को प्रयोग कर समाज में व्यक्ति, समूह और समुदाय की समस्याओं का उचित समाधान किया जा सके। वर्तमान में यह विद्यालय टाटा इन्स्टीट्यूट ऑफ सोशल साइन्स के नाम से जाना जाता है और यहाँ समाज कार्य से संबंधित बीएस.डब्ल्यू., एम.एस.डब्ल्यू., एम.फिल. एवं पीएच.डी. तक की समाज कार्य संबंधी औपचारिक शिक्षा प्रदान की जाती है। इसके साथ स्वंतत्र भारत में संस्थाओं का खुलना प्रारंभ हो गया और1947 में दिल्ली स्कूल ऑफ सोशल वर्क की स्थापना की गई। इसी वर्ष काशी विद्यापीठ में समाज विज्ञान संकाय के अतंर्गत समाज कार्य विभाग खुला जिसमें बीएस.डब्ल्यू., एम.एस.डब्ल्यू., एम.फिल. एवं पीएच.डी. तक संपूर्ण अध्ययन कार्य कराया जाता है। 1949 में लखनऊ विश्वविद्यालय में समाज कार्य में शिक्षा प्रारंभ हुई इसके पश्चात देश के अन्य विष्वविद्यालयों जैसे - आगरा, इंदौर, मद्रास, पटना, कलकत्ता, जबलपुर, महाराष्ट्र (बंबई, नागपुर, वर्धा इत्यादि) जगह पर समाज कार्य पाठ्यक्रमों को प्रारंभ किया गया जिसमें औपचारिक शिक्षा के माध्यम से व्यावसायिक एवं क्षेत्र कार्य आधारित शिक्षा प्रदान की जातीहै। 1960 में यूनिवर्सिटी ग्रान्ट्स कमीशन ने अपनी एक समिति नियुक्त की जिसने अपने प्रतिवेदन में यह संस्तुति की है कि समाज कार्य की शिक्षा अन्य विद्यालयों में पूर्वस्नातक स्तर पर भी होनी चाहिए।

भारत में समाजकार्य के विद्यालयों का विकास मुख्य रूप से स्वतंत्रता के पश्चात हुआ है। 1948 तक केवल टाटा इन्स्टीट्यूट ऑफ सोशल साइन्स में ही समाज कार्य संबंधी शिक्षा दी जाती थी, परंतु 1958 में समाज कार्य के 6 विद्यालय, 1958 में 13, 1961 में 20 और अब लगभग 25 विद्यालय है जिनमें से 17 में केवल समाज कार्य की

शिक्षा दी जाती है और 8 में अन्य प्रकार की संबंधी शिक्षा भी प्रदान की जाती है।(पाण्डेय तेजस्कर, तेज संगीता समाज कार्य लखनऊ, 2010 पेज क्रं. 60)। वर्तमान समय में समाज समूह कार्य के क्षेत्र में अब नयापन आने लगा है और समूह कार्य क्षेत्र में जाकर अभ्यास कार्य कराया जाने लगा है जिससे विद्यार्थियों को समूह कार्य के संबंध में व्यावहारिक ज्ञान भी प्राप्त हो सके। वे समाज में उत्पन्न समस्याओं का समाधान करने में सक्षम बन सके। किंतु अनेक प्रयासों के बावजूद भी भारत में समूह कार्य की अलग से कोई शिक्षा प्रदान नहीं की जाती इसे केवल समाजकार्य की प्रणाली के रूप में ही समझा जाता है। इसमें अलग से कोई विषेष रूप से शिक्षा का प्रावधान नहीं किया गया है। तमाम प्रयासों के बावजूद आज भी इसका व्यावहारिक पक्ष मजबूत नहीं है । आज आवश्यकता है कि समूह कार्य जैसी प्रणालियों का व्यावहारिक पक्ष मजबूत किया जाए और इसे अलग से एक विशेषीकरण के रूप में पढाया जाए जिससे व्यावसायिक समाज कार्य को भी एक मजबूती प्राप्त होगी।

3.5 अन्य क्षेत्रों के साथ समूह कार्य -

समाज कार्य दिन-प्रतिदिन अनेक क्षेत्रों में विस्तारित होते जा रहा हैं, आज समाज का कोई ऐसा भाग नहीं है जहाँ समाज कार्य हस्तक्षेप नहीं कर रहा है। इसके कार्य को देखते हुए अन्य क्षेत्रों में भी इसकी उपयोगिता महसूस की जा रही है। समाजकार्य में समूहकार्य के माध्यम से यह अन्य संस्थाओं के साथ मिलकर व्यक्तियों एवं समूहों की समस्या को ज्ञात कर उनके समाधान का प्रयास करता है। विभिन्न क्षेत्रों में समूह कार्य के माध्यम से निम्न प्रकार के कार्य किए जाते हैं।

3.5.1 विद्यालयों में समूह कार्य- वर्तमान समय में विद्यालय समाज कार्य एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण कार्य समझा जाने लगा है । विद्यालय समाज कार्य के माध्यम से छात्र-छात्राओं में व्यक्तित्व विकास जैसे पक्षों पर विशेष बल दिया जा रहा है। साथ ही साथ जो विद्यार्थी किसी अन्य समस्या से ग्रस्त रहता है समूह कार्यकर्ता के माध्यम से शिक्षकों एवं अभिभावकों के साथ मिलकर इसे हल करने का प्रयास किया जाता है। आज के समय में विद्यार्थियों का सामंजस्य भी एक प्रमुख समस्या बनकर सामने आ रही है। विद्यार्थी कक्षा में, सहपाठियों के साथ एवं और तो और अपने परिवार में सामंजस्य स्थापित नहीं कर पाता है जिससे वह गलत रास्तों को ग्रहण कर लेता है, जिससे अनेक बाल-अपराध जैसी समस्याएँ दिनों-दिन बढती जा रही है। समूह कार्यकर्ता ऐसे बच्चों के सामंजस्य हेतु अनेक प्रकार के रचनात्मक कार्यक्रमों को इस प्रकार से आयोजित करता है कि समूह गतिविधियों के माध्यम से समूह लक्ष्य तथा इसी तरह से व्यक्तिगत लक्ष्य प्राप्त करने के लिए एक साथ मिलकर कार्य करें। समूह कार्य का मुख्य उद्देश्यछात्र-छात्राओं को अपने स्वयं के कार्यो से सीखना है इन समस्त कार्यों हेतु समूह कार्यकर्ता विद्यालयी कार्य के माध्यम से उन्हें समाज में सामंजस्य स्थापित करने हेतु सहायता करता है।

3.5.2 चिकित्सा के क्षेत्र में समूह कार्य - चिकित्सीय समाज कार्य आधुनिक समय में सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य माना जाने लगा है। विभिन्न अस्पतालों के माध्यम से यह कार्य विभिन प्रकार की प्रणाली के माध्यम से कार्यकर्ता द्वारा दिया जाने लगा है। मानव समाज एक परिवर्तनशील समाज है। इसमें निरंतर परिवर्तन होता रहता है। बढ़ते औद्योगीकरण, नगरीकरण एवं संयुक्त परिवार के पतन ने दिनोंदिन कई प्रकार की आर्थिक सामाजिक एवं मनोसामाजिक समस्याओं को जन्म दिया है। परिणाम स्वरूप इन समस्याओं के निवारण एवं निराकरण हेतु चिकित्सीय समाज कार्य की महत्त्वपूर्ण उपयोगिता को देखा जा रहा है। प्रोफेसर राजाराम शास्त्री ने चिकित्सीय समाज कार्य को परिभाषित करते हुए कहा था कि चिकित्सीय समाज कार्य का मुख्य उद्देश्य चिकित्सीय सहूलियतों का उपयोग रोगियों के लिए अधिकाधिक फलप्रद एवं सरल बनाने तथा चिकित्सा में बाधक मनोसामाजिक दशाओं का निराकरण करना है।

चिकित्सीय समाज कार्य के इतिहास पर यदि नज़र डाला जाए तो इसकी शुरूआत व्यवस्थित रूप से अमेरिका के मैसाचुसेट जनरल अस्पताल में हुई। डॉ. रिचर्ड सी केवट पहले व्यक्ति थे जिन्होंने यह स्वीकार किया कि रोगो का सामाजिक ज्ञान अत्यंत आवश्यक है, क्योंकि इसकी सामाजिक स्थिति का प्रभाव रोगी पर पडता है। 1920 के दशक में समाज कार्यकर्ताओं की चिकित्सा के क्षेत्र में भर्ती बढ़ती हुई नजर आई है, जिसके माध्यम से अपाहिज एवं आवश्यकता ग्रस्त व्यक्ति के उपचार हेतु कार्यकर्ताओं को नियुक्त किया गयाभारत में चिकित्सीय समाज कार्य के इतिहास पर यदि नजर डाली जाए तो 1946 में सर्वप्रथम चिकित्सा समाज कार्यकर्ता की नियुक्ति बंबई के जेजे. अस्पताल में हुई। समूह कार्यकर्ता अपनी निपुणताओं से संभावित रोगियों के लिए समूह कार्य तकनीकों का प्रयोग मनोचिकित्सीय प्रकार से करता है एवं उनके परिवारों को भावनात्मक सहयोग उपलब्ध करानेके लिए मदद करता है। समूह कार्यकर्ता द्वारा इस प्रकार का प्रयास किया जाता है कि सेवार्थी को किस प्रकार की चिकित्सीय सुविधा उपलब्ध कराई जाए जिससे वह अपने परिवार में सामंजस्य स्थापित कर पाए। समूह कार्य के माध्यम से रोगी और उनके परिवारों के सदस्यों को सहयोगात्मक चिकित्सा उपलब्ध कराई जाती है। समूह कार्य दुश्चिता, तनाव एवं एकाकीपन जैसी स्थिति को दूर करने में सहायता करता है। समूह कार्य प्रक्रिया, सहज प्रक्रिया में तथा चिकित्सा प्रक्रिया में उनको भागीदारी के योग्य बनाते हैं। आज के समय में यदि देखा जाए तो राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन (एन.आर.एच.एम) जैसे सरकारी कार्यक्रमों में सामाजिक कार्यकर्ताओं की नियुक्ति होने लगी है। जिसमें बच्चों एवं माताओं के पोषाहार से लेकर उनके संपूर्ण रोगों का अध्ययन किया जा रहा है। वर्तमान में चिकित्सीय समूह कार्य का क्षेत्र अत्यधिक बढ़ताजा रहा है और यह सरकारी एवं निजी अस्पतालमें देखा जा सकता है।

3.5.3 नशाबंदी केंद्रों में समूह कार्य - नशा करना या व्यसन करना आज के समाज में एक चुनौतीपूर्ण गंभीर सामाजिक समस्या बनती जा रही है जिसने समाज के प्रत्येक वर्ग को प्रभावित किया है चाहे वह पुरूष होया महिला, वृद्व हो या जवान या फिर बच्चे और उच्च, निम्न या मध्यम वर्ग। प्रत्येक समाज के वर्ग को इस नशाखोरी जैसी भयावह समस्या ने अपने चंगुल में कर लिया है समूह कार्यकर्ताओं के माध्यम से इसे दूर करने का प्रयास किया जा सकता है जिससे व्यक्ति समाज में कुशल जीवनयापन कर सके। समूह कार्यकर्ता द्वारा नियंत्रण, रोकथाम और उपचार के माध्यम से इस कार्य को किया जाता है। यदि हम एक उदाहरण के रूप में समझें तो यदि समूह कार्यकर्ता एक शराबी व्यक्ति का अध्ययन करेगा तो सर्वप्रथम वह व्यक्ति के शराब पीने के कार्य-कारणों का अध्ययन व्यक्ति से जुडे समस्त पहलुओं से करेगा। जिसमें व्यक्ति के परिवार, आस-पडो स एवं मित्रगणों कीमहम भूमिका होगी। तश्चपात निदान की योजना तैयार करेगा और फिर उपचार के माध्यम से शराब को नियंत्रित करने का प्रयास करेगा। इस प्रकार कार्यकर्ता द्वारा नशाखोरी जैसी भयानक समस्या से व्यक्ति को निजात दिलायी जा सकती है जिसने संपूर्ण समाज को प्रभावित किया है।

3.5.4 युवा के क्षेत्र में समूह कार्य - कहते है युवा देश का निर्माता होता है और आज भारत की लगभग आधी आबादी युवा है। युवा को यदि उलट दिया जाए तो वह वायु बन जाता है। युवा शक्ति, ऊर्जा, क्षमता, कुशलता एवं परिश्रम से भरपूर होता और यदि उन्हें उचित मार्गदर्शन दिया जाए तो यह समाज के निर्माण में एक आवश्यक रूप में नजर आते हैं। किंतु वर्तमान समय में युवाओं को भी अनेक समस्याओं जैसे बेरोजगारी,नशाखोरी एवं अपराध जैसी कुव्यवस्थाओं नेजकड़ लिया है जिससे उनका एवं राष्ट्र का विकास रूका हुआ नजर आ रहा है। युवाओं की भागीदारी की ओर यदि नजर डालें तो राजनैतिक दल से लेकर हर कोई युवाओं के महत्त्व को स्वीकार कर रहा है एवं विद्यार्थी नेतृत्व को महत्त्व दे रहे हैं। सभी विश्वविद्यालयों और कालेजों में विद्यार्थी विंग स्थापित किए गए थे। ये समूह संगठित प्रयासों के माध्यम से विद्यार्थी समुदाय की सामान्य आवश्यकताओं और समस्याओं पर ध्यान केंद्रित कर उनका

समाधान निकालते हैं। भारत सरकार ने 1988 में निर्मित राष्ट्रीय युवा नीति को वर्ष 2003 में और अधिक व्यापक व सशक्त रूप प्रदान किया है जिससे युवाओं का सर्वांगीण विकास किया जाए। अनेक संस्थाओं जैसे युवा समाज, एन.सी.सी., ग्रामीण युवा क्लबों की स्थापना कराई गई है। कुछ गैर-सरकारी युवा और विद्यार्थी संगठनों जैसे एमसी.ए. वाई, डब्ल्यू.सी.ए., स्काउट्स और गाइड्स इत्यादि का उदगम हुआ है। नेहरू युवा केंद्र की स्थापना 1972 में हुई। यह छठी पंचवर्षीय योजना का एक भाग था जिसका भारत में समूह कार्य के ऐतिहासिक विकास के संदर्भ में वर्णन किया जा सकता है। इस केंद्र के कारण ग्रामीण क्षेत्रों के युवाओं को प्रशिक्षण देकर उनमें सामूहिक भावना को उत्पन्न कर सामुदाय आधारित कार्यों को करना एव युवा नेतृत्व का निर्माण करना था जो अत्यंत ही प्रभावी साबित हुआ। 1969 में गैर-सरकारी मंच पर विश्व युवक केंद्र का निर्माण कर युवा संगठन तथा युवा सेवाओं को विकसित करने की आवश्यकता एवं उनमें जागरूकता लाने के लिए प्रशिक्षण देकर कार्यकर्ता तैयार करने पर बल दिया गया।

3.5.6 महिला एवं बाल-विकास के क्षेत्र में समूह कार्य - समाज कार्य के क्षेत्र में एक और महत्त्वपूर्ण कार्य महिला एवं बाल विकास का है जो आज के दौर में समूह कार्यकर्ताओं द्वारा आवश्यक रूप से किया जा रहा है। प्राचीन काल से ही महिलाओं को अधिक कमजोर माना जाता रहा है। उनके साथ हमेशा से ही भेदभाव किया जाती रहा है। हमेशा ही लिंगभेद होते आ रहा है। जिस कारण से वे हमेशा पिछड़ी रही। जबकि यह सर्वविदित है कि महिलाओं की भागीदारी के बिना राष्ट्र व समाज का विकास असंभव है। समूह कार्य के माध्यम से आवश्यकता ग्रस्त महिलाओं को शिक्षण प्रशिक्षण देकर उन्हें आत्मनिर्भर बनाने का कार्य किया जाता है। यदि कहें तो महिलाओं के सर्वांगीण विकास हेतु सरकार द्वारा भी कुछ पहल की जा रही है जिनमें प्रमुख रूप से वर्ष 1990 को बालिका वर्ष के रूप में मनाना, वर्ष 2001 को महिला वर्ष के रूप में मनाना, यू.एन.ओ. द्वारा 1975 को अंतरराष्ट्रीय महिला वर्ष और 1975-76 को अंतरराष्ट्रीय महिला दशक के रूप में घोषित करना और हमारे देश में 8 मार्च को महिला दिवस के रूप में मनाना शामिल है। भारत सरकार द्वारा प्रत्येक पंचवर्षीय योजना में भी महिलाओं को लेकर अनेक कार्यक्रमों को संचालित किया जा रहा है। सरकार द्वारा मुख्य रूप से निम्नलिखित प्रमुख योजनाएँ चलाई जा रही है जिनमें प्रमुख हैं –

डवाकारा योजना 1982 में एकीकृत ग्राम्य विकास योजना की सहायक योजना के रूप में ग्रामीण क्षेत्रों की महिलाओं एवं बच्चों के लिए प्रारंभ की गई। महिला विकास निगम (1986-87) में महिला विकास निगम को इस उद्देश्य के साथ बनाया गया कि महिलाओं में अधिक रोजगार के साधन प्रदान किए जाऐ। महिलाओं को स्वरोजगार हेतु वित्तीय सहायता-महिलाओं में उद्यम कोबढ़ावा देने के लिए निगम अपने फंडों में से 3 प्रतिशत से 7 प्रतिशत ब्याज दर पर ऋण देता है। इसके अतिरिक्त विशेष केंद्रीय सहायता के अधीन अनुसूचित जाति की पीले कार्ड धारक महिलाओं को स्वीकृत ऋण का 25 से 35 प्रतिशत तक की पूँजी में सब्सिडी दी जाती है। महिला समाख्या कार्यक्रम के (1988) के माध्यम से समाज एवं अर्थव्यवस्था में महिलाओं द्वारा अपने योगदान की उपयोगिता पहचान सकने में उनकी सहायता करना एवं वर्तमान शिक्षा प्रणाली में नए जीवन का संचार करना एवं यह विश्वास दिलाना कि महिलाएँ स्वयं अपनी एवं अपने बच्चों की देखभालकर सकती है। इस प्रकार सरकार द्वारा अनेक कार्यक्रमों को महिलाओं के विकास हेतु चलाया जा रहा है जिसमें समूह कार्यकर्ता समूह कार्य के माध्यम से इन कार्यक्रमों को संचालित करने में सहायता करता है। महिलाओं को ज्यादा से ज्यादा सहभागी होने के लिए प्रेरित करता है। दूसरी ओर बालकों के विकास हेतु समूह कार्य को समझें तो भारत सरकार द्वारा वर्ष 1974 में बाल-नीति का निर्माण किया गया जिसमें अनेक प्रावधान बच्चों के लिए किए गए और साथ-ही-साथ प्रत्येक पंचवर्षीय योजना में भी बच्चों के कल्याण हेतु कार्यक्रमों को सुनिश्चित किया गया है। विभिन्न संचालित योजनाओं जैसे महिला एवं बाल विकास तंत्रालय की स्थापना 1985 में की जाता इन दोनों के सर्वांगीण विकास पर जोर दिया जा रहा है। समेकित बाल विकास सेवाएँ जिसे आईसीडीसी भी

कहा जाता है को 2 अक्टूबर 1975 से इस उद्देश्य के साथ बनाया गया कि 0-6 वर्ष के बच्चों के पोशाहार और स्वास्थ्य में सुधार लाया जाए। धारा 21 ए में भी 6 से 14 वर्ष के बच्चों को निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा का प्रावधान किया गया है। 1995 से मध्यान्ह भोजन को प्रारंभ किया गया है। इन सभी कार्यक्रमों में गैस्सरकारी संगठन और समूह कार्यकर्ता अपने स्तर से कार्यक्रमों को क्रियान्वित करने में सहायता करते हैं और समूह प्रयास से यह तय करते हैं कि कैसे इन योजनाओं को सफल बनाया जाए जिससे कि महिला एवं बाल विकास के क्षेत्र में भी समूह कार्यकर्ता अपनी अहम भागीदारी को सुनिश्चित कर सकें।

3.5.7 वृद्धों के क्षेत्र में समूह कार्य –

भारतीय संविधान के अनुच्छेद41 में वर्णित राज्य के नीति निर्देशक सिद्धांतों के अंतर्गत देश के विभिन्न राज्य सरकारों तथा संघीय क्षेत्रों ने वृद्ध व्यक्तियों की सहायता हेतु वृद्धावस्थापेंशन योजना को प्रारंभ किया है। सर्वप्रथम इस योजना को उत्तर प्रदेश सरकार ने वर्ष 1957 में प्रारंभ किया। इसके अलावा हैल्पेज न्यासकोष, हैल्पेज इंडिया(1978), एज-केयर-इंडिया (1980) एवं दिवा केंद्र इत्यादि को स्थापित कर वृद्धों की समस्याओं को दूर करने का प्रयास किया जा रहा है। जिसमें समूह कार्यकर्ता वृद्धों के कार्यो को सृजनात्मक कार्यक्रमों के रूप में बदलने का प्रयास करता है। उनमें उत्पन्न सांवेगिक समस्याओं कोदूर करने का भी प्रयास करता है परिवार में समायोजन स्थापित करने में सहायता करता है और संगठित मनोरंजन के साधन को उपलब्ध कराने में सहायता करता है।

3.5.8 विशेष योग्यता रखने वाले व्यक्तियों के क्षेत्र में समूह कार्य –

विशेष योग्यता रखने वाले व्यक्ति, जिन्हें पूर्व में बाधित व्यक्ति कहा जाता था, ऐसे व्यक्ति जो अपनी व्यक्तिगत, शारीरिक, मानसिक एवं सामाजिक सीमाओं एवं परिस्थितियों के कारण अपना जीवन सामान्य रूप से बिताने में असमर्थ हैं, को विशेष योग्यता रखने वाले व्यक्ति कहा जाता है । ऐसे व्यक्तियों को भारत सरकार के समाज कल्याण विभाग ने 4 भागों में बाँटा है-प्रथम शारीरिक दृष्टि से विकलांग- ऐसे व्यक्ति जिनकी शारीरिक क्षमता उनके किसी भी शारीरिक अंग द्वारा ह्रास विकृति या किसी अन्य कारण से खराब हो गयी है । दूसरेनेत्रहीन, तीसरे मूक-बधिर और चौथे मानसिक दृष्टि से मंदित/ कुष्ठ रोगी। इन सभी व्यक्तियों के साथ सामाजिक कार्यकर्ता समस्याओं को समझकर उनका उपचार करता है तथा उसे संस्था में समुदाय में उपलब्ध साधनों के उपयोग में सहायता करता है साथ ही वह परिवार के सदस्यों को सहयोग एवं मनोसामाजिक समस्याओं का समाधान करने में सहयोग प्रदान करता है । विशेष योग्यता रखने वाले व्यक्तियों के लिए भारत सरकार द्वारा विभिन्न क्षेत्रों में कुछ महत्त्वपूर्ण संस्थाओं को बनाया गया है जिसमें इन व्यक्तियों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर इनका निर्माण किया गया है ।

संस्थान	मंत्रालय	स्थान	वर्ष
राष्ट्रीय दृष्टि विकलांग संस्थान (NIVH)	केंद्रीय शिक्षा मंत्रालय के अधीन	देहरादून	1950
राष्ट्रीय अस्थि विकलांग संस्थान (NIOH)	कल्याण मंत्रालय द्वारा स्थापित	कलकत्ता	1978
अली यावर जंग राष्ट्रीय श्रवण विकलांग संस्थान	कल्याण मंत्रालय के अधीन	बंबई	9 अगस्त 1983

(AYJNIHN)			
राष्ट्रीय मानसिक विकलांग संस्थान (NIMH)	कल्याण मंत्रालय के अधीन	स्वायत्त संस्था	1984

उपर्युक्त क्षेत्रों के साथ मिलकर समूह कार्यकर्ता द्वारा समाज की समस्याओं को दूर करने का प्रयास किया जाता है जिसमें व्यक्ति समाज में अपना स्थान सुचारू रूप से कर पायें । इन क्षेत्रों के अतिरिक्त कुछ अन्य समुदाय आधारित क्षेत्रों में भी समूह कार्यकर्ता, कार्य करता है जिससे समुदाय आधारित क्षेत्रों की समस्या का समाधान किया जा सके।

3.5.9 गैर-सरकारी संगठनों द्वारा समूह कार्य–

वर्तमान प्रकाशित आँकड़ों के आधार पर भारत में गैर-सरकारी संगठनों की संख्या लगभग 33 लाख है जिसमें से 40 हजार संगठनों को विदेशी फंड (एफ.सी.आर.ए.) प्राप्त है। इन संख्याओं को देखकर अंदाजा लगाया जा सकता है कि भारत में गैर-सरकारी संगठनों की कितनी उपयोगिता है। गैर-सरकारी संगठन संस्थानीकरण की प्रक्रिया और समुदायों के माध्यम से विशेष लक्ष्य वाले समूहों को सेवा उपलब्ध कराने में हमेशा से ही प्रयत्नशील रहे हैं एवं उनके कार्यो को भी सराहा गया है। इनके माध्यम से महिलाएँ, बच्चे वृद्ध, मानसिक या शारीरिक विकलांग जैसे लोगों को विभिन्न माध्यमों से सेवाएँ उपलब्ध कराई जाती हैं । इन सभी केंद्रों में, समाज कार्यकर्ता कौशल विकसित करना, आत्मविश्वास पैदा करना, और आत्मप्रतिष्ठा, प्रोत्साहन, उपलब्धि का लक्ष्य, जागरूकता निर्माण करना इत्यादि कार्य करता है।

3.5.10 आंगनवाड़ी केंद्रों के साथ समूह कार्य- 1975 में बाल-नीति के बनने के बाद से ही आगंनवाड़ी कार्यक्रमों को चलाया जा रहा है। यह कार्यक्रम एकीक्रत बाल विकास सेवाएँ (Integrated Child Development Services .ICDS) का ही एक मुख्य भाग है। इसके माध्यम से ग्रामीण समुदाय में बच्चों और महिलाओं की शैक्षिक और स्वास्थ्य संबंधीआवश्यकताओं को पूरा किया जाता है। आंगनवाड़ी में बच्चोंबच्चियों को प्राथमिक शिक्षा और भोजन उपलब्ध कराया जाता है। आंगनवाड़ी के कार्यकर्ता द्वारा स्थानीय क्षेत्र की महिलाओं के समूहों को स्वास्थ्य शिक्षा उपलब्ध कराई जाती है। ये गर्भवती महिलाओं और सात वर्ष की आयु तक के बच्चोंबच्चियों के लिए स्वास्थ्य और पोषण पर ध्यान देते हैं। स्थानीय क्षेत्र में समूह कार्यकर्ता द्वारा किशोर बालिकाओं के लिए जागरूक कार्यक्रमों और विकासात्मक कार्यक्रमों का आयोजन किया जाता है। कार्यकर्ता इस क्षेत्र में अनेक रचनात्मक कार्यक्रम के द्वारा आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं के साथ मिलकर बच्चों एवं महिलाओं के क्षेत्र में कार्य करता है।

3.5.11 स्व-सहायता समूह एवं समूह कार्यकर्ता–

स्व-सहायता समूह (Self Help Group) भारत सरकार द्वारा स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना के अंतर्गत 1 अप्रैल 1999 से प्रारंभ किया गया है। इस योजना के अंतर्गत गरीब परिवारों को स्वरोजगार की सहायता देना है। ऐसे ग्रामीण जो गरीबी रेखा के नीचे जीवन-यापन करते हैं तथा जिनकी आपस की आय और गतिविधियाँ एक हो स्व-सहायता समूह के अंतर्गत आते हैं। इस समूह के सदस्य अपनी दैनिक आय अथवा मासिक आय से कुछ बचत कर समूह के पास जमा करते हैं तथा समूह आवश्यकता पड़ने पर जरूरतमंद सदस्य को ऋण देती है, जिससे सदस्य अपनी आवश्यकता पूरी कर ऋण राशि आसान किश्तों में वापस जमा कर सकें। ब्याज से आय समिति के कार्यकलापों में

खर्च किया जाता है। स्व-सहायता समूह में 10 से 20 सदस्य हो सकते हैं जो अपनी गतिविधियों के अनूसार समूह का नाम रख सकते हैं। स्व-सहायता समूह के माध्यम से लोग अपनी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति करने मेंसक्षम होते है। स्व-सहायता समूह के लिए मुख्य रूप से कुछ महत्त्वपूर्ण बातों को ध्यान में रखने की आवश्यकता होती है, जैसे -

1. स्व-सहायता समूह गठन के बाद नियमित बैठक आवश्यक है।
2. समूह के सदस्यों को बैठक में भाग लेना आवश्यक है।
3. बैठक में समूह की गतिविधियों, समूह को सुदृढ़ करने समूह की आय बढ़ाने, सदस्यों को ऋण की आवश्यकता, गाँव की समस्या, बच्चों/बच्चियों को पढ़ने/बढ़ने पर चर्चा आदि पर विचार करना चाहिए।
4. बैठक में की गई चर्चा का ब्यौरा कार्यवाही रजिस्टर में दर्ज करना आवश्यकतानुसार ऋण दिया जा सके।
5. समिति से प्राप्त ऋण का सही उपयोग करें -जैसे अपने व्यवसाय में लगाएँ, बच्चों/बच्चियों के पढ़ने-बढ़ने पर खर्च करें अथवा अपने अन्य महत्त्वपूर्ण कार्यो में लगावें।
6. समिति से प्राप्त ऋण समिति की शर्तों के अनुसार समय के अंदर दें।
7. समूह के छः माह सफल संचालन के उपरांत समिति सदस्यअथवा अध्यक्ष अपने ग्राम के ग्राम सहायक, विस्तार अधिकारी अथवा विकास खण्ड अधिकारी से संपर्क कर समिति के चयनित व्यवसाय के ऋण के लिए संपर्क करें।

तो इस प्रकार उपर्युक्त स्व-सहायता समूह की गतिविधियों को संचालित किया जा सकता है। स्व-सहायता समूह, समूह कार्य प्रणाली का एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण उदाहरण है जिसके माध्यम से संपूर्ण विधि को संचालित किया जा सकता है। स्व सहायता समूह के कुछ महत्त्वपूर्ण अभिलेख भी होते हैं जिनके माध्यम से इसका संचालन किया जाता है जिनमें मुख्य रूप से रोकड़ पंजी का संधारण, समूह की रोकड़ पूँजी, सदस्य खाता, सदस्य का व्यक्तिगत पास बुक, समूह की कार्यवाही, पूँजी, ग्राम सभा में अनुमोदन, इत्यादि होते हैं। इस प्रकार समूह कार्य में स्व-सहायता समूह गतिविधि एक महत्त्वपूर्ण कार्य विधि हो सकती है। जिस प्रकार स्व-सहायता समूह में कार्यो को संचालित किया जाता है उसी प्रकार समूह कार्यो को भी एक निश्चित लक्ष्य प्राप्ति के लिए किया जाता है।

3.6 सारांश

आदिकाल से ही संपूर्ण विश्वमें एक-दूसरे की सहायता करने की परंपरा रही है चाहे उसका माध्यम याविधि कोई भी क्यों न हो। समाजकार्य का आज स्वरूप बदलते जा रहा है और इसमें दिन-प्रतिदिन नए-नए आयामों के साथ कार्यविधियों में परिर्वतन देखने को मिल रहा है। इनमें से समूह कार्य भी एक प्रणाली के रूप में विकसित हुआ है। जिसमें समाज कार्य के क्षेत्र में समूह गतिविधियों के माध्यम से व्यक्तियों की समस्या समाधान हेतु प्रयास किए हैं। इस विधि द्वारा सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और मनोवैज्ञानिक संबंधी समस्याओं में व्यक्तियों को मनोरंजन प्रदान कर समस्याओं का निराकरण करके व्यक्ति का सर्वांगींण विकास किया जाता है। समूहकार्य हेतु इंग्लैड, अमेरिका एवं भारत में अनेक प्रयास किए गए है। जिसके सर्वांगीण आज समूह कार्य की विकसित रूप हमारे सामने दिखाई पड़ रहा है। व्यासायिक रूप से इसका संपूर्ण विकास अभी शेष है जो आज के व्यावसायिक समाज कार्यकर्ताओं के लिए चुनौती है।

3.7 बोध प्रश्न

प्रश्न 01. भारत में समूह कार्य के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य पर प्रकाश डालिए।

प्रश्न 02. प्राचीन काल में समूह कार्य का रूप एवं विकास क्रम को विस्तार से समझाएँ।

प्रश्न 03. स्वतंत्रता के पूर्व समूह कार्य के क्षेत्र में किए गए कार्यों का वर्णन कीजिए।

प्रश्न 04. स्वतंत्रता पश्चात अर्थात आधुनिक काल समूह कार्य का विकासात्मक एवं किए गए कार्यों का वर्णन कीजिए।

प्रश्न 05. भारत में समूह कार्य शिक्षा के विकास पर लेख तैयार कीजिए।

प्रश्न 06. भारत में समूह कार्य के क्षेत्र में आने वाली प्रमुख चुनौतियों की चर्चा कीजिए।

प्रश्न 07. अन्य संस्थाओं एवं समुदायों के साथ समूह कार्य की प्रक्रिया को समझाइएँ।

3.8 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

1. संकलन विकास योजना पर आधारित मार्गदर्शिका 2010।
2. झा.जे.के. (2001). *इनसाइक्लोपीडिया ऑफ सोशल वर्क*. नई दिल्ली :अनमोल पब्लिकेशन्स ।
3. डीवे, जे एवं थिंक हाऊवी(1933). *ए रीस्टेटमैंट ऑफ द रिलेषन ऑफ रिफलैक्टिव थिंकिंग टुद एजूकेटिव प्रासेस* (संषोधित संस्करण). बॉ स्टोन डी.सी. हीथ
4. इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय (2010). *सामाजिक समूह कार्य:समूहों के साथ कार्य करना*.नई दिल्ली: समाज कार्य विद्यापीठ ।
5. सिंह, ए.एन. एवं सिंह, ए.पी. (2008). *समाज कार्य. लखनऊ*: हिंदी संस्थान।
6. मिश्रा, प्रयागदीन (2008). *सामाजिक सामूहिक कार्य*. लखनऊ : हिंदी संस्थान ।
7. तेज संगीता एवं पाण्डेय तेजस्कर(2010*). समाज कार्य*. लखनऊ : जुबली एच फान्डेशन।
8. सिंह, ए. एन., सिंह, नीरजा, संजय मिश्रा, सुषमा (2012). *सामूहिक कार्य*. हल्दानी : उत्तरायन प्रकाशन ।

इकाई - 4 समाज कार्य की प्रणाली के रूप में सामाजिक समूह

इकाई रूपरेखा

4.0 उद्देश्य
4.1 प्रस्तावना
4.2 प्रणाली से आशय
4.3 समाज कार्य की अन्य प्रणालियों के साथ समूह कार्य का अंतः संबंध।
4.3.1 सामाजिक वैयक्तिक कार्य प्रणाली के साथ संबंध
4.3.2 सामाजिक समूह कार्य प्रणाली के साथ संबंध
4.3.3 सामुदायिक संगठन कार्य प्रणाली के साथ संबंध
4.3.4 समाज कल्याण प्रशासन प्रणाली के साथ संबंध
4.3.5 सामाजिक शोध प्रणाली के साथ संबंध
4.3.6 सामाजिक क्रिया प्रणाली के साथ संबंध
4.4 सारांश
4.5 बोध प्रश्न
4.6 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

4.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात विद्यार्थी निम्नलिखित तथ्यों को स्पष्ट रूप से वर्णित कर सकेगें -

1. समाज कार्य की अन्य प्रणालियों के साथ समूह कार्य का किस प्रकार अंत: संबंधहै ?
2. सामाजिक समूह कार्य का वैयक्तिक सेवा कार्य के साथ किस प्रकार का अंत संबंध पाया जाता है?
3. सामाजिक समूह कार्य किस प्रकार एक प्रणाली के रूप में कार्य करता है?
4. सामाजिक समूह कार्य एवं सामुदायिक संगठन प्रणाली के साथ अंतसंबंधको रेखांकित करसकेंगें।
5. समाज कल्याण प्रणाली के साथ यह किस प्रकार कार्य करता है ?
6. समाजिक शोध कार्य में इसकी उपयोगिता किस प्रकार की है ?
7. सामाजिक क्रिया और सामाजिक समूह कार्य के अंत संबंधको जाना जा सकता है।

4.1 प्रस्तावना

सामाजिक समूह कार्य को वर्तमान समय में समाज कार्यकी मुख्यतः दो प्रणालियों (प्राथमिक एवं द्वितीयक) में से प्राथमिक प्रणाली के रूप में जाना जाता है। समाज कार्य की यह प्रणाली वास्तविक रूप से वर्तमान समय में समाज की भिन्न-भिन्न समस्याओं के निराकरण हेतु विभिन्न प्रणालियों के साथ मिलकर कार्य कर रही है। यह प्राली मुख्य रूप से विभिन्न प्रकार के समूहों के साथ मिलकर उनकी समस्या समाधान का प्रयास कर रही है जो स्फटत: प्रतीत होता है कि यह किस प्रकार समाज कार्य का एक मजबूत हिस्सा बनकर हमारे सामने प्रस्तुत हो रही है। इस इकाई के माध्यम से आप जान सकेंगे कि किस प्रकार सामाजिक समूह कार्य अन्य प्रणालियों के साथ कार्य करता है और समस्या समाधान हेतु किस प्रकार से सहायक के रूप में कार्य करता है ।

4.2 प्रणाली से आशय

किसी भी कार्य को सुव्यवस्थित एवं सुचारू रूप से कार्य करने की पद्धति को प्रणाली कहा जा सकता है। यह कौशल एवं तकनीकों का संग्रह है। प्रत्येक कार्य को करने की एक विशिष्टप्रणाली होती है जिससे उस कार्य के लक्ष्य

को आसानी से प्राप्त किया जा सके। प्रत्येक कार्य एवं व्यक्ति की अपनी विशिष्ट प्रणाली होती है जिसका उपयोग करके वह अपना संपूर्ण कार्य करता है। प्रणाली की विशेषताओं को निम्नानुसार समझा जा सकता है

1. यह किसी भी कार्य को करने का एक सुव्यस्थित और सुनियोजित तरीका है।
2. यह व्यावसायिक कार्य की एक मुख्य पद्धति है जो सभी को सर्वमान्य होती है।
3. किसी भी प्रणाली का उपयोग किसी भी कार्य को करने के लिये सूझ-बूझ के साथ किया जाता है।
4. प्रणालियों का जन्म अनेक अनुसंधानों के पश्चात होता है इसलिए इसे अनेको विद्वानों द्वारा स्वीकारा जाता है।
5. प्रणाली के माध्यम से वैयक्तिक, समूह व समाज की सहायता की जाती है।

अतः उक्त विशेषताओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि प्रणालियों की सहायता से किसी भी कार्य को सरलता के साथ संपन्न किया जा सकता है। समाज कार्य एक व्यवसाय आधारित कार्य है जो एक वैज्ञानिक पद्धति के साथ संपन्न किया जाता है। इसी संदर्भ में मिलरसन ने व्यवसाय की निम्नलिखित विशेषताओं का वर्णन किया है

1. सैद्धांतिक ज्ञान पर आधारित निपुणताएँ
2. प्रशिक्षण तथा वृत्ति का प्रावधान।
3. सदस्यों की सक्षमता का परीक्षण।
4. संगठन
5. व्यावसायिक आचरण संहिता एवं
6. परोपकारी सेवा

इस प्रकार से मिलर द्वारा दी गई विशेषताओं से यह कहा जा सकता है कि समूह कार्य एकव्यवसाय आधारित कार्य है, जो एक समाज कार्य की प्रणाली के रूप में कार्य करती है।

समाज कार्य में कार्यों को करने की कुछ प्रणालियाँ होती हैं जिनके माध्यम से कार्यों को क्रमबद्ध एवं वैज्ञानिक रूप से किया जाता है इसमें कुछ निपुणताओं एवं यंत्रों के साथ समाज कार्य की संपूर्ण प्रक्रिया को किया जाता है। आगे आप यह जानने का प्रयास करेंगे कि समाज कार्य की कौन-कौन सी प्रणालियाँ होती हैं और यह किस प्रकार अंतर्संबद्धता के साथ कार्यों को करती है।

4.3 समाज कार्य की अन्य प्रणालियों के साथ समूह कार्य का अंतर्संबद्ध

समाज कार्य के संबंध में ब्राउन ने कुछ उद्देश्योंको स्पष्ट करते हुए कहा था कि -

1. समाज कार्य उन व्यक्तियों को भौतिक सहायता प्रदान करता है जो गंभीर आर्थिक संकट में हों या पराश्रित हों।
2. व्यक्तियों को अपने आर्थिक एवं सामाजिक पर्यावरण से सामाजिक समायोजन स्थापित करने में सहायता देना।
3. सेवार्थियों की मानसिक समस्याओं के समाधान में सहायता देना।
4. आर्थिक दृष्टि से कमजोर वर्गो के लिए मनोविद, सांस्कृतिक कार्यक्रम, अच्छे अवसर, स्वास्थ्य, शिक्षा एवं अन्य सुविधाओं को उपलब्ध कराना भी एक अच्छे जीवन स्तर के लिए अनिवार्य होता है। इसी तारतम्य में फ्रीडलेण्डर ने समाज कार्य के उद्देश्यों को स्पष्ट करते हुए कहा था कि, व्यक्तियों के कल्याण और समाज कल्याण में मेल-मिलाप करना है। समाज कार्य का उद्देश्य व्यक्तियों को सामाजिक दशाओं के प्रति जागरूक कराना, इनको वास्तविकता का सामना करने और इन सामाजिक दशाओं में सुधार करने के प्रयासों में सहायता करना है। समाज कार्य

मुख्य रूप से 6 प्रणालियों के साथ कार्य करता है जिसमें प्राथमिक एवं द्वितीयक प्रणाली के रूप में इसे विभक्त किया जाता है। प्राथमिक प्रणाली के अंर्तगत सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य, सामाजिक समूह कार्य, सामुदायिक संगठन को लिया जाता है एवं द्वितीयक प्रणाली में समाज कल्याण प्रशासन, सामाजिक अनुसंधान, सामाजिक क्रिया शामिल होती है। द्वितीयक प्रणालियों को सहायक प्रणाली के रूप में भी जाना जाता है क्योंकि ये प्रणालियाँ मुख्य रूप से अप्रत्यक्ष रूप से कार्य करती है और प्राथमिक प्रणालियों को सहायता करने का कार्य करती है। उक्त चित्र क्रं.01 के माध्यम से समाज कार्य की प्राथमिक प्रणालियों एवं चित्र क्रं.002 के माध्यम से द्वितीयक या सहायक प्रणालियों को समझा जा सकता है।

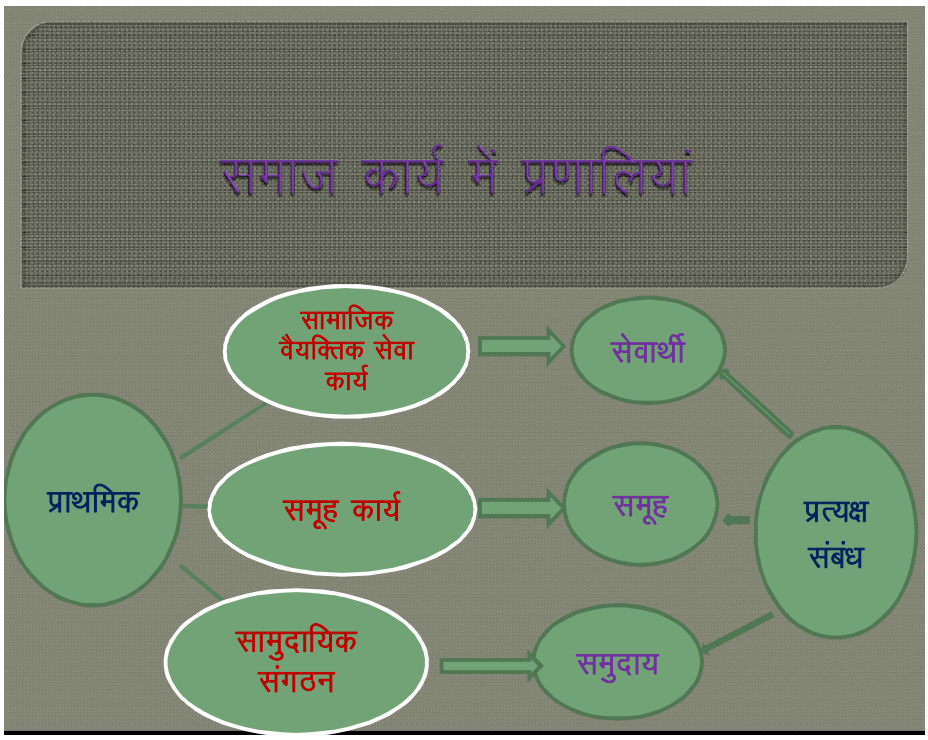

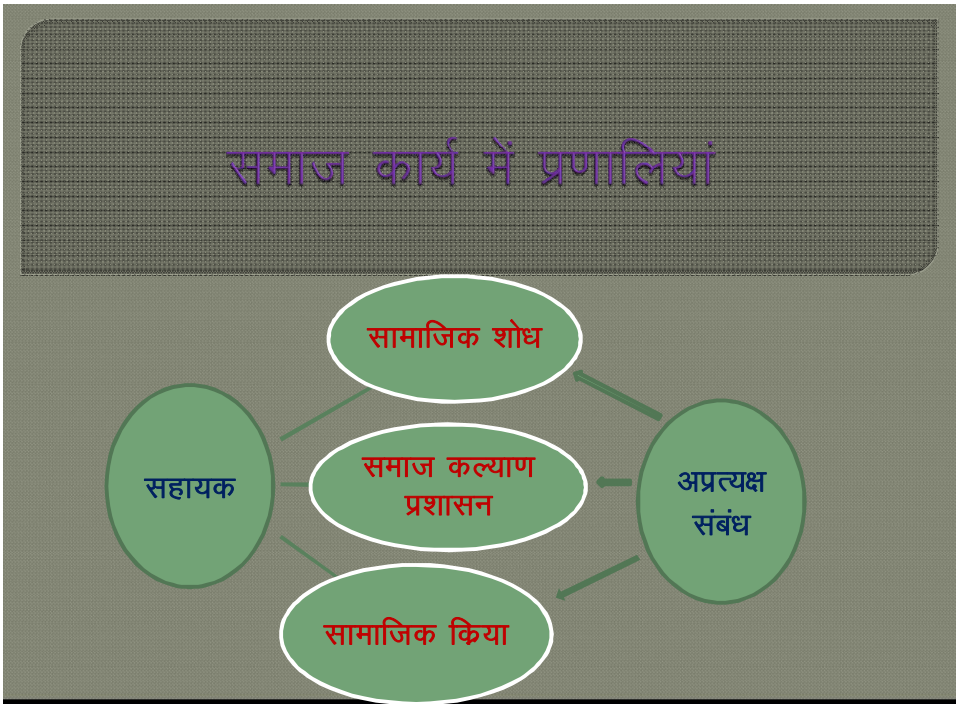

चित्र क्रं.002

व्यक्ति की अनेक प्रकार की समस्याएँ होती है जिन्हें किसी एक प्रणाली के माध्यम से हल नहीं किया जा सकता। इस कारण से ये समस्त प्रणालियाँ भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में अपनी आवश्यकता अनुसार कार्य करती हैं और व्यक्ति, समाज एवं समुदाय को आवश्यकतानुसार सहायता कर सक्षम बनाने का प्रयास करती है ।

समूह कार्य प्रणाली प्राथमिक प्रणाली है जिसके अंर्तगत व्यक्ति की समस्या का समाधान समूह निर्माण के माध्यम से किया जाता है । यह समूह आवश्यक्तानुसार भिन्न-भिन्न लक्ष्यों के अनुरूप तैयार किए जाते हैं और इन समूहों को लक्ष्यों के अनुरूप ही प्रणालियों के सहयोग से आगे बढाया जाता है। यदि हम समाज कार्य के मुख्य क्षेत्रों की तरफ ध्यान आकर्षित करते हैं तो हमें विद्यालयी समाजकार्य, चिकित्सीय एवं मनोचिकित्सीय समाज कार्य, अपराध-सुधार, अन्य पिछड़े वर्गों का कल्याण, श्रम कल्याण, पिछडी जाति एवंवर्ग कल्याण, विशेष योग्यता रखने वाले व्यक्तियों का कल्याण, महिला कल्याण, बालकल्याण, युवा कल्याण, वृद्ध कल्याण, ग्रामीण विकास, शहरी विकास, जनजातीय विकास इत्यादि क्षेत्र मुख्यतः नजर आते हैं जो कि समाज कार्य के मुख्य क्षेत्र भी कहलाते हैं । समाज एवं समूह कर्ता इन क्षेत्रों में अपनी महती भूमिका अदा करता है और अन्य प्रणालियों के साथ अंतःसंबंध स्थापित कर सहायता करने का प्रयास करता है । समाज कार्य समूह कार्य एवं अन्य प्रणालियों के साथ किस प्रकार कार्य करता है इसेआगे समझा जा सकता है।

4.3.1 सामाजिक वैयक्तिक कार्य प्रणाली के साथ संबंध-

सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य समाज कार्य में एक प्राथमिक प्रणाली के रूप में कार्य करता है यद्यपि यह एक व्यक्ति के साथ कार्य करता है किंतु यह उसी तक सीमित नहीं रहता वरन सेवार्थी के आवश्यक्तानुसार उसके प्रत्येक आंतरिक एवं बाह्य रूप से भी कार्य करता है। मैरी रिचमंड ने1915 में प्रकाशित अपनी पुस्तक में इसका वर्णन करते हुए लिखा था कि 'विभिन्न व्यक्तियों के लिए उनके साथ मिलकर उनके सहयोग से विभिन्न प्रकार के कार्य करने की एक कला हैं

जिसमें एक ही साथ स्वयं अपनी एवं समाज की उन्नति की जाती है' मैरी रिचमण्ड ने प्रारंभ में वैयिक्तक सेवा कार्य में समस्या का तो उल्लेख किया था परंतु यह उल्लेख नहीं किया था कि व्यक्ति की समस्या का समाधान कैसे किया जाए। अतः 1922 में प्रकाशित दूसरी परिभाषा में उन्होनें इन कमियों को दूर करते हुए स्पष्ट किया और कहा कि 'सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य में वे प्रक्रियाएँ आती हैं जो एक-एक करके व्यक्तियों एवं उनके सामाजिक पर्यावरण के बीच संचेतन रूप से समायोजन स्थापित करती हैं।' सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य को एक प्रक्रिया के रूप में भी देखा जा सकता है जिसमें पर्लमैन द्वारा 1957 में दिए गये 4 अंगों को उल्लेखित किया जाता है ये अंग है- व्यक्ति, समस्या, स्थान और प्रक्रिया। इन अंगों के माध्यम से वैयक्तिक कार्य को स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि व्यक्ति, इस प्रक्रिया में सबसे महत्त्वपूर्ण माना जाता है, उसकी आंतरिक एवं बाह्य समस्या एवं उसकी आवश्यकता की पहचान कर कार्यकर्ता द्वारा उसकी समस्या का समाधान प्रस्तुत किया जाता है। दूसरा महत्त्वपूर्ण अंग समस्या है,समस्या के कई कारण और कई रूप हो सकते हैं परंतु कार्यकर्ता द्वारा यह निर्धारित किया जाता है कि व्यक्ति की व्यक्तित्व से संबंधित कौन-सी समस्या है और इसका निराकरण किस प्रकार से किया जाए। तीसरा अंग स्थान है, स्थान कार्यकर्ता एवं सेवार्थी के लिए एक महत्त्वपूर्ण अंग है जिससे माध्यम से कार्यकर्ता एक संस्था का चयन कर इसका उपयोग कर सेवार्थी को सेवाएँ प्रदान करने हेतु करता है। जो सेवार्थी की सहायता कर सकें, ये संस्थाएँ मुख्य रूप से बाल निदेशन केंद्र, मंत्रणा केंद्र, परिवार कल्याण केंद्र , व्यावसायिक मंत्रणा केंद्र इत्यादि होती है जो सेवार्थी की सहायता भिन्न-भिन्न प्रकार से आवश्यकता अनुसार करती है। चौथा अंग जिसे प्रक्रिया के रूप में जाना जाता है इसमें कार्यकर्ता द्वारा सेवार्थी की समस्या के कार्यकारण संबंधों का अध्ययन कर तथ्य संकलन किए जाते हैं समस्या का वैयिक्तक विधियों द्वारा निदान किया जाता है और प्रक्रिया के प्रमुख तीन विभिन्न अंगों अध्ययन, निदान एवं मूल्यांकन और चिकित्सा के आधार पर इसका समाधान प्रस्तुत किया जाता है। इस प्रकार से इन परिभाषाओं एवं अंगों के अध्ययन के पश्चात यह कहा जा सकता है कि वैयिक्तक कार्य प्रणाली के माध्यम से व्यक्ति की समस्या का समाधान किया जा सकता है जिसमें केंद्र बिंदु सेवार्थी(व्यक्ति) होता है। समाजिक कार्यकर्ता इस प्रकार से इस प्रणाली का प्रयोग कर व्यक्ति को समायोजन करने में सहायता करता है और यह प्रणाली समूह कार्य के साथ भी मुख्य प्रयोग में लाई जाती है।

4.3.2 सामाजिक समूह कार्य प्रणाली के साथ संबंध-

मानव समाज के इतिहास में सभी देशों एवं युगों में निर्धन, निराश्रित, अपंग, अनाथ,बेरोजगार, रोगी व्यक्ति रहे है तथा ऐसी अनेक समस्याएँ आई है जहाँ इन व्यक्तियों को अनेक कठिनाईयों का सामना करना पड़ा है। अतः इन व्यक्तियों की समस्याओं का समाधान करने तथा इसके परेशानियों को समझने के लिए आदि काल से प्रयास किए जा रहे हैं। समाज कार्य की उत्पत्ति इन्हीं प्रयासों के फलस्वरुप हुई है। मानव और समाज पूर्ण रुप से एक-दूसरे पर आश्रित है। जिस प्रकार समाज ने मनुष्य को अनेक प्रकार के मानवीय अस्तित्व प्रदान किए हैं वहीं समाज में अनेक प्रकार की समस्याएँ जैसे बेरोजगारी आदि भी व्याप्त हैं। अतः इन सभी समस्याओं को दूर करने हेतु अनेक प्रयास किए जा रहे हैं। इन्हीं प्रयासों के फलस्वरुप कार्यों को समाजकार्य के नाम से जाना जाता है। आज समाजकार्य के लिए केवल दया,करुणा, प्रेम की भावना ही पर्याप्त नहीं है। आज समाजकार्य ने व्यवसाय का रुप ले लिया है। सामाजिक समूह कार्य को समाज कार्य की एक प्रणाली के रूप में प्रयुक्त किया जाता है जो वैयक्तियों की सहायता समूह के माध्यम से कुछ रचनात्मक गतिविधियों के माध्यम से एवं व्यक्तियों में नेतृत्व का विकास कर उन्हें सक्षम बनाने का प्रयास किया जाता है। विभिन्न विद्वानों द्वारा समूह कार्य के क्षेत्र में कुछ परिभाषाएँ दी गई हैं- न्यूज टेट्र के द्वारा 1935 में दी गई परिभाषा में कहा गया है कि - 'स्वैच्छिक संघ द्वारा व्यक्ति के विकास तथा सामाजिक समायोजन पर बल देते हुए तथा एक साधन के रूप इस

संघ का उपयोग सामाजिक इच्छित उद्देश्यों को आगे बढ़ाने के लिए शिक्षा प्रक्रिया के रूप मे सामूहिक कार्य को परिभाषित किया जा सकता है।'

क्वायल, ग्रेस ने 1939 में कहा कि - 'सामाजिक सामूहिक कार्य का उद्देश्य सामूहिक स्थितियों में व्यक्तियों की अंत क्रियाओं द्वारा व्यक्तियों का विकास करना तथा ऐसी सामूहिक स्थितियों को उत्पन्न करना जिससे समान उद्देश्यों के लिए एकीकृत, सहयोगिक सामूहिक क्रिया हो सके।' विल्सन एण्ड राइलैण्ड (1949) -'सामाजिक सामूहिक सेवा कार्य एक प्रक्रिया और एक प्रणाली है, जिसके द्वारा सामूहिक जीवन एक कार्यकर्त्ता द्वारा प्रभावित होता है जो समूह की परस्पर संबंधीप्रक्रिया को उद्देश्य प्राप्ति के लिए सचेत रूप से निर्देशित करता है। जिससे प्रजातांत्रिक लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सके।' हैमिल्टन ने सामाजिक समूह कार्य को 1949 में स्पष्ट करते हुए कहा कि - 'सामाजिक सामूहिक कार्य एक मनोसामाजिक प्रक्रिया है, जो नेतृत्व की योग्यता और सहकारिता के विकास से उतनी ही सम्बन्धित है, जितनी सामाजिक उद्देश्य के लिए सामूहिक अभिरूचियों के निर्माण से है।' कर्ले, आड्म (1950) - ''सामूहिक कार्य के एक पक्ष के रूप में, सामूहिक सेवा कार्य का उद्देश्य, समूह के अपने सदस्यों के व्यक्तित्व परिधि का विस्तार करना और उनके मानवीय संपर्कों को बढ़ाना है। यह एक ऐसी प्रणाली है जिसके माध्यम से व्यक्ति के अंदर ऐसी क्षमताओं का विकास किया जाता है, जो उसके अन्य व्यक्तियों के साथ संपर्क बढ़ाने की ओर निर्देशित होती है।' ट्रैकर - 'सामाजिक सामूहिक कार्य एक प्रणाली है। जिसके द्वारा व्यक्तियों की सामाजिक संस्थाओं के अंतर्गत समूहों में एक कार्यकर्ता द्वारा सहायता की जाती है। यह कार्यकर्ता कार्यक्रम संबंधी क्रियाओं में व्यक्तियों के परस्पर संबंधी प्रक्रिया का मार्ग दर्शन करता है, जिससे वे एक-दूसरेसे संबंधी स्थापित कर सके और वैयक्तिक, सामूहिक एवं सामुदायिक विकास की दृष्टि से अपनी आवश्यकताओं एवं क्षमताओं के अनुसार विकास के सुअवसरों का अनुभव कर सकें।

कोनोप्का - सामाजिक सामूहिक कार्य समाजकार्य की एक प्रणाली है जो व्यक्तियों की सामाजिक कार्यात्मकता बढ़ाने मे सहायता प्रदान करती है, उद्देश्यपूर्ण सामूहिक अनुभव द्वारा व्यक्तिगत, सामूहिक और सामुदायिक समस्याओं को प्रभावकारी ढ़ंग से सुलझानें मे सहायता प्रदान करती है।' उपर्युक्त समस्त परिभाषाओं के विश्लेषण के पश्चात यही कहा जा सकता है कि -

न्यूज ने ट्रेट परिभाषा दी है उसमें केवल सामूहिक कार्य को एक शिक्षात्मक प्रक्रिया बताया है और कहा कि स्वैच्छिक संघ ही इस दिशा में काम करते है। अनेक परिभाषाओं से स्पष्ट हो जाता है कि यह केवल केवल शिक्षात्मक कार्य ही नहीं करता बल्कि इसके द्वारा सेवा प्रदान की जाती है। यह कार्य स्वैच्छिक एवं सार्वजनिक संगठनों दोनों के माध्यम से किया जाता है।

हैमिल्टन ने अपनी परिभाषा में सबसे अलग प्रकार से समूह कार्य को प्रस्तुत किया है और बताया है कि सामूहिक कार्य एक मनोसामाजिक प्रक्रिया है। उनका मानना है कि इसके द्वारा व्यक्ति को मानसिक रूप से तथा सामाजिक रूप से दोनो प्रकार से प्रभावित किया जाता है। यह सामाजिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए सामूहिक अभिरूचियों के विकास का प्रयत्न करता है। साथ ही साथ उनके नेतृत्व एवं सहकारिता की भावना के विकास पर बल देता है। टैकर ने सामाजिक सामूहिक कार्य की सबसे उपर्युक्त परिभाषा दी है। उनके अनुसार सामाजिक सामूहिक सेवाकार्य को एक प्रणाली या पद्धति कहा गया है जो एक विशेष प्रणाली द्वारा योजनाबद्व व सुव्यवस्थित कार्यक्रम से समूह को सेवा प्रदान की जाती है। इसमें सेवा प्रदान करने के दौरान वैज्ञानिक ज्ञान, समूह बोध सिद्धांत एवं कौशल का समावेश होता है। ट्रेकर ने सामाजिक समूह कार्य को और आगे स्पष्टकरते हुए कहा है कि सामूहिक कार्यकर्त्ता स्वीकृति, वैयक्तिकरण, कार्यक्रम एवं उद्देश्य निर्धारण में समूह की सहायता, प्रेरणा व निर्देशन ,संगठन तथा साधनों के उपयोग पर आधारित संबंधों द्वारा समूह का मार्गदर्शन करता है। उन्होंने कार्यक्रम नियोजन पर भी बल प्रदान किया है इसमें उन्होंने स्पष्ट किया कि

कार्यक्रम का आयोजन समूह सदस्यों की योग्यता एवं क्षमता के अनुसार किया जाना चाहिए। आगे उन्होंने और विस्तृत रूप से कहा कि व्यक्ति एवं समूह के व्यवहार में इस प्रकार सुपरिवर्तन लाया जाना चाहिए जिससे वे प्रजातांत्रिक सिद्धांतों जैसे समानता स्वतंत्रता, सौहार्द्र, व्यक्ति का आदर, व्यक्ति की योग्यता में विश्वास, कर्त्तव्य एवं अधिकार, व्यक्ति की आत्म विकास की क्षमता के विश्वास और इस संबंध मेंअवसर प्रदान करने में विश्वास किया जा सके। अत: उपर्युक्त तथ्यों से समाज कार्य में समूह कार्य की उपयोगिता एवं इसके एक प्रणाली के रूप में कार्य करने को समझा जा सकता है।

4.3.3 सामुदायिक संगठन कार्य प्रणाली के साथ संबंध-

सामुदायिक संगठन की उत्पत्ति19 वीं शताब्दी में दान संगठन समिति आंदोलन से हुई यही दान संगठन समितियों के चलते आज आधुनिक सामुदायिक संगठन का विकास हुआ है। सामुदायिक संगठन को समाज कार्य की एक प्रणाली के रूप में भी प्रयोग में लाया जाता है। यह समुदाय में उत्पन्न समस्याओं का निराकरण एक प्रविधि के माध्यम से करता है जिसमें समुदाय के प्रत्येक सदस्यों की आवश्यकता को महत्त्व दिया जाता है। सामुदायिक संगठन प्रमुख रूप से समुदाय के हितों को ध्यान में रखकर कार्य करता है। समुदाय में मुख्य रूप से'हम' की भावना का बोध होता है, लोगों का यह विश्वास होता है कि यह समुदाय हमारा है और यही लोग हमारे सुख-दुख में साथ देते हैं। इसी आवश्यकता को ध्यान में रखते हुऐं लोगों में आपसी स्नेह और सहयोग की भावना होती है। कुछ विद्वानों ने सामुदायिक संगठन को अपने-अपने विचारों से व्यक्त करने का प्रयास किया है। लिण्डमैन 1921 ने सामुदायिक संगठन को परिभाषित करते हुए कहा कि 'सामुदायिक संगठन सामाजिक संगठन का वह स्तर है जिसमें समुदाय द्वारा चेतन प्रयास किए जाते हैं तथा जिसके द्वारा वह अपने मामलों को प्रजातांत्रिक ढ़ंग से नियंत्रित करता है तथा अपने विशेषज्ञों,संगठनों, संस्थाओं तथा संस्थानों से जाने-पहचाने अंतर संबंधियों के द्वारा उनकी उच्च कोटि की सेवाएँ प्राप्त करता है।

पैटिट (1925) के अनुसार - 'सामुदायिक संगठन एक समूह के लोगों तथा उनकी सामान्य आवश्यकताओं को पहचानने तथा इन आवश्यकताओं की पूर्ति में सहायता करने के रूप में उत्तम प्रकार से परिभाषित किया जा सकता है।'

सैण्डरसन एण्ड पोल्सन ने 1993 में वर्तमान स्थिति के ध्यान में रखते हुए सामुदायिक संगठन को परिभाषित किया और कहा कि, ' सामुदायिक संगठन का उददेश्य समूहों तथा व्यक्तियों के मध्य ऐसे संबंध विकसित करना है जिससे उन्हें सुविधाओं का निर्माणतथा समस्याओं का निराकरण करने तथा उन्हें बनाए रखने के लिए एक साथ कार्य करने में सहायता मिलेगी तथा जिसके माध्यम से समुदाय के सभी सदस्यों के समान कल्याण में अपने उच्चतम मूल्यों का अनुभव कर सके।

एम.जी.रौस ने 1956 में सामुदायिक संगठन को स्पष्टकरते हुए - सामुदायिक संगठन के कार्यकर्ता द्वारा समुदायों की सहायता करने की एक प्रक्रिया कहा है। उनके अनुसार 'सामुदायिक संगठन एक प्रक्रिया है। जिसके द्वारा समाज कार्यकर्ता अपनी अंतर्दृष्टि एवं निपुणता का प्रयोग करके समुदायों(भौगोलिक तथा कार्यात्मक) को अपनी-अपनी समस्याओं को पहचानने और उनके समाधान हेतु कार्य करने में सहायता देता है।उपर्युक्त परिभाषाओं के माध्यम से यह कहा जा सकता है कि सामुदायिक संगठन वैयक्तिक सेवा कार्य समूह कार्य के समान ही कार्य करती है एवं यह भी एक प्रत्यक्ष रूप से कार्य करने वाली प्रणाली है जिसके उद्देश्य समूह एवं वैयक्तिक कार्य जैसे ही हैं जिसमें समुदाय की समस्या का समाधान किया जाता है । समुदाय कार्यकर्ता निम्न चरणों के माध्यम से समुदाय की सहायता करने का प्रयास करता है जो मुख्य रूप से लिण्डमैन द्वारा दी गई है– सर्वप्रथम, वह समुदाय में चेतना जाग्रत करने का प्रयास करता है, दूसरे चरण में वह समुदाय में आवश्यकता की चेतना का प्रसार करता है, तीसरे चरण में आवश्यकता की चेतना का प्रक्षेपण करता है, चौथे चरण में वह आवश्यकता की पूर्ति के लिए समाधानों का प्रस्तुतीकरण करता है

पाँचवे चरण में वह आवश्यकता पूर्ति के लिए समस्याओं को समाप्त करने का प्रयास करता है छठवें चरण में समस्या के विषय में वाद-विवाद विशाल सभा या कुछ व्यक्तियों के सामने परियोजना या समस्या को रखा जाता है और जो समूह अधिक प्रभाव रखते हैं अपनी योजनाओं की स्वीकृति लेने का प्रयास करते हैं सातवें चरण में कार्यकर्ता द्वारा समाधानों का एकीकरण कर उचित समाधान प्रस्तुत किया जाता है एवं आठवें चरण में अस्थायी प्रगति के आधार पर समझौता कराया जाता है । अनेक विद्वानों द्वारा चरणों को भिन्न रूप से प्रयोग में लाने हेतु बताया गया हैं यह आवश्यक नहीं है कि एक ही चरण को समस्त परियोजनाओं में लागू किया जाए इस प्रकार से सामुदायिक संगठन प्रणाली के माध्यम से समाज कार्य की प्रक्रिया को किया जाता है।

4.3.4 समाज कल्याण प्रणाली के साथ संबंध-

समाज कल्याण प्रशासन प्रणाली समाज कार्य में प्रमुख रूप से द्वितीयक या सहायक प्रणाली के रूप में कार्य करती है। समूह कार्य में तीन अंगों का होना अत्यंत आवश्यक होता है समूह संस्था और कार्यकर्ता यह प्रणाली मुख्यतः संस्थाओं के सहयोग में अहम भूमिका को अदा करती है जिसका उपयोग कर कार्यकर्ता समूह की आवश्यकताओं एवं लक्ष्य की पूर्ति कर सकें। सामाजिक अभिकरण या सरकारी कल्याण-कार्यक्रमों से संबंधित प्रशासन को समाज कल्याण प्रशासन के अंतर्गत रखा जाता है। समाज कल्याण प्रशासन को एक परिभाषा से समझाना अत्यंत कठिन कार्य है। विभिन्न विद्वानों ने समाज कल्याण प्रशासन को भिन्न-भिन्न प्रकार से परिभाषित करने का प्रयास किया है जिनमें मुख्य रूप से आर्थर डनहम ने कहा है कि 'इसका अर्थ उन सहारा देने वाले एवं सुविधा देने वाले या सुविधाजनक या सरल बनाने वाले क्रियाकलापों से है जो किसी संस्था द्वारा प्रत्यक्ष सेवा प्रदान करने के लिए आवश्यक होते हैं एवं जिनका संपादन एक सामाजिक संस्था द्वारा प्रत्यक्ष सेवा के लिए दिए जाने के साथ-साथ होता रहता है।'

जान किडनाई के अनुसार : 'समाज कल्याण प्रशासन सामाजिक नीति को सामाजिक सेवाओं में बदलने की एक प्रक्रिया है।' प्रो0 राजाराम शास्त्री के अनुसार , 'सामाजिक अभिकरण तथा सरकारी या गैरसरकारी कल्याण कार्यक्रमों से संबंधित प्रशासन को समाज कल्याण कहते हैं। यद्यपि इसकी विधियाँ प्रविधियाँ या तौर-तरीके इत्यादि भी लोक-प्रशासन या व्यापार-प्रशासन की ही भाँति होते हैं किंतु इसमें एक बुनियादी भेद यह होता है कि इसमें सभी स्तरों पर मान्यता और जनतांत्रिकता का अधिक से अधिक ध्यान रखकर ऐसे व्यक्तियों या वर्ग से संबंधित प्रशासन किया जाता है जो कि बाधित होते हैं।'

समाज कल्याण प्रशासन में मुख्य रूप से लूथर गूलिक द्वारा प्रारूप को ध्यान में रखकर कार्य किया जाता है जिसमें उन्होने पोस्डकार्ब (POSDCORB) का उल्लेख किया है। जिसमें P से Planning अर्थात नियोजन, O से Organising अर्थात संगठन, S से Staff अर्थात कर्मचारी, D से Direction अर्थात निर्देशन, Co से Coording अर्थात समन्वय एवं B से Budgeting अर्थात बजट बनाने को निर्धारण किया गया है।

समाज कार्य मुख्य रूप से सामाजिक संस्थाओं या विभागों या संबंधित संगठनों जैसे -विद्यालयी चिकित्सीय एवं मनोचिकित्सीय विभाग, अपराध-सुधार संस्थाएँ अन्य पिछड़े वर्गों का कल्याण संबंधी संस्थाएँ श्रम कल्याण संबंधी संस्थाएँ ,पिछडी जाति एवं वर्ग कल्याण करने वाली संस्थाएँ इत्यादि संस्थाओं के साथ मिलकर कार्य करती है एवं कार्यकर्ता द्वारा इन संस्थाओं का प्रयोग कर समुदाय की समस्याओं को दूर करने का प्रयास किया जाता है ।

4.3.5 सामाजिक शोध प्रणाली के साथ संबंध-

सामाजिक अनुसंधान वर्तमान समय में एक अंत्यंत ही प्रभावी रूप से समाज कार्य अनुसंधान के रूप में कार्य कर रहा है। समाज कार्य अनुसंधान एक वैज्ञानिक प्रक्रिया है जिसके माध्यम से समाज में घटित होने वाली घटना का अध्ययन एवं उसके कार्य-कारणों की खोज एक वैज्ञानिक प्रक्रिया के अंतर्गत की जाती है। इस प्रक्रिया के अंतर्गत व्यक्ति, समूह

एवं समुदाय की समस्याओं का ध्यान कर एक उचित समाधान प्रस्तुत किया जाता है। समाज कार्य शोध के माध्यम से व्यक्ति समूह एवं समुदाय के विभिन्न पक्षोंको ध्यान में रखकर विभिन्न प्रकार के तथ्य संकलन की प्रविधियों के माध्यम से आँकड़ों का संकलन किया जाता है और उसके पश्चात कार्य योजना का निर्माण कर समाधान की संपूर्ण प्रक्रिया को क्रियान्वित किया जाता है। अनेक विद्वानों द्वारा समाज कार्य अनुसंधान को परिभाषित करने का प्रयास किया गया है- पीवी यंग के अनुसार, 'हम सामाजिक अनुसंधान को एक वैज्ञानिक कार्य के रूप में परिभाषित कर सकते हैं, जिसका उद्देश्य तार्किक एवं क्रमबद्ध पद्धतियों द्वारा नवीन तथ्यों की खोज या पुराने तथ्यों कोऔर उनके अनुक्रमों, अंतर्संबंधों, कारणों एवं संचालित करने वाले प्राकृतिक नियमों को खोजना है।

सी.ए. मोज़र ने सामाजिक शोध को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि, 'सामाजिक घटनाओं एवं समस्याओं के संबंध में नए ज्ञान की प्राप्ति हेतु व्यवस्थित अन्वेषण को हम सामाजिक शोध कहते हैं।' वास्तव में देखा जाए तो, 'सामाजिक यथार्थता की अंतरसंबंधित प्रक्रियाओं की व्यवस्थित जाँच तथा विश्लेषण सामाजिक शोध है।(पी.वी. यंग 1960 पेज क्रं. 44)।

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि सामाजिक शोध विभिन्न घटनाओं का ध्यान अपने वैज्ञानिक ज्ञान से करती है जिससे नए ज्ञान के साथ समस्या का समाधान प्रस्तुत किया जा सके।

समूह कार्य को समाज कार्य में एक प्रणाली के रूप में जाना जाता है । यह समूह गतिविधियोंके माध्यम से समाज में उत्पन्न समस्याओं का निराकरण करने का प्रयास करती है। समाज कार्य अनुसंधान प्रविधि इस प्रविधि के साथ मिलकर एक सहायक प्रणाली के रूप में कार्य करती है जिससे समूह की समस्या का निर्धारण करउससे समाधान का प्रयास किया जाए। सामाजिक अनुसंधान केमुख्यतः वैसे ही उद्देश्य होते हैं जो समूह कार्य के भी होते हैं जिनमें प्रमुख रूप से - सामाजिक समस्याओं का अध्ययन, सामाजिक तथ्यों के संबंध में फैली भ्रांतियों को दूर करने का प्रयास, सामाजिक प्रगति एवं विकास हेतु योजना का निर्माण एवं क्रियान्वयन, सामाजिक नियंत्रण में सहायक सामाजिक संगठनों को दृढ़ता व स्थिरता प्रदान करने में सहायक एवं समूह एवं समुदाय में समाज कार्य सेवाओं की आवश्यकता का मापन एवं मूल्यांकन करना शामिल होता है। इन उद्देश्योंको ध्यान में रखकर कार्यकर्ता निम्न चरणों के माध्यम से इन उद्देश्यों को पूर्ण करने का प्रयास करता है - सर्वप्रथम समस्या का निर्धारण एवं निरूपण कर समस्याओं के मूल कारणों को जानने का प्रयास करता है फिर समस्या से संबंधित उपलब्ध साहित्यों का अध्ययन करता है, अनुसंधान के क्षेत्र का निर्धारण किया जाता है, अध्ययन इकाइयों का चयन किया जाता है, अनुसंधान के उद्देश्योंका निर्धारण किया जाता है, प्राक्कल्पना का निर्माण किया जाता है, सूचना स्त्रोंतो का अध्ययन किया जाता है, सूचना एकत्र करने की प्रविधियों का निर्धारण किया जाता है, तथ्यों का संकलन किया जाता है, संकलित तथ्यों का वर्गीकरण किया जाता है, वर्गीकृत तथ्यों का विश्लेषण व विवेचन किया जाता है, सामान्यीकरण व सिद्धांतों का प्रतिपादन किया जाता है एवं प्रतिवेदन का निर्माण किया जाता है, इस प्रकार से कार्यकर्ता द्वारा शोध के चरणों का उपयोग कर समस्त शोध प्रक्रिया को किया जाता है और यही प्रक्रिया कहीं-न-कहीं समूह कार्य प्रक्रिया में भी लागू की जाती है।

पी.वी.यंग ने एक सामाजिक कार्यकर्ता के लिए विभिन्न क्षेत्रों का उल्लेख किया है जिनमें वह कार्य करता है

1. यह उन कारकों का अध्ययन करता है जो व्यक्ति के सामाजिक व्यवस्था में समस्या उत्पन्न करती है।
2. सामाजिक संस्थाओं का विभिन्न इकाइयों के साथ अंर्तसंबंध को ज्ञात करता है।
3. सामाजिक कार्यकर्ता की स्थिति का अध्ययन करता है।
4. समाज में चल रही विभिन्न प्रक्रियाओं का अध्ययन प्रस्तुत करता है।
5. समाज में व्यक्ति, समूह एवं समुदाय की आवश्यकता का अध्ययन कर उन्हें पूर्णकरने का प्रयास करता है।

6. समाज कार्य क्रिया के प्रभावों का परीक्षण एवं मूल्यांकन कर समाज कार्य व्यवहार हेतु उपयोगी साधनों को ज्ञात करता है।

7. समाज कार्य में व्यक्ति, समूह एवं समुदाय के व्यवहार प्रक्रिया का अध्ययन करता है।

8. समूह एवं समुदाय में सामाजिक समूहोंके मूल्यों तथा वरीयता का अध्ययन जिनके ऊपर समाज कार्य के व्यावहारिक रूप को समर्थन तथा सहयोग के लिए निर्भर होना पड़ता है।

9. समाज की विविध प्रक्रियाओं का अध्ययन करता है।

इस प्रकार से समाज कार्य शोध के क्षेत्रों को देखा जा सकता है जो वैयक्ति, समूह एवं समुदाय मेंउनके समस्या समाधान के लिए कार्य करते हैं।

समाज कार्य अनुसंधान की कुछ विशेषताओं को यदि ध्यान पूर्वक देखा जाय तो इससे यह प्रतीत होता है कि यह किस प्रकार समूह कार्य के साथ अंर्तसंबंध रखतेहुए एक सहायक प्रणाली के रूप में कार्य करती है।

1. सामाजिक अनुसंधान सामाजिक घटनाओं सेसंबंधित तथ्यों का अध्ययन करता है। समूह कार्य प्रक्रिया में समूह सदस्य में उत्पन्न होने वाली समस्याओं का अध्ययन कर उसे दूर करने का प्रयास किया जाता है।

2. समाज कार्य अनुसंधान की प्रकृति वैज्ञानिक होती है, समूह कार्य भी एक प्रक्रियाबद्ध प्रणाली के साथ किया जाता है।

3. समाज कार्य अनुसंधान अनुभवपरक होते हैं, वही कार्यकर्ता अपने अनुभवों से ही समूह का निर्माण करता है एवं गतिविधियों को संचालित करता है।

4. सामाजिक अनुसंधान में घटनाओं के कार्यकारणों का अध्ययन किया जाता है जबकि समूह कार्य में समूह में उत्पन्न होने वाली समस्याओं के कार्यकारणों का अध्ययन किया जाता है।

5. सामाजिक अनुसंधान द्वारा व्यक्ति की सहायता अप्रत्यक्ष रूप से की जाती है तो वही समूह कार्य द्वारा इसे प्रत्यक्ष रूप में दिया जाता है।

6. सामाजिक अनुसंधान में समस्याओं को ज्ञात कर उन्हेंदूर करने का प्रयास किया जाता है तो समूह कार्य में भी समूह की समस्याओं को ज्ञात कर उन्हें दूर करने का प्रयास किया जाता है।

7. सामाजिक अनुसंधान एक उद्देश्यपूर्ण प्रक्रिया है, समूह का निर्माण भी विशिष्ट उद्देश्य की पूर्ति के लिए किए जाते हैं और यह भी एक उद्देश्य पूर्ण प्रक्रिया है।

इस प्रकार से कहा जा सकता है कि सामाजिक अनुसंधान समाज कार्य की एक सहायक प्रणाली के रूप में कार्य करती है और समूह कार्य प्रक्रिया के साथ इसका अंर्तसंबंध मुख्य रूप से होता है जिसके माध्यम से कार्यकर्ता अपने लक्ष्यों की प्राप्ति करता है।

4.3.6 सामाजिक क्रिया प्रणाली के साथ संबंध-

सामाजिक क्रिया प्रणाली का उपयोग समाजकार्य की द्वितीयक प्रणाली के रूप में किया जाता है । इस प्रणाली का वर्तमान स्वरूप मेरी रिचमण्ड द्वारा 1922 में दिया गया। 1940 में जॉन फिच द्वारा एक कान्फ्रेंस में सामाजिक क्रिया की प्रकृति के ऊपर एक महत्त्वपूर्ण लेख प्रस्तुत किया गया जिसने सामाजिक क्रिया को समाज कार्य के क्षेत्र में एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि बताया। 1945 में केनिथ एलियम ने सोशल वर्क एण्ड एक्शन नामक लेख लिखा जिसके अनुसार यह माना जाने लगा कि सामाजिक क्रिया सामुदायिक संगठन का एक अंग नही है बल्कि यह समाज कार्य की एक अलग विधि है। कुछ विद्वानों ने सामाजिक क्रिया की निम्नलिखित परिभाषाएँ दी हैं-

मेरी रिचमण्ड (1922) के अनुसार, 'सामाजिक क्रिया प्रचार एवं सामाजिक विधान के माध्यम से जन समुदाय के कल्याण को प्रोत्साहित करती है।'

ग्रेस क्वायल (1937) के अनुसार, 'समाज कार्य के एक भाग के रूप में सामाजिक क्रिया सामाजिक पर्यावरण को इस प्रकार बदलने का प्रयास है जो हमारे विचार में जीवन को अधिक संतोषजनक बनाएगा। यह मात्र व्यक्ति विशेष को ही प्रभावित नहीं करता वरन् सामाजिक संस्थाओं, कानूनों, प्रथाओं औरसमूहों एवं समुदायों को भी प्रभावित करता है।

सैनफोर्ड सोलेण्डर (1957) के अनुसार, 'समाज कार्य के परिप्रेक्ष्य में सामाजिक क्रिया वैयक्तिक, सामूहिक या अंतरसामूहिक प्रयास की प्रक्रिया है जो समाज कार्य के दर्शन, ज्ञान और निपुणताओं की सीमा के अंदर संपादित की जाती है। इसका उद्देश्य सामाजिक नीति और सामाजिक संरचना में संशोधन करके समुदाय के कल्याण को प्रगति के पथ पर अग्रेसित करना है एवं कार्यक्रमों और सेवाओं की प्राप्ति के लिए कार्य करना है।

फ्रीडलैण्डर ने सामाजिक क्रिया को स्पष्ट करते हुए कहा था कि, 'सामाजिक क्रिया एक वैयक्तिक, सामूहिक एवं सामुदायिक प्रयास है जिसे समाज कार्य के दर्शन एवं व्यवहार की संरचना के अंतर्गत किया जाता है।

उपर्युक्तपरिभाषाओं से स्पष्टहै कि सामाजिक क्रिया सामाजिक उद्देश्योंऔर मानवीय आवश्यकताओं की पूर्तिनीति के निर्माण में आवश्यक परिवर्तन हेतु जनसमुदाय के सहयोग के साथ प्रयोग में लाई जाती है।

सामाजिक क्रिया की विशेषताएँ -

सूदन के अनुसार सामाजिक क्रिया की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं:-

1. सामाजिक क्रिया के उद्देश्य स्पष्ट होते हैं।
2. सामाजिक क्रिया के कार्यक्रमों की प्राथमिकता एवं रूपरेखा स्पष्ट होती है।
3. संस्था के संगठन के अनुसार ही सामाजिक क्रिया का रूप परिभाषित किया जाता है ।
4. सामाजिक क्रिया में कार्यक्रमों का निर्धारण करने के लिए समाजिक कार्यकर्ता को सेवाएँ एवं सुविधाएँ प्रदान कराई जाती हैं।
5. सामाजिक क्रिया के माध्यम से अन्य संस्थाओं के साथ सहयोग स्थापित किया जा सकता है।
6. सामाजिक क्रिया समाज में व्यापक परिवर्तन हेतु प्रयोग में लाई जाती है।
7. प्रमुख सरकारी विभागों और अधिकारियों से निरंतर कार्यात्मक संबंध स्थापित किया जाता है।
8. सामाजिक क्रिया के माध्यम से व्यापक कार्यक्रम निर्धारित किए जाते हैं।
9. सामाजिक क्रिया एक सामूहिक गतिविधि है जिसके माध्यम से व्यक्ति, समूह या समुदाय के माध्यम से इसे प्रारंभ किया जा सकता है।
10. सामाजिक क्रिया में सदस्यों के बीच आपसी सामंजस्य होता है।
11. सामाजिक क्रिया के माध्यम से नीतियों में परिवर्तन लाया जाता है।

सामाजिक क्रिया के उद्देश्य :-

1. समाज में किसी व्यापक समस्या के निदान हेतु नीति का निर्माण करना एवं व्यापक दृष्टिकोण प्रदान करना।
2. समाज में स्वस्थ जनमत तैयार करना।
3. समाज के अनेक क्षेत्रों हेतु स्थानीय, प्रांतीय एवं राष्ट्रीय स्तर पर किए जा रहे कार्यों को संपादित करना।
4. समाज, संस्थाओं और सरकार के मध्य आपसी समझौता कराने का प्रयास करना।

5. समाज के प्रत्येक व्यक्ति तक आवश्यक सूचनाओं को सुलभता के साथ पहुँचाना।

6. समाज के कमजोर वर्गो के लिए आवश्यक सुविधाएँ उपलब्ध कराना।

7. सामाजिक आँकड़ों को एकत्रित करते हुए सूचनाओं का विश्लेषण करना।

8. सामाजिक समस्याओं के प्रति समुदाय में जागरूकता और प्रबोध का विकास करना और सामुदायिक नेताओं का समर्थन प्राप्त करना

9. समाज कार्य के मूल्यों की मान्यता और सरकारी तथा गैरसरकारी कार्यक्रमों के विकास एवं सरकार द्वारा समाज कार्य का प्रयोग कराने के लिए समर्थन प्राप्त करना।

सामाजिक क्रिया की परिभाषाओं, विशेषताओं एवं उद्देश्योंके आधार पर कहा जा सकता है कि सामाजिक क्रिया समाज में व्याप्त समस्याओं के समाधान करने का एक संगठित रूप है। समूह कार्य में यह प्रक्रिया किस प्रकार से अपनी भूमिका को अदा करती है और किस प्रकार इसमे अंतःसंबंध पाया जाता इसे निम्नलिखित तथ्यों के माध्यम से स्पष्ट किया जा सकता है-

उद्देश्यों के आधार पर अंतर्संबंध-

समाज कार्य का मुख्य उद्देश्य व्यक्ति की समस्या का समाधान कर उसे समाज में समायोजन स्थापित करने में सहायता करना है। समाज कार्य की जितनी भी प्रणालियाँ हैं यदि हम उनके समस्त उद्देश्य का अध्ययन करें तो प्रतीत होता है कि इनके उद्देश्य लगभग समान ही है बस इतना अंतर है कि कुछ प्रणालियाँ प्रत्यक्ष रूप से कार्य करती है तो कुछ प्रणालियाँ अप्रत्यक्ष रूप से सेवार्थी की सहायता करती है। समूह कार्य प्रणाली के माध्यम से कार्यकर्ता द्वारा यह प्रयास किया जाता है कि किस प्रकार समूह का निर्माण कर व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक एवं सामाजिक स्तर पर, किस प्रकार उसका विकास किया जाए जिससे कि व्यक्ति अपनी समस्या के समाधान हेतु स्वयं सक्षम बन जाएऔर उसे पुनः किसी की आवश्यकता न पडे, इस प्रक्रिया में कार्यकर्ता का केंद्र बिंदु समूह होता है। सामाजिक क्रिया प्रणाली के उद्देश्य की ओर यदि हम ध्यान डालें तो यही प्रतीत होता है कि इसका उद्देश्य सामाजिक समस्याओं के प्रति समुदाय में जागरूकता और प्रबोध का विकास करना और सामुदायिक नेताओं का समर्थन प्राप्त करना है और साथ ही साथ समाज में किसी व्यापक समस्या के निदान हेतु नीति का निर्माण करना एवं व्यापक दृष्टिकोण प्रदान करना है । सामाजिक क्रिया और समूह कार्य के उद्देश्योंमें समानता ही नजर आती है दोनों का कार्य समस्याग्रस्त विषय को लेकर समस्या समाधान का प्रयास किया जाता है तो इस प्रकार से कहा जा सकता है कि समूह कार्य और सामाजिक क्रिया में उद्देश्यों के आधार पर अंतर्संबंध पाया जाता है।

चरणों के आधार पर अंतर्संबंध-

समाज कार्य की समस्त प्रणालियों के अपने चरण होते हैं, जिनकी सहायता से ही वह किसी कार्य को क्रमबद्व रूप से क्रियान्वित कर पाते हैं। यही चरण एक मार्ग प्रशस्त करते हैं, कि किस प्रकार से कार्य किया जाए और लक्ष्यों की प्राप्ति की जाए। सामाजिक क्रिया के कुछ महत्त्वपूर्ण चरण होते हैं, जो इस क्रिया विधि के लक्ष्य प्राप्ति हेतु मार्गदर्शक का कार्य करते हैं, जैसे- प्रथम चरण के माध्यम से सर्वप्रथम सामाजिक क्रिया में समस्या की पहचान की जाती है। इस चरण के माध्यम से यह समझने का प्रयास किया जाता है कि समस्या का प्रकार क्या है और इसकी प्रकृति क्या है? इस संदर्भ में जानकारी एकत्रित की जाती है। सामाजिक क्रिया के दूसरे चरण में संरचनात्मककार्यात्मक विश्लेषण किया जाता है। इस चरण के माध्यम से यह पता लगाने का प्रयास किया जाता है कि समस्या का जन्म कहाँ से हुआ है, अतः इसका मूल क्या है ? इसके साथ-साथ यह भी प्रयास किया जाता है कि समुदाय की संरचना कैसी है? तीसरे चरण के माध्यम से कार्यकर्ताओं के द्वारा रणनीतियाँ को बनाया जाता है । ये रणनीतियाँ इस प्रकार तैयार की जाती है जिससे कि समस्त

जनसमुदाय उसमें अपनी सहभागिता दे सके। चौथे चरण में रणनीति बनाने के पश्चात समस्त जनसमुदाय की सहभागिता पर बल दिया जाता है क्योंकि यह एक सहभागी प्रक्रिया है और बिना जनसमुदाय के इसे नहीं किया जाता। पाँचवें चरण में योजना का निर्माण किया जाता है कि किस प्रकार से अब आगे की गतिविधियों को संचालित किया जाएगा जिसमें लागत, समय, परिणाम इत्यादि पर गहन अध्ययन किया जाता है। छठवें चरण में जब पाँचवे चरण के माध्यम से योजना का निर्माण किया जाता है उसके पश्चात अब इस चरण द्वारा जो कार्य योजना बनाई गई थी उसी प्रकार से उसका कार्यान्वयन किया जाता है और यह ध्यान दिया जाता है कि इसमें समाज का प्रत्येक सदस्य भागीदार हो। अंतिम चरण जिसे हम मूल्यांकन का चरण भी कहते हैं इस चरण के माध्यम से यह जानने का प्रयास किया जाता है कि संपूर्ण क्रिया विधि में क्या सकारात्मक और नकारात्मक पक्ष रहे हैं। सकारात्मक पक्ष को आगे बढाया जाता है और नकारात्मक पक्ष की खामियों को दूर करने का प्रयास किया जाता है। समूह कार्य के चरणों में, प्रथम अवस्था या प्राथमिक जिसे हम प्रारंभिक चरण भी कहते हैं इस चरण के माध्यम से योजना और समूह निर्माण(आरंभ चरण) किया जाता है जिसमें योजना और समूह निर्माण के आरंभिक चरण में कार्यकर्ता द्वारा समूह निर्माण की आवश्यकता पर बल दिया जाता है और समूह निर्माण के लिए पहल की जाती है। जब समूह कार्यकर्ता समूह निर्माण की आवश्यकता की पहचान कर लेता है तो वह समूह निर्माण की योजना तैयार करता है। इसके लिए कार्यकर्ता को अपनी व्यावसायिक पृष्ठभूमि के साथ कुछ प्रश्नों के उत्तर अत्यंत ही सावधानीपूर्वक और क्रमबद्ध ढंग से देने पड़ते हैं। प्रथम अवस्था में समूह निर्माण और योजना के निर्माण पश्चात द्वितीय अवस्था में जिसे समूह का आरंभिक सत्र भी कहा जाता है। इस सत्र में पर्यवेक्षण का कार्य किया जाता है। पर्यवेक्षण कार्य के माध्यम से समूह सदस्यों में दिशा निर्धारण का कार्य किया जाता है। यह चरण सदस्यों में संबद्धता और एकात्मकता की भावना विकसित करने की शुरूआत करता है। तृतीय अवस्था निष्पांदन (कार्य चरण)- प्रथम एवं द्वितीय चरण को पूर्ण कर लेने के पश्चात अब समूह परिपक्व स्थिति में नजर आने लगता है और समूह अपने क्रियाशील चरणों की ओर बढने लगता है। अतः तृतीय चरण में वह निष्पादन कार्य आरंभ कर देता है जिसे कार्य चरण भी कहा जा है और निम्न गतिविधियों के माध्यम से चरण को पूर्ण करता है। चतुर्थ अवस्था मूल्यांकन(विश्लेषण चरण)-मूल्यांकन एक सतत और निरंतर चलने वाली प्रक्रिया हैजिसके माध्यम से समूह के प्रत्येक पहलू का अध्ययन किया जाता है मूल्यांकन को परिभाषित करते हुए हैमिल्टनगार्डन (1952) ने कहा है कि , मूल्यांकन निर्णय करने वाली एक प्रक्रिया है जो निश्चित करती है कि व्यक्ति, कार्यकर्ता तथा संस्था का क्या उत्तरदायित्व है, उनको पूरा करने की कितनी क्षमता है, क्या-क्या शक्तियाँ है, कौन-से कार्य रचनात्मक सहयोग प्रदान करते हैं तथा कौन-से कार्य समस्या को जटिल बनाते हैं। पंचम अवस्था समापन होती है(अंतिम चरण)। इस चरण के माध्यम से समूह का लक्ष्य पूर्ण होने पर इसे समापन कर दिया जाता है। इस प्रकार से हम देखते हैं तो समूह कार्य एवं सामाजिक क्रिया के चरणों में हमें अत्यधिक समानता के साथ-साथ अंतसंबंध भी दिखाई पडता है।

सिद्धांत के आधार पर समानता एवं अंतर्संबंध-

समाज कार्य की संपूर्ण प्रणालियों के सिद्धांत भी लगभग समान होते हैं जिनका प्रयोग कर कार्यकर्ता समस्याओं के समाधान का प्रयास करता है। चाहे वह वैयक्तिक कार्य के सिद्धांत हो या समूह कार्य के या फिर समुदाय संगठन के इन सब प्रणालियों में सिद्वांत का अपना विशेष महत्त्व होता है। समूह कार्य और सामाजिक क्रिया में सिद्धांतों के आधार पर यदि अध्ययन किया जाए तो सामाजिक क्रिया में मुख्य रूप से विश्वसनीयता का सिद्वांत सर्वप्रथम प्रयोग में लाया जाता है। इस सिद्धांत के उपयोग से कार्यकर्ता समूह एवं समुदाय के मध्य विश्वास पैदा करता है। दूसरा सिद्धांत होता है जिसे हम स्वीकृति के सिद्धांत के नाम से जानते हैं। इस सिद्धांत के माध्यम से कार्यकर्ता द्वारा प्रयास किया जाता है कि वह समूह एवं समुदाय के सदस्य जैसे है वैसे ही उन्हें स्वीकार करें और समूह एवं समुदाय भी कार्यकर्ता के प्रति

विश्वास रखे। इस प्रकार स्वस्थ जनमत को तैयार किया जा सकता है। तीसरे सिद्धांत के रूप में हम वैधता के सिद्धांत को लेते हैं, इस सिद्धांत के माध्यम से यह प्रयास किया जाता है कि जिस समूह एवं समुदाय के लिए जिन कार्यक्रमों का कार्यान्वयन किया जा रहा है उनको विश्वास हो कि कार्यक्रम नैतिक एवं सामाजिक उत्थान के लिए उचित है। संवेगात्मक सिद्धांत के माध्यम से कार्यकर्ता द्वारा यह प्रयास किया जाता है कि जनसमुदाय भावात्मक रूप से कार्यक्रम के साथ जुड़े। बहुआयामी रणनीति के सिद्धांत के माध्यम से संपूर्ण क्रिया की रणनीतियों को तैयार किया जाता है एंव मूल्यांकन के सिद्धांत का प्रयोग कर कार्यक्रमकी सफलता एवं असफलता को ज्ञात किया जाता है । इस प्रकार सामाजिक क्रिया में सिद्धांत का परिपालन किया जाता है । समूह कार्य के भी कुछ विशिष्टसिद्धांत होते हैं जिनका उपयोग कर समूह कार्य की संपूर्ण प्रक्रिया को किया जाता है ये सिद्धांत हैं- नियोजन का सिद्धांत:- नियोजन किसी भी कार्य को करने का एक सुव्यवस्थित और सुनियोजित तरीका है जिससे लक्ष्यों को आसानी से प्राप्त किया जा सकें। नियोजन के अंतर्गत विद्यमान स्थितियों तथा संभावित परिवर्तनों की उपयोगिता को ध्यान में रखकर एक व्यवस्थित तथा सुसंगठित रूपरेखा तैयार की जाती है जिससे भविष्य की परिवर्तनों को अपेक्षित लक्ष्यों के अनुरूप नियंत्रित, निर्देशिष्ट तथा संशोधित किया जा सके । लक्ष्यों की स्पष्टता का सिद्धांत के माध्यमसे समूह के लक्ष्यों को स्पष्ट किया जाता है। सोद्देश्य संबंध के सिद्धांत के माध्यम से समूह के स्वस्य निश्चित किए जाए तथा उन्हीं के आधार पर संबंधों की स्थापना एवं विश्लेषण हों। निरंतर व्यक्तिकरण का सिद्धांत सामाजिक समूह कार्य में एक महत्त्वपूर्ण सिद्वांत के रूप में जाना जाता है जिसके माध्यम से समूह कार्यकर्ता ऐसे समूह के सदस्यों की सहायता करता है जो सदस्य समूह में सामंजस्य स्थापित नहीं कर सकते हैं। उन्हें समूह के सदस्यों के साथ सामंजस्य स्थापित करने के लिए प्रेरित करता हैं। इसके अलावा समूह सदस्यों की विभिन्न इच्छाओं और आवश्यकताओं को भी वह निरंतर व्यक्तिकरण के माध्यम से जान सकता है। निर्देशित सामूहिक अंतःक्रिया का सिद्धांत:-संपूर्ण समूह कार्य प्रक्रिया सामूहिक गतिविधियों के माध्यम से नियोजित की जाने वाली प्रक्रिया है जिसके माध्यम से ही संपूर्ण कार्य संपन्नकिए जाते हैं। यह सामूहिक प्रक्रिया कार्यकर्ता और समूह सदस्यों के मध्य होने वाली अंतक्रियाओं परही निर्भर करती है। सदस्यों में, आपसी संबंध सकारात्मक रूप में हो तथा अंतःक्रिया का प्रभाव एक ही दिशा में हो अन्यथा नकारात्मक अंतःक्रिया समूह कार्य प्रक्रिया में व्यवधान उत्पन्न कर सकती है। जनतंत्रीय सामूहिक आत्मनिश्चयीकरण का सिद्धांत:-जनतंत्रीय सामूहिक क्रिया में कार्यकर्ता समूह का, समूह के लिए, समूह के द्वारा कार्य करने का कार्यकर्ता द्वारा बल प्रदान किया जाता है। लोचदार कार्यात्मक संगठन के सिद्धांत के माध्यम से समूह कार्यकर्ता इस प्रकार का प्रयास करता है कि किसी भी गतिविधि को इतना सरल व आसान बनाया जाए जिससे प्रत्येक सदस्य गतिविधियों का हिस्सा बन जाए और समय व आवश्यकतानुसार कार्यक्रम में परिवर्तन संभव हो सके । प्रगतिशील कार्यक्रम अनुभवों का सिद्धांत प्रत्येक स्तर पर समूह को कार्यक्रम का हिस्सा बनने के लिए प्रेरित करता है, जिससे कि प्रत्येक सदस्य कार्यक्रम का हिस्सा बन जाए और सदस्यों में आत्मनिर्णय की क्षमता का विकास हो। संपूर्ण प्रक्रिया प्रगतिशील समूह एवं कार्यकर्ता की योग्यता पर निर्भर करता है, अतः प्रगतिशील कार्यक्रम अनुभवों के सिद्धांत को समूह कार्य में एक विशिष्ट स्थान दिया जाता हैं । साधनों के उपयोग का सिद्धांत:-साधनों के उपयोग कुशलतापूर्वक करना चाहिए जिससें कि किसी भी प्रकार की कोई समस्या उत्पन्न न हो और साधनों का उचित उपयोग किया जा सके । संस्था एवं संपूर्ण वातावरण और समुदाय मिलकर बहुत से साधन रखते हैं जिनका प्रयोग इस सिद्वांत के माध्यम से किया जाता है मूल्यांकन का सिद्धांत एक महत्त्वपूर्ण सिद्वांत है जो प्रत्येक प्रणाली में अपनी महती भूमिका को अदा करता है इस सिद्वांत के माध्यम से समूह की अंतःक्रियाओं, समूह की शक्तियों, सदस्यों की कमजोरियों, समूह के अनुभव एवं उनकी क्षमताओं का आँकलन किया

जाता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि सामाजिक क्रिया एवं समूह कार्य के सिद्वांतो में सिद्धांत पाया जाता है जो कि उनके सिद्धांत से स्पष्ट होता है।

अतः संक्षेप में कहा जाए तो यह प्रतीत होता है कि सामाजिक क्रिया का समूह कार्य के साथ सिद्धांत तो है ही इसके साथ-साथ समाज कार्य की अन्य प्रणालियों के साथ आपस में अंतसंबंध पाया जाता है और इसी के आधार पर यह एक साथ मिलकर कार्य करती है और समस्याग्रस्त व्यक्ति की समस्या का समाधान प्रस्तुत कर उसे समाज में सामंजस्य स्थापित करना सिखाती है।

4.4 सारांश

समाज कार्य एक व्यवसाय आधारित कार्य विधि बन गया है जिसको एक वैज्ञानिक प्रविधि के साथ किया जाता है। इस कारण से इसमें अनेक प्रविधियाँ, तकनीकें, कुशलताएँ और प्रणालियाँ होती हैं जिनकी सहायता से लक्ष्य आधारित कार्यों को किया जाता है । ये प्रणाली एवं अन्य प्रविधियाँ आपस में किसीन किसी रूप में अंतर्संबंध रखती हैं, कहीं इनमें समानताएँ पाई जाती हैं तो कहीं इनके बीच कुछ असमानताएँ भी होती हैं । चाहे वैयक्तिक सेवा कार्य की बात हो या समूह कार्य हो या समुदाय संगठन हो या समाज कल्याण प्रशासन हो या सामाजिक शोध हो या फिर सामाजिक क्रिया हो, इन सबमें आपस में किसी न किसी रूप में जुड़ाव होता ही है। वैयक्तिक कार्य प्रणाली जहाँ व्यक्ति (सेवार्थी) की समस्या का समाधान करने में सहायता करती है तो वहीं समूह कार्य समूह के माध्यम से व्यक्ति की सहायता करने का प्रयास करती है। जिसमें केंद्र बिंदु समूह होता है। सामुदायिक संगठन के माध्यम से समुदाय की समस्या को ज्ञात कर उसे समाधान करने का प्रयास किया जाता है, कहीं न कहीं इन सबमें व्यक्ति की ही सहायता किसी न किसी रूप में की जाती है। अतः इस प्रकार कहा जा सकता है कि समाज कार्य की ये प्रणालियां आपस में किसी-न-किसी रूप में जुडी हुई हैं और इनका विकास निरंतर समाज के क्षेत्र में किया जाने लगा है किंतु आज आवश्यकता है कि इन प्रणालियों के विकास एवं विस्तार हेतु सामाजिक कार्यकर्ताओं को एक पहल करनी आवश्यकता होगी जिससे की इन्हें और अधिक बेहतर बनाया जा सके जिनका प्रयोग समाज कार्य के क्षेत्र में ही नही वरन समस्या ग्रस्त प्रत्येक क्षेत्र में किया जाए ।

4.5 बोध प्रश्न

प्रश्न .01- सामाजिक समूह कार्य समाज कार्य की एक प्रणाली है इस कथन की पुष्टि कीजिए।

प्रश्न.02- सामाजिक समूह कार्य एवं समाज कार्य की अन्य प्रणालियों के साथ किस प्रकार अंतसंबंध रखती है ? समझाइए।

प्रश्न.03- वैयिक्तिक कार्य प्रणाली और सामाजिक समूह कार्य प्रणाली के मध्य अंतर स्पष्ट कीजिए।

प्रश्न.04- समाज कार्य की अन्य प्रणालियाँ किस प्रकार से एक-दूसरे के साथ जुड़ी हुई है स्पष्टकीजिए।

प्रश्न.05-समाज कार्य की सहायक प्रणालियों के साथ समूह कार्य को स्पष्ट कीजिए।

4.6 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

1. Brown.E.L.(1942)*Social work as a Profession*,New York : russel Sage Foundation,.p.24.
2. रिचमंड,मेरी (1917). *हाट इज़ सोशल वर्क*. न्यूयोर्क: रसेलसेल फाउण्डेसन।
3. पर्लमैन,हेलिन हेरिस,(1957). *सोशल केस वर्क, ए प्रावलम साल्विंग प्रोसेस*. शिकागों: दि यूनिवर्सिटी आफ प्रेस।
4. डनहम, आर्थर, (1947). *एडमिनिस्ट्रेशन आफ सोशल एजेन्सीज*. न्यूयोर्क :सोशल वर्क इयर बुक,ऐसोसिएशन।

5. शास्त्री,राजाराम (1970). *समाज कार्य*. लखनऊ: हिन्दी समिति सूचना विभाग।
6. Millerson,G.,**(**1964**).** *The Quality association***.** London**:** Routledge and Kegan Paul Ltd.
7. Richmond**,** Marry**(**1922**).** *What is social case work***.** New York **:**Russell sage Foundation
8. इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विशवविद्यालय(2010).*समूहों के साथ कार्य करना.* दिल्ली: समाज कार्य विद्यापीठ
9. सिंह, ए.एन. एवं सिंह ए.पी. (2008). *समाज कार्य*. लखनऊ: हिंदी संस्थान।
10. मिश्रा, प्रयागदीन (2008). *सामाजिक सामूहिक कार्य*.लखनऊ : हिंदी संस्थान
11. कुलसचिव उत्तराखण्ड मुक्त विष्वविद्यालय की ओर से मुद्रित एवं प्रकाशित समूह समाज कार्य।
12. तेज, संगीता. पाण्डेय तेजस्कर (2010).*समाज कार्य*.लखनऊ: जुबली एच फान्डेशन
13. सिंह, ए.एन., सिंह, नीरजा ,संजय,मिश्रा,सुषमा (2012). *सामूहिक कार्य*.हल्दानी : उत्तरायन प्रकाशन

खंड 4

समूह कार्य सक्रियता

इकाई 1 समाज समूह कार्य के सिद्धांत एवं प्रारूप

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 सामाजिक समूह कार्य में प्रयुक्त किए जाने वाले प्रमुख सिद्धांत

1.3 सामाजिक समूह कार्य में प्रयुक्त किए जाने वाले प्रारूप (मॉडल)

1.4 सारांश

1.5 बोध प्रश्न

1.6 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

1.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप:-

- ❖ समूह कार्य में प्रयुक्त किए जाने वाले प्रमुख सिद्धांतोंका वर्णन सकेंगे ।
- ❖ सामाजिक समूह कार्य के विभिन्न प्रारूपों को वर्गीकृत कर सकेंगे ।
- ❖ सामाजिक समूह कार्य की मुख्य विशेषताएँ और प्रमुख क्षेत्रों कोरेखांकित कर सकेंगे।

1.1 प्रस्तावना

मानव समाज के इतिहास में सभी देशों एवं युगों में निर्धन, निराश्रित, अपंग, अनाथ, बेरोजगार, रोगी व्यक्ति रहे हैं तथा ऐसी अनेक समस्याएँ आई जहाँ इन व्यक्तियों को अनेक कठिनाईयों का सामना करना पड़ा है। अतः इन व्यक्तियों की समस्यों का समाधान करने तथा इनके परेशानियों को समझने के लिए आदिकाल से प्रयास किए जा रहे हैं, समाज कार्य की उत्पत्ति इन्हीं प्रयासों के फलस्वरुप हुई है। मानव और समाज पूर्णरूप से एक-दूसरे पर आश्रित है। जिस प्रकार समाज ने मनुष्य को अनेक प्रकार के मानवीय अस्तित्त्व प्रदान किए वहीं समाज द्वारा अनेक प्रकार की समस्याएँ जैसे बेरोजगारी आदि समस्याएँ भी व्याप्त है। परंतु आज समाज कार्य के लिए केवल दया, करुणा, प्रेम की भावना ही पर्याप्त नहीं है। आज समाज कार्य ने व्यवसाय का रूप ले लिया है। सामाजिक समूह कार्य समाज कार्य की एक प्रणाली के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। समाज कार्य में कुछ सिद्धांतोंका पालन किया जाता है। जिनके अभाव में व्यावसायिक समाज कार्य को नहीं किया जा सकता। इसी भाँति समूह कार्य के भी कुछ महत्त्वपूर्ण सिद्धांत होते हैं जिनका पालन किए बिना कोई भी सामाजिक कार्यकर्ता समूह कार्य प्रक्रिया को संपन्न नहीं कर सकता। सिद्धांतों का पालन कार्य ऐच्छिक नहीं होता, क्योंकि इन सिद्धांतों को प्रयोग में लाए बिना लक्ष्यों को प्राप्त नहीं किया जा सकता । इसलिए इस इकाई में हम सामाजिक समूह कार्य के विभिन्न सिद्धांतों और प्रारूपों पर चर्चा करेंगे।

1.2 सामाजिक समूह कार्य में प्रयुक्त किए जाने वाले प्रमुख सिद्धांत

सामाजिक सामूहिक कार्य के निम्नलिखित आधारभूत सिद्धांत हैं जिनके आधार पर समूह कार्य में लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सकता है:-

नियोजन का सिद्धांत :-

नियोजन किसी भी कार्य को करने का एक सुव्यवस्थित और सुनियोजित तरीका है जिससे लक्ष्यों कोआसानी से प्राप्त किया जा सकता है। नियोजन के अंतर्गत विद्यमान स्थितियों तथा संभावित परिवर्तनों की उपयोगिता को ध्यान में रखकर एक व्यवस्थित तथा सुसंगठित रूपरेखा तैयार की जाती है जिससे भविष्य के परिवर्तनों को अपेक्षित लक्ष्यों के

अनुरूप नियंत्रित, निर्देशित तथा संशोधित किया जा सके। समूह का निर्माण हमेशा ही सुनियोजित होना चाहिए। सामूहिक कार्यकर्ता द्वारा सुनियोजित तरीके से समूह निर्माण का कार्य किया जाता है। यदि सामूहिक कार्यकर्ता नियोजित तरीके से कार्य करेगा तो निश्चित ही उसे लक्ष्य प्राप्त होगी। लक्ष्य नियोजन का सिद्धांत लक्ष्य प्राप्ति में अत्यंत ही सहायक होता है। कार्यकर्ता निम्नलिखित बिंदु ओं के माध्यम से ही कार्य करता है जिससे उसे कार्य करने में आसानी होती है-

- ❖ विकास के लक्ष्यों एवं मूल्यों का निर्धारण करना।
- ❖ परिस्थितियों का विश्लेषण करना।
- ❖ वर्तमान सेवाओं में गुणात्मक एवं परिमाणात्मक दृष्टि से पाई जाने वाली कमियों की जानकारी।
- ❖ विशिष्ट उद्देश्यों तथा रणनीतियों का निर्धारण।
- ❖ आगत लक्ष्यों, क्षेत्रों, साधन आदि का निर्धारण।
- ❖ प्रशिक्षण तथा संचार प्रक्रिया की सीमाओं की जानकारी।
- ❖ क्रिया नियोजन तथा कार्यों का दस्तावेजीकरण करने के महत्त्व का ज्ञान होना।
- ❖ कार्य करने हेतु आवश्यक उपकरणों के निर्माण की जानकारी होना।
- ❖ संभावित साधनों-संसाधनों के उपलब्धता की जानकारी।
- ❖ शक्ति के साधनों का निर्धारण।
- ❖ समूह के सदस्यों की आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक, भौगोलिक और वर्तमान स्थिति के ज्ञान, अनुभव एवं जीवन स्तर की पहचान करना।

इसके अतिरिक्त समूह कार्यकर्ता को समूह सदस्य संख्या, शक्ति के स्त्रोत, उद्देश्य तथा लक्ष्यों के बीच संतुलन स्थापित हो यह ध्यान रखना चाहिए।

लक्ष्यों की स्पष्टता का सिद्धांत :-

सामुदायिक कार्यकर्ता के लिए स्पष्ट लक्ष्यों का ज्ञान होना नितांत आवश्यक होता है जिससे वह कार्य को आसानी से कर सके। इससे स्पष्ट हो जाता है कि कौन-सा सदस्य किस प्रकार का कार्य करेगा, वह क्या कार्य करेगा? कब करेगा? और कैसे करेगा? यह सब कुछ स्पष्ट हो जाता है जिससे प्रत्येक सदस्य को कोई गलतफहमी नहीं होती है कि उसे क्या करना है? यह संपूर्ण क्रिया कार्यपूर्णता के लिए आवश्यक है। लक्ष्यों की स्पष्टता निम्न लिखित कारणों से भी महत्त्वपूर्ण मानी जाती है -

- ❖ लक्ष्य ही कार्यकर्ता को अपने मार्ग में चलने के लिए हमेशा प्रेरित करते रहते हैं तथा हमेशा आगे बढ़ने के लिए उत्साहित करते हैं।
- ❖ लक्ष्यों की स्पष्टता उपलब्ध साधनों का समुचित उपयोग करने पर बल देती है।
- ❖ लक्ष्यों पर ही कार्य निर्भर करते हैं।
- ❖ कार्य का प्रारंभ उसका स्वरूप तथा प्रकृति उद्देश्यों पर निर्भर होने के कारण लक्ष्यों का स्पष्ट होना आवश्यक होता है।

- ❖ लक्ष्य स्पष्ट होने से नियंत्रण एवं निर्देशन दोनों बेहतर रहतेहैं।
- ❖ समूह सदस्यों की भागीदारी यथोचित होती है।
- ❖ मूल्यांकन करने में आसानी होती है।

समूह कार्य में लक्ष्यों की स्पष्टता से कार्यकर्ता के लिए यह जानना अत्यंत आवश्यक होता है कि सामूहिक अनुभव से प्रत्येक सदस्य को क्या प्राप्त करना चाहिए और उनमें किस प्रकार के अनुभव प्राप्त करने की क्षमता है? इससे समूह सदस्यों की शक्तियों एवं कमजोरियों को ज्ञात किया जा सकता है। उदाहरण के लिए यदि सामूहिक कार्यकर्ता किसी विशेष स्थान पर समूह कार्य द्वारा स्वच्छता कार्यक्रम चलाना चाहता है तो सर्वप्रथम समूह के सदस्य यह स्वयं अनुभव करें कि वे स्वयं इस दिशा में प्रयत्न करें अन्यथा यह कार्यक्रम सफल नहीं हो पाएगा । जब तक समूह का प्रत्येक सदस्य यह महसूस न कर ले कि यह मेरा काम है न कि दूसरे का, तब तक लक्ष्यों को प्राप्त नहीं किया जा सकता। इस मानसिकता से कार्यों द्वारा लक्ष्यों को आसानी से प्राप्त किया जा सकता है।

सोद्देश्य संबंध का सिद्धांत:-

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है वह समाज में ही रहकर अपना जीवन-यापन कर सकता है इसी आवश्यकता को ध्यान में रखकर वह संबंधों का निर्माण करता है एवंअपनी आवश्यकताओं की संतुष्टिसंबंधके माध्यम से करता है। अतः प्रत्येक सामाजिक स्थिति मे संबंधोंका विशेष महत्त्व है। सामूहिक कार्य में भी कार्यकर्ता तथा समूह के बीच संबंधोंका अत्यंत महत्त्व है लेकिन यह संबंध उद्देश्यों के आधार पर होना चाहिए जिससेआगे किसी भी प्रकार का कोई मतभेद कार्यकर्ता और सदस्यों के बीच उत्पन्न ना हो। समूह के सदस्य निश्चित किए जाएँ तथा उन्हीं के आधार पर संबंधों की स्थापना एवं विश्लेषण हो। कार्यकर्ताओं के लिए यहभी ध्यान देने वाली बात यह है कि कार्यकर्ता एवं समूह के बीच संबंध तभी घनिष्ठ होंगे जब कार्यकर्ता समूह सदस्यों को जैसे हैं वैसे ही स्वीकार करे। सामान्यतः सोद्देश्य संबंध के निम्नलिखित लक्षण होते हैं-

- ❖ सर्वप्रथम कार्यकर्ता को समूह द्वारा स्वीकार किया जाए।
- ❖ समूह को कार्यकर्ता द्वारा स्वीकार किया जाए।
- ❖ स्नेह एवं आत्मसंचार का पूर्ण भावव्याप्त हो।
- ❖ समस्या सुलझाने की इच्छा का विकास हो।
- ❖ समूह सदस्यों का भागीदारी तथा कार्यकर्ता द्वारा व्यावसायिक ज्ञान का उपयोग।
- ❖ सदस्यों की इच्छा को सर्वोपरि माना जाए एवं उन्हें आत्मनिश्चय का अधिकार हो।
- ❖ सदस्यों को आत्म निर्णय का अधिकार हो।
- ❖ सामूहिक रूचि तथा भागीदारी में निरंतर वृद्धि हो।
- ❖ कार्यकर्ता द्वारा सदस्यों की बातों एवं शिकायतों को ध्यानपूर्वक सुनाजाए।
- ❖ कार्यकर्ता को सदस्यों की सामाजिक, सांस्कृतिक स्थिति का ज्ञान हो।
- ❖ कार्यकर्ता को उसी बौद्धिक स्थिति के आधार पर बात करना चाहिए जिस बौद्धिक स्थिति का समूह-सदस्य हो।

निरंतर व्यक्तिकरण का सिद्धांत:-

प्रत्येक व्यक्ति अपने अलग-अलग पर्यावरण, ज्ञान एवं वंशानुक्रम से भिन्न होता है। प्रत्येक व्यक्ति की अपनी अलग विशिष्टता होती है अतः कार्यकर्ता का दायित्व होता है कि वह प्रत्येक सदस्य की ओर अपना ध्यान रखें जिससे समूह अपने लक्ष्य पर अग्रसर रहे। सामाजिक समूह कार्य में निरंतर व्यक्तिकरण का सिद्धांत एक महत्वपूर्ण सिद्धांत के रूप में जाना जाता है जिसके माध्यम से समूह कार्यकर्ता ऐसे समूह के सदस्यों की सहायता करता है, जो सदस्य समूह में सामंजस्य स्थापित नहीं कर सकते हैं, उन्हें समूह के सदस्यों के साथ सामंजस्य स्थापित करने के लिए प्रेरित करता है। इसके अलावा समूह सदस्यों की विभिन्न इच्छाओं और आवश्यकताओं को भी वह निरंतर व्यक्तिकरण के माध्यम से जान सकता है। वैयक्तीकरण करने के लिए कार्यकर्ता में निम्नलिखित लक्षणों का होना अत्यंत आवश्यक है -

- ❖ अभिमत तथा पूर्वाग्रहों से स्वतंत्र होना चाहिए।
- ❖ मानव-व्यवहार का ज्ञान होना चाहिए।
- ❖ सुनने तथा अवलोकन करने की क्षमता होनी चाहिए।
- ❖ समूह सदस्यों की भावनाओं को समझने की योग्यता होनी चाहिए।
- ❖ सदस्यों में आत्मीयता की भावना उत्पन्न करने की योग्यता होनी चाहिए।
- ❖ समस्या के अध्ययन, निदान तथा चिकित्सा में समूह सदस्यों का सहयोग प्राप्त करने की योग्यता होनी चाहिए।

कार्यकर्ता व्यक्तिकरण के माध्यम से सामूहिक सदस्यों की कठिनाइयों को ध्यान में रखता है और उनके अनुसार कार्यक्रम आयोजित करता है जिससे कि प्रत्येक सदस्य कार्यक्रम का हिस्सा बन सके।

निर्देषित सामूहिक अंतःक्रिया का सिद्धांत:-

संपूर्ण समूह कार्य प्रक्रिया सामूहिक गतिविधियों के माध्यम से नियोजित की जाने वाली प्रक्रिया है जिसके माध्यम से संपूर्ण कार्य संपन्न किए जाते हैं। यह सामूहिक प्रक्रिया कार्यकर्ता और समूह सदस्यों के मध्य होने वाली अन्तःक्रियाओं पर ही निर्भर करती है। इन अन्तः क्रियाओं का स्वरूप इस बात पर निर्भर करता है कि समूह के सदस्य तथा सामूहिक कार्यकर्ता की इच्छाएँ, क्षमताएँ तथा कार्य के ढंग इत्यादि किस प्रकार के हैं? जहाँ कहीं भी दो पक्ष विद्यमान होते हैं, अन्तः क्रियाएँ होती ही है। यदि ये अंतः क्रियाएँ निर्देशित न हो अर्थात इनकी दिशा सही न हो तो सामूहिक उपलब्धियों को प्राप्त नही किया जा सकेगा। इसलिए कार्यकर्ता का कार्य रहता है कि वह किस प्रकार समूह सदस्यों एवं कार्यकर्ताओं के मध्य होने वाली अन्तःक्रियाओं को सही दिशा प्रदान करे।क्योंकि समूह के कार्य एवं उद्देश्य समूह में होने वाली अन्तः क्रिया का स्वरूप तथा इनको दिशा समूह के सदस्यों तथा कार्यकर्ताओं की क्षमताओं, इच्छाओं, आशाओं तथा कार्य करने के ढंग पर निर्भर रहती है। अतः कार्यकर्ताओं को इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि समूह के सदस्यों मे आपसी संबंध सकारात्मक रूप में हो तथा अन्तःक्रिया का प्रभाव एक ही दिशा में हो अन्यथा नकारात्मक अंतःक्रिया समूह कार्य प्रक्रिया में व्यवधान उत्पन्न कर सकती है।

जनतंत्रीय सामूहिक आत्मनिश्चयीकरण का सिद्धांत :-

जनतंत्रीय सामूहिक क्रिया में कार्यकर्ता समूह का, समूह के लिए, समूह द्वारा कार्य करने पर कार्यकर्ता द्वारा बल प्रदान किया जाता है। कार्यकर्ता को इस आधार पर तैयार करना चाहिए कि वह स्वयं अपने निर्णय लेने में सक्षम हो सके, अपनी क्षमताओं एवं योग्यताओं के अनुरूप कार्य कर सके। यह सिद्धांत इस तथ्य पर आधारित होता है कि समूह तथा व्यक्ति को सामाजिक उत्तरदायित्व ग्रहण करने के अवसर उपलब्ध कराए जाएँ। लेकिन यह भी निर्धारित करना अत्यंत आवश्यक है कि उत्तरदायित्व किस प्रकार का होगा और किन आधारों में दिया जायेगा यह निर्धारित करना कार्यकर्ता के लिए आवश्यक होगा। सामूहिक कार्य प्रक्रिया में समूह के प्रथम चरण से लेकर समापन तक संपूर्ण प्रक्रिया

में जो निर्णय लिए जाते हैं वे जनतंत्रीय प्रणाली के आधार पर ही सुनिश्चित किए जाते हैं। संपूर्ण प्रक्रिया में जो निर्णय लिए जाते हैं वह सामूहिकता की भावना को ध्यान में रखकर ही लिए जाते हैं। समूह का प्रत्येक सदस्य इसमें बराबर का भागीदार होता है। वे स्वयं यह निर्धारित करते है कि किस प्रकार कार्य करना है और क्या निर्णय लेना है, कार्यकर्ता केवल सही दिशा देने का कार्य करता है। इस प्रक्रिया के संदर्भ में प्रो. राजाराम शास्त्री ने कहा था कि – 'समूह अथवा समूह के सदस्य स्वयं से, स्वयं के बारे में और स्वयं के लिए जो कुछ भी, जब भी करें, वह इस प्रकार होना चाहिए कि उनमें से प्रत्येक की भावना को आघात पहुँचाते हुए तथा उन्नत समाजगत स्वीकृति मूल्यों तथा प्रेम, सौहार्द, शालीनता, सज्जनता से युक्त होकर करें, अर्थात आपस में शिष्ट आचार-विचार के माध्यम से प्रकृतिगत विकृतियों के दमन और सद्वृत्तियों के विकास द्वारा करें। जब कार्य में भी इस अपेक्षित स्थिति में कमजोरी के लक्षण दिखें तो सामूहिक कार्यकर्ता को भी कथित जनतांत्रिक तरीकों से ही समय सेवार्थियों अथवा सदस्यों के ज्ञान-धरातल को उन्नत कर या परिवेशगत परिमार्जन द्वारा अन्तःक्रियाओं की स्थिति एवं स्वरूप को ऐसी दिशा देनी चाहिए जो अधिकाधिक अधिकारी हों।

लोचदार कार्यात्मक संगठन का सिद्धांत:-

लोचदार कार्यात्मक संगठन सिद्धांत के द्वारा समूह कार्यकर्ता इस प्रकार का प्रयास करता है किकिसी भी गतिविधि को इतना सरल व आसान बनाया जाए जिससे प्रत्येक सदस्य गतिविधियों का हिस्सा बन जाए और समय व आवश्यकतानुसार कार्यक्रम में परिवर्तन संभव हो सके। समूह कार्य में समूह का निर्माण कुछ विशिष्ट उद्देश्यों के साथ किया जाता है। इन्हीं उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए कुछ औपचारिक संगठनों का निर्माण किया जाता है, क्योंकि इन्हीं औपचारिक संगठनों के माध्यम से समूह सदस्यों की शक्तियाँएक दिशा में प्रवाहित होती हैं। साथ-ही-साथ सामूहिक जीवन में भी स्थायित्व आता है। कुछ समूहों में भिन्नता भी होती है। समूहों में समयानुसार आवश्यकताएँबदलती रहती है तथा नवीन इच्छाओं का भी जन्म होता हैअतः समूह संगठन की रचना में लचीलापन होना अत्यंत ही आवश्यक होता है।

प्रगतिशील कार्यक्रम अनुभवों का सिद्धांत:-

समूह कार्य एक प्रगतिशील प्रक्रिया है और यह प्रक्रिया बिना रचनात्मक कार्यक्रमों के संभव नहीं हो पाती है। जब समूह कार्य प्रक्रिया को प्रारंभ किया जाता है और उसमें कार्यक्रमों को प्रारंभ किया जाता है तो ध्यान देने वाली बात यह होती है कि कार्यक्रम इस प्रकार का हो जिसमें समस्त रुचियाँ, आवश्यकताएँ, अनुभव, निपुणता तथा दक्षता होती जाय जैसे -जैसे इन शक्तियों में विकास होता जाएगा वैसे-वैसे कार्यक्रमों में भी परिवर्तन किया जाएगा। प्रत्येक स्तर पर समूह को कार्यक्रम का हिस्सा बनने के लिए प्रेरित किया जाता है जिससे कि प्रत्येक सदस्य कार्यक्रम का हिस्सा बन जाए और सदस्यों में आत्मनिर्णय की क्षमता का विकास हो संपूर्ण प्रक्रिया प्रगतिशील समूह एवं कार्यकर्ता की योग्यता पर निर्भर करता है। अतः प्रगतिशील कार्यक्रम अनुभवों के सिद्धांत को समूह कार्य मेंएक विशिष्ट स्थान दिया जाता है।

साधनों के उपयोग का सिद्धांत :- किसी भी प्रक्रिया में साधनों का उपयोग एक सामाजिक कार्यकर्ता के लिए अत्यंत ही आवश्यक होता है। इस प्रकिया द्वारा कार्यकर्ता यह अनुभव प्राप्त करता है कि किसी भी समूह या सामुदायिक प्रक्रिया में उपलब्ध साधनों का उपयोग कैसे किया जाए जिससे लक्ष्य को आसानी से प्राप्त किया जा सके। साधनों का उपयोग कुशलता पूर्वक करना चाहिए जिससें किसी भी प्रकार की कोई समस्या उत्पन्न न हो और साधनों का उचित उपयोग किया जा सके। संस्था एवं संपूर्ण वातावरण और समुदाय मिलकर बहुतसे साधन रखते हैं। सामाजिक सामूहिक कार्य में संस्था तथा समुदाय के इन साधनों का प्रयोग व्यक्तियों और समस्त समूह के हित के लिए

किया जाता है। कार्यकर्ता की भूमिका केवल समूह में ही नहीं होती वरन वह समूह से बाहर भी उतनी ही भूमिका को अदा करता है। वह समुदाय से संबंधित सभी आवश्यक जानकारी कोएकत्रित करता है तथा समस्त सदस्यों को वह जानकारी साझा करता है जिससें वह एक प्रकार से मध्यस्थता की भूमिका भी अदा करता है और आवश्यकता पड़ने पर समूह को उपलब्ध साधनों के उपयोग के लिए प्रेरित भी करता है।

मूल्यांकन का सिद्धांत:- मूल्यांकन एक सतत् और निरंतरचलने वाली प्रक्रिया है। यह प्रक्रिया कार्य प्रारंभ होने के साथ ही प्रारंभ हो जाती है। इस प्रक्रिया द्वारा यह तय किया जाता है कि कार्य में कितनी सफलता प्राप्त हुई है और कार्य के दौरान क्या कमियाँ रह गई हैं जिसे कार्यकर्ता द्वारा दूर करने का प्रयास किया जाना है। यह एक निर्णय करने वाली प्रक्रिया भी है, जो निश्चित करती है कि समूह कार्यकर्ता तथा संस्था का क्या उत्तरदायित्व है, उनको पूरा करने की कितनी क्षमता है, क्या-क्या शक्तियाँ है तथा क्या-क्या कमजोरियाँ हैं, कौन-कौन से कार्य रचनात्मक सहयोग प्रदान करते हैं। मूल्यांकन के द्वारा समूह की अंतःक्रियाओं, समूह की शक्तियों ,सदस्यों की कमजोरियों, समूह के अनुभव एवं उनकी क्षमताओं काआँकलन किया जाता है। समूह कार्यकर्ता निम्न लिखित तीन स्थितियों का मूल्यांकन करता है -

- ❖ कार्यक्रम का मूल्यांकन
- ❖ सदस्यों की भागीदारी का तथा अनुभव का मूल्यांकन
- ❖ कार्यकर्ता द्वारा स्वयं अपनी भूमिका का मूल्यांकन ।

उपर्युक्त समूह कार्य के सिद्धांत समूह कार्य को सरलतापूर्वक संपन्न करने में कार्यकर्ता की सहायता करते हैं जिससे समूह कार्य प्रक्रिया को सरलतापूर्वक संपन्न किया जा सकता है। ये सिद्धांत समूह कार्यकर्ता को अनुकूल दिशा प्रदान करते हैं। ये कोई स्थिर सिद्धांत नहीं है वरन आवश्यकतानुसार परिवर्तनशील भी है अनुभवों, ज्ञान निपुणता तथा प्रविधियों के साथ इनमें बदलाव होते रहते हैं। परंतु यह वे साधन हैं जिनका उपयोग कर कार्यकर्ता लक्ष्य की प्राप्ति आसानी से कर सकता है।

1.3 सामाजिक समूह कार्य में किए जाने वाले प्रारूप (मॉडल)

शुरुआती दिनों में समूह कार्य का प्रयोग केवल परंपरागत विचार से निवारण-रोकथाम के लिए किया जाता था किंतु आज समूह कार्य का दायरा अत्यंत विस्तृत हो गया है और यह समाज के प्रत्येक समूह समस्याग्रस्त क्षेत्रों में कार्य करने लगा है। अनेक विद्वानों ने समूह कार्य करने की अपनी अलग-अलग प्रविधियों को बनाया है और नए-नए सिद्धांतों के साथ-साथ नए-नए प्रारूपों का भी निर्माण किया है जिससे समूह कार्य को वैज्ञानिक तरीके से किया जा सके। अनेक परंपरागत और समकालीन प्रारूप हैं जो निरंतर समूह कार्य में प्रयुक्त किए गए है किंतु आज जिन महत्त्वपूर्ण प्रारूपों का समूह कार्य अभ्यास में प्रयोग किया जाता है उन प्रारूपों का विस्तृत उल्लेख किया जा रहा है।

पापेल और रॉथमैन (1966) ने तीन प्रमुख प्रतिरूपों को प्रतिपादित किया है। सामाजिक लक्ष्य प्रारूप, उपचारी प्रारूप और पारस्परिक प्रारूप। यह समाज समूह कार्य परंपरा के प्रमुख प्रतिरूप हैं।

सामाजिक लक्ष्य प्रारूप (The Social goal model)

सामाजिक लक्ष्य प्रारूप का उल्लेख क्वायले, केसर, फिलिप्स, कोनोप्का, कोहेन, मिलर, जिन्सवर्ग तथा क्लीन के लेखों में किया गया है। इन उल्लेखों में इस प्रारूप को मुख्यतः दो प्रत्ययों में बांटा गया है प्रथम सामाजिक चेतना प्रत्यय (Social consciousness) और दूसरा सामाजिक उत्तरदायित्व प्रत्यय (Social Responsibility) सामूहिक कार्य का मुख्य उद्देश्य नागरिकों को ज्ञानवान, उत्तरदायित्वपूर्ण एवं दक्षतापूर्ण बनाना है । इस प्रारूप का यह कहना है कि सामाजिक क्रियाओं तथा व्यक्ति के मनोवैज्ञानिक स्वास्थ्य में एकरूपता होती है।

प्रत्येक व्यक्ति समाज की वर्तमान जीवनधारा में कुछ-न-कुछ योगदान करने की क्षमता रखता है। अतः इस प्रारूप का विश्वास है कि उसकों अपने सामाजिक योगदान के लिए अवसरों की उपलब्धि तथा सम्प्रेरक तत्वों की आवश्यकता होती है । सामाजिक भागीकरण चिकित्सात्मक रूप में इसी प्रारूप के अंतर्गत किया जाती हैं । इस प्रारूप के द्वारा कार्यकर्ता को प्रभावी एवं महत्वपूर्ण व्यक्ति माना गया है जो कि समूह कार्य में अपना विशेष योगदान दे सकता है क्योंकि परस्पर घनिष्ठ संबंधों के आधार पर ही सामाजिक चेतना तथा सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना विकसित होती हैं । संयुक्त राज्य् अमेरिका में1930 के दशक में हुए आश्रय सदन आंदोलन, सामाजिक आंदोलन, मजदूर यूनियन आंदोलन और महिलाओं के आंदोलन सामाजिक लक्ष्य प्रारूप के स्रोत हैंसुलीवेन-ईटीएल, 2003)। यह समुदाय के सदस्यों को सामाजिक मुद्दों के समाधान करने के कार्यों में सहायता करता है तथा समाज के दबेकुचले लोगों के लिए सामाजिक परिवर्तन लाने के बारे में सहयोग प्रदान करता है। यह प्रतिरूप सामाजिक मूल्यों को स्थापित करने के लिए विशेष रूप से बल देता है। कोहेन और मुलेन्द्र (1999) दावे के साथ कहते हैं कि सामाजिक लक्ष्य प्रतिरूप को हाल के साहित्य में सामाजिक क्रिया समूह प्रतिरूप के रूप समझा जाता है। समूह कार्य में संस्था का महत्वपूर्ण स्थान होता है क्योंकि संस्था एक ऐसा माध्यम होता है जो कि स्थानीय स्तर पर व्यक्तियों की सहायता करता है अतः इसी आधार पर यह लोगों में सामाजिक चेतना जाग्रित करने का भी प्रयास आसानी से कर सकता है। प्रारूप द्वारा सामुदायिक स्तर पर सामूहिक कार्य की सेवाओं को भी उपयोग में लाया जाता हैं। सामुदायिक अध्ययन को करने के पश्चात यह सामाजिक क्रिया का भी सूत्रपात करता है । इस प्रारूप का मुख्य उद्देश्यों समाज में परिवर्तन लाना है।

चिकित्सा संबंधी प्रारूप(The **climical** model) :-

चिकित्सा संबंधी प्रारूप का विकास रेडेल, कोनोप्का, स्लोअन, फिशर, तथा गैन्टनर के कार्यों से हुआ। लेकिन इस प्रारूप का व्यवस्थित रूप राबर्ट विन्टर ने दिया । सामाजिक सामूहिक कार्यकर्ता का यह दायित्व होता है कि वह वैयक्तिक एवं समूह की समस्याओं एवं आवश्यकताओं को समझे औरचित प्रकार से उसका समाधान निकालने का प्रयास करे। इस हेतु कार्यकर्ता को व्यावसायिक समाज कार्य के दौरान अनेक तकनीकी कुशलताओं से अवगत होना होता है जिससे वह अभ्यास के दौरान प्रत्येक समस्याओं का सामना करने के लिए सक्षम बन जाएं। चिकित्सा संबंधी प्रारूप क्लीनिकल प्रारूप जैसा ही है जिसमें समूह में समायोजन स्थापित न कर सकने वाले व्यक्ति को समायोजन करना सिखाया जाता है। समूह को एक पत्र के रूप में उपयोग में लाया जाता है। इस प्रकार का समूह पहले से ही निश्चित होता है तथा कार्यकर्ता अपने कार्यक्रमों के माध्यम से उपचारात्मक कार्य करता है । इस प्रारूप का मुख्य उद्देश्य व्यक्ति के मन मस्तिष्क में उत्पन्न विकारों को शांत करना एवं उन्हें मुख्यधारा में वापस लाना है। इसमें समूह कार्यकर्ता अपने अनुभवों कुशलताओं और तकनीकी के माध्यम से विभिन्न क्रियाकलापों द्वारा समूह को निर्देशित करता है।

- ❖ इसमें कार्यकर्ता मध्यस्थता की भूमिका निभाता है और समूह एवं व्यक्ति की आवश्यकताओं का निर्धारण करता है।
- ❖ समूह कार्यकर्ता एक प्रवक्ता के रूप में कार्य करता है और वह समाज के मूल्यों के अनुरूप क्रियाओं को निर्देशित करता है।
- ❖ वह एक प्रेरक के रूप में कार्य करता है साथ ही साथ समूह के लक्ष्यों एवंउद्देश्यों के निर्धारण में सहायता करता है।
- ❖ वह एक सहायक के रूप में कार्य करता है और लक्ष्य प्राप्ति हेतु समूह का मार्ग प्रशस्त करता है। इस प्रकार इस प्रारूप का प्रयोग कर चिकित्सीय संस्थाएँ और कार्यकर्ता व्यक्ति की समस्या को बेहतर तरीके से समझकर उसका समाधान प्रस्तुत कर सकता है।

परस्पर आदान-प्रदान का प्रारूप (The Reciprocal model) :-

परस्पर आदान-प्रदान प्रारूप का मुख्य बिंदु व्यक्ति और समाज दोनों होते हैं। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि यह प्रारूप सामाजिक लक्ष्य प्रारूप और चिकित्सीय संबंधी प्रारूप दोनों पर एक ही समय में अपनी प्रमुख चिंताओं व संबंधों को इंगित करता है(टाउट, 1992)। पापेल तथा रोथमैन (1966) के अनुसार, इस प्रतिरूप का मुख्य उद्देश्य आपसी सहायता प्रणाली को स्थापित करना है । हम जानते हैं कि समूह कार्य समाज कार्य की प्राथमिक प्रणाली के रूप में जाना जाता है जिसके द्वारा वह व्यक्ति और समूह की सहायता करता है। यह प्रारूप मुख्यतः इसी आधार पर कार्य करता है जिससे वह व्यक्ति तथा समूह दोनों के लिए समान रूप से सहायक हो।

समूह कार्यकर्ता की भूमिका को स्कवार्ट ने निम्नलिखित रूप से विभक्त किया है-

- ❖ सेवार्थी की पृष्ठभूमि को ढूँढ़ना जहाँ पर सेवार्थी की अपनी आवश्यकताओं का प्रत्यक्षीकरण तथा सामाजिक भागीदारी दोनों में समानता हो।
- ❖ सामान्य हित में बाधक समस्याओं को ढूँढ़ना।
- ❖ दृष्टिकोण में परिवर्तन लाना ।
- ❖ आवश्यकताओं को परिभाषित करना तथा सीमा का निर्धारण करना, जिसमें सेवार्थी- कार्यकर्ता व्यवस्था कार्य कर रही है।

चिंतन प्रारूप अथवा ध्यान प्रारूप :-

चिंतन प्रारूप अथवा ध्यान प्रारूप सन् 1961 में प्रकाश में आता है जिसका कार्य खुली व्यवस्था सिद्धांत है। मानवीय मनोविज्ञान एवं इससे संबंधित प्रमुख पक्षों पर यह प्रारूप प्रकाश डालता है। इस प्रारूप की कुछ प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैं-

- मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और यह समाज में ही रहकर अपना जीवन यापन करता है। अतः इसकी आवश्यकता की पूर्ति समाज में रहकर ही संभव है इसी कारण यह समाज एक दूसरे पर आश्रित है और इसकी आवश्यकताओं में हम एकदूसरे को पूरक के रूप में देखते हैं और जब इस संरचित व्यवस्था में कोई बाहरी शक्ति का प्रादुर्भाव होता है तब यह संरचना विछिन्न हो जाती है। परिणामतः संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।
- संघर्ष की स्थितियों से निपटने के लिए संबंधित समूह को अंत क्रिया करनी चाहिए और अपनी वस्तुस्थिति को समझ-बूझकर संसाधनों का सही ढंग से उपयोग करना चाहिए।
- इस प्रारूप में ध्यान को केंद्र बिंदु माना गया है अर्थात संबंधों(समूह के सदस्यों के मध्य) में एक-दूसरे पर विश्वास एवं आवश्यकता के प्रति चेतना का प्रसार। चूँकि कार्यकर्ता समूह समाज कार्य में सभी कार्यों की धुरी होता है इसलिए उसे समूह के सदस्यों में चिंतन को प्रोत्साहित करना चाहिए।
- यह समूह सदस्यों के मध्य संबंधों की एक कड़ी का काम करता है अर्थात हम की भावना को बलवती करता है।
- इस प्रारूप के द्वारा समूह के सदस्यों में व्याप्त तनाव, चिंता इत्यादि का निराकरण किया जाता है।

- आवश्यक लक्ष्यों एवं कार्यों को यह महत्त्व देता है जो कि सामूहिक भावनाओं पर आधारित होती है।
-

विकासात्मक प्रारूप

विकासात्मक प्रारूप को प्रतिपादित करने का श्रेय बन्सटेन (1965) को जाता है जिन्होंने बोस्टन यूर्निवसिटी के अन्य फैकल्टी सदस्यों के सहयोग से 1966 में यह प्रारूप का विकास किया गया। लावी (Laway) को इस प्रारूप का मुख्य कर्ता-धर्ता माना गया। इस प्रारूप में स्वतंत्रता को प्रमुखता दी गई है अर्थात समूह को स्वतंत्र होने देना चाहिए उस पर कोई दबाव न हो। इस प्रारूप की कुछ प्रमुखविशेषताएँ इस प्रकार हैं:-

- यह प्रारूप प्राथमिक रूप से समूह के सदस्यों की गत्यात्मकता एवं घनिष्ठता पर आधारित है।
- अध्ययन, निदान एवं उपचार की अवधारणा का उदय व्यक्ति एवं समूह के आयामों से होता है अर्थात समूह के सदस्यों के विषय में जानकारी एवं आवश्यकताओं की पहचान के पश्चात सामूहिक निदान तथा उपचार प्रक्रिया अपनाई जाती है।
- कार्यकर्ता समूह के अध्ययन, निदान एवं उपचार में स्वयं को शांत रूप से सम्मिलित करता है।
- कार्यकर्ता सामूहिक सदस्यों, संस्था एवं सामाजिक पर्यावरण की विभिन्न स्थितियों को सामान्य बनाए रखने का प्रयास करता है।

अंत में यह कहा जा सकता है कि सामाजिक लक्ष्य प्रारूप, चिकित्सा संबंधी प्रारूप, परस्पर आदान-प्रदान का प्रारूप, चिंतन प्रारूप अथवा ध्यान प्रारूप और विकासात्मक प्रारूप समूह समाज कार्य में प्रयुक्त किए जाने वाले ऐसे माध्यम हैं जिनकी सहायता से कार्यकर्ता समूह में गत्यात्मकता का प्रभाव प्रसारित करता है जिससे समूह लक्ष्य प्राप्ति में यह सहायक सिद्ध होता है।

1.4 सारांश

सामाजिक समूह कार्य में सिद्धांत और प्रारूपों का अत्यंत महत्त्वपूर्ण योगदान है जिनके अभाव में समूह कार्यकर्ता समूह गतिविधियाँ और कार्य संपन्न नहीं कर सकता। सिद्धांत वैज्ञानिक रूप से स्वीकृत तथ्यों के निकाय होते हैं जो कि व्यक्ति के व्यवहार को समझने में सहायता करते हैं और समूह प्रक्रिया को आगे बढ़ाने का कार्य करते हैं। सिद्धांत समूह कार्य को सरलतापूर्वक संपन्न करने में कार्यकर्ता की सहायता करते हैंजिससे समूह कार्य प्रक्रिया को सरलतापूर्वक संपन्न किया जा सकता है। ये सिद्धांत समूह कार्यकर्ताको अनुकूल दिशा प्रदान करते हैं। ये कोई स्थिर सिद्धांत नहीं हैंवरन आवश्यकतानुसार परिवर्तनशील भी हैं। अनुभवों, ज्ञान निपुणताओं तथा प्रविधियों के साथ इनमें बदलाव होते रहते हैं। परंतु ये वे साधन हैं जिनका उपयोग कर कार्यकर्ता लक्ष्य की प्राप्ति आसानी से कर सकता है। जहाँ तक प्रारूपों (मॉडल) का सवाल है, इनमें बहुत सारे परंपरागत हैं। कुछ समकालीन प्रारूप भी हैं। गरीबी उन्मूलन में 1960, 1970 तथा 1980 के दशक के दौरान चिकित्सकीय स्थापनों में भारी माँग देखी गई, और उस समय इस क्षेत्र में असंख्य नए प्रारूपों की घोषणा की गई। इसलिए समूह के साथ अभ्यास के लिए एक मॉडल चुनने के लिए अंतिम निर्णय लिया जाता है, वह बहुत महत्त्वपूर्ण होता है तथा अभ्यासकर्ता की क्षमता पर निर्भर करता है। प्रारूप चयन एक अत्यंत ही महत्त्वपूर्ण कार्य है जो कार्यकर्ता को बड़ी हीसावधानी के साथ करना चाहिए। प्रत्येक प्रारूप को जानकर एवं

समझकर यह उपयोग करना चाहिए जिससे समूह कार्य प्रक्रिया को आसानी से पूर्ण किया जा सके। अतः यह कहा जा सकता है कि समूह कार्य प्रणाली में सिद्धांतों एवं प्रारूपों का अत्यंत हीमहत्व है लेकिन इन सिद्धांतों एवं प्रारूपों का प्रयोग करना कार्यकर्ता की कुशलता पर अत्यधिक निर्भर करता है।

1.5 बोध प्रश्न -

प्रश्न 01. सामूहिक समाज कार्य में प्रयुक्त किए जाने वाले विभिन्नसिद्धांतों की व्याख्या कीजिए।

प्रश्न 02. निरंतर वैयक्तिकरण के सिद्धांत से क्या तात्पर्य है? समझाइए।

प्रश्न 03. सामूहिक समाज कार्य के विभिन्न प्रारूपों पर एक लेख तैयार कीजिए।

प्रश्न 04 सामूहिक समाज कार्य के किन्हीं दो प्रारूपों का विस्तार पूर्वक वर्णन कीजिए।

प्रश्न 05 चिकित्सा तथा चिंतन प्रारूप के मध्य अंतर स्पष्ट कीजिए।

प्रश्न 06 समूह समाज कार्य में सिद्धांतोंऔर प्रारूपों के महत्व पर प्रकाश डालिए?

1.5 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

- Specht,Harry and Anne,Vickery(1978). *Integrating Social Work Method*, London : George Allen&Unwin, pp.135-149.
- Sarri,Resemary(1964).*Diagnosis in Social Group work*,Ann Arbor: University of Michigan, School of Social Work
- Vinter, Robart D(1959). *Group Work : Perpectives and prospect Social Work with Groups*, Newyork :NASW
- www-en-wikipedia-org/wiki/group&oherelopment]www-ntp&Zentrum-at/nlptarteng-htme.
- प्रसाद मणिशंकर, सत्य प्रकाश, कुमार अरूण,कुमार संजय,सैफ मो.खान एवं सिंह अभव कुमार(2012) *यूजीसी नेट/जेआरएफ/स्लेट समाज कार्य*, दिल्ली: अरिहंत पब्लिकेशन (इण्डिया) लिमिटेड।
- इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय (2010). *साथ कार्य करना*, दिल्ली : समाज कार्य विद्यापीठ
- सिंह, ए.एन. एवं सिंह ए.पी. (2008). *समाज कार्य. लखनऊ*: हिंदी संस्थान।
- मिश्रा, प्रयागदीन (2008). *सामाजिक सामूहिक कार्य*. लखनऊ : हिंदी संस्थान ।
- इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय (2010) *समूहों के साथ कार्य करना*,दिल्लीः समाज कार्य विद्यापीठ।
- तेज संगीता एवं पाण्डेय तेजस्कर(2010). *समाज कार्य*. लखनऊ : जुबली एच फान्डेशन।
- सिंह, ए. एन., सिंह, नीरजा, संजय मिश्रा, सुषमा (2012). *सामूहिक कार्य*. हल्दानी : उत्तरायन प्रकाशन ।

इकाई 2 समूह विकास की अवस्थाएँ

इकाई रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 समूह विकास

2.3 समूह विकास की अवस्थाएँ

2.4 समूह विकास के चरण

1. प्रथम अवस्था : योजना और समूह निर्माण (आरंभिक चरण)
2. द्वितीय अवस्था : पर्यवेक्षण (आरंभिक सत्र)
3. तृतीय अवस्था : निष्पादन (कार्य चरण)
4. चतुर्थ अवस्था : मूल्यांकन (विश्लेषण चरण)
5. पंचम अवस्था : समापन (अंतिम चरण)

2.5 समूह विकास में समूह कार्यकर्ता की भूमिका

2.6 सारांश

2.7 बोध प्रश्न

2.8 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

2.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप -

1. समूह विकास की अवधारणा एवं आवश्यकता का वर्णन कर सकेंगे।
2. समूह विकास के चरण एवं अवस्थाओं को प्रदर्शित कर सकेंगे।
3. कार्यकर्ता की भूमिका को रेखांकित कर सकेंगे।

2.1 प्रस्तावना

हम जानते हैं कि समूह व्यक्तियों का ऐसा संग्रह है जो एक-दूसरे के साथ सामाजिक संबंध स्थापित करते हैं या हम कहें तो, जब दो या दो से अधिक व्यक्ति आपस में मिलते हैं तो एक-दूसरे पर प्रभाव डालते हैं और समूह का निर्माण करते हैं। यह प्रक्रिया निरंतर चलती रहती है। वर्तमान समय में समूह कार्य प्रक्रिया समाज कार्य की प्रमुख पद्धति के रूप में जानी जाने लगी है। दिनों-दिन इसका महत्त्व बढ़ता जा रहा है। मनुष्य किसी भी जाति, धर्म, आयु, वर्ग का क्यों न हो उसे अपना सामाजिक जीवन सुव्यवस्थित रूप से बिताने के लिए समूह के क्रिया-कलापों में भाग लेना पड़ता ही है। क्योंकि आवश्यकता ग्रस्त प्राणी होने के नाते मनुष्य की यह आवश्यकता होती है कि वह समूह के साथ मिलकर रहें और एक-दूसरे का साथ निभाता रहे। सामाजिक समूह कार्य न केवल संबद्धता की खुशी प्रदान करता है, अपितु सदस्यों को अपनी क्षमताओं का उपयोग करने और उन्हें बढ़ाने तथा स्वयं को विकसित करने के लिए एक अवसर भी प्रदान करता है। समूह कार्यकर्ता समूह की परस्पर संबंधी क्रियाओं औरकार्यक्रम संबंधी क्रियाओं को इस प्रकार कार्य करने के योग्य बनाता है, जिससे व्यक्ति का विकास और वांछित सामाजिक उद्देश्यों की प्राप्ति की जा सके। समूह कार्य के प्रारंभ होने से समापन तक कई अवस्थाओं से गुजरना पडता है जो समूह को प्रभावी बनाने के लिए आवश्यक है। इस इकाई के माध्यम से विद्यार्थी को समूह कार्य की विभिन्न अवस्थाओं और स्तर से अवगत कराया जाएगा।

2.2 समूह विकास

समूह विकास एक निरंतर और सततचलने वाली प्रक्रिया है जिसमें समूह में हमेशा ही परिवर्तन होतारहता है। समूह एक अवधि के पश्चात वह संपूर्ण परिपक्वता की ओर बढ़ने लगता है जिसमें मुख्य रूप से यह ध्यान दिया जाता है कि समूह के संबंधों में किस प्रकार का परिवर्तन हो रहाहै। समूह को यह अवसर प्रदान कराए जाते हैं कि वह अपनी जिम्मेदारियों को समझ सकें। समूह की रचना से लेकर समूह समापन तक संपूर्ण तथ्यों को बड़ी ही सहजता और सजगता के साथ कार्य करना पडता है जिससे समूह अपनी मूल शक्ति को प्राप्त कर सकें। समूह विकास के समय निम्नलिखित महत्त्वपूर्ण बातों का ध्यान रखना अत्यंत आवश्यक होता है-

1. समूह की नियमित बैठकों का आयोजन।
2. सदस्यों में परस्पर व्यापक संपर्क स्थापित करना।
3. सकारात्मक वार्तालाप एवं हँसी मजाक और उत्साह का वातावरण निर्माण करना।
4. सहयोग और समायोजन की भावना स्थापित करना।

इसके अतिरिक्त समूह विकास के कुछ महत्वपूर्ण सूचक भी हैं जिनका पालन करना समूह सदस्यों के लिए अनिवार्य होता है :

1. प्रत्येक सदस्य की उपस्थिति
2. समय की पाबंदी
3. निश्चित समयानुसार बैठक और उपस्थिति
4. औपचारिक संगठन का विकास
5. सदस्यों द्वारा पहल और अपनी जिम्मेदारी समझने की इच्छा
6. नव परिवर्तन और प्रेरणा में वृद्धि
7. सदस्यों की नियंत्रित व्यावहारिक क्रिया
8. उच्च भागीदारी स्तर
9. नेतृत्व का विकास
10. 'मैं' और 'मुझे' दृष्टिकोण से 'हम' और 'हमारा' में रूपांतरण

इस प्रकार समूह का विकास कार्य निष्पादन और सदस्यों की भावनात्मक एकीकरण में होता है, जो कि विभिन्न अवस्थाओं से होकर गुजरता है।

2.3 समूह विकास की अवस्थाएँ

समूह कार्य प्रक्रिया में कुछ महत्त्वपूर्ण अवस्थाएँ होती हैं जिनसे गुजरकर संपूर्ण समूह कार्य प्रक्रिया कोसंपन्न किया जाता है जो एक निश्चित चरण के अनुसार होती है जिससे लक्ष्य प्राप्ति हेतु मार्ग प्रशस्त किया जाता है। अवस्थाओं को परिवर्तित रूप में चरण भी कहा जाता है। समूह अवस्था के माध्यम से समूह कार्य को एक क्रमबद्धता प्रदान की जाती है जिससे कार्य को एक निरंतर प्रक्रिया में संपन्न किया जा सके। कुछ विद्वानों ने अपनी-अपनी विचारधाराओं के आधार पर समूह विकास की अवस्थाओं को निम्नलिखित प्रकार से वर्णित किया है :

1. बेल्स (1950) ने समूह कार्य अवस्था को अपना स्वरूप प्रदान करते हुए दिशा-निर्धारण (Orientation), मूल्यांकन (Evaluation) एवं निर्णय लेना (Decision making) की क्षमता के आधार पर इसका वर्णन किया है।

2. टकमैन (1963)ने समूह कार्य अवस्था को फोरमिंग (Forming), स्टोरमिंग (stroming), नोर्मिंग (Norming), परफार्मिंग (Perfomig) एवं एडजर्निंग (Adjourning) के आधार पर वर्णित किया है।
3. कैलिन (1972) के अनुसार अवस्था दिशा-निर्धारण (orientation)), विरोध (Resistance), समझौता (Negotiation) घनिष्ठता (Intimacy), समापन (Termination) स्तर को मुख्य रूप से अंकित किया है।
4. ट्रैकर 1972 ने समूह अवस्था को- प्रारंभ (Beginning), समूह भावना का आविर्भाव (Emergence of group feeling) मित्रता का विकास (Development of bond), सशक्ति समूह (Strong group), समूह भावना का पतन (Decline in group feeling),का वर्णन समूह अवस्थाओं में किया है।
5. गारलैंड जोन्स एवं कोलोन्ड्नी (1976) ने समूह कार्य अवस्था को निर्धारित करते हुए बताया कि समूह मुख्य रूप से, मान्यता-पूर्व (Pre&Affiliation),अधिकार एवं नियंत्रण (Power and Control), घनिष्ठतता (Intimacy), अलगाव (diffiesertiation), विभाजन (Separation), समाप्ति (Ending) के रूप में कार्य करता है।
6. नोरदन एवं करलैंड 2001 ने समूह कार्य की अवस्थाओं को समावेश-दिशा निर्देश (Inclusion & orientation), अनिश्चितता-पर्यवेक्षण (Unccrtainty & Uploration), पारस्परिकता एवं लक्ष्य सफलता (Mutuality and goal achievement) एवं विभाजन-समापन (Separation&permination) को मिलाकर समूह विकास की अवस्थओं कावर्णन किया है।

समूह कार्य की विभिन्न विद्वानों द्वारा दी गई अवस्थाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि समूह कार्य के मुख्य रूप में तीन से लेकर छः अवस्थाएं है जो मुख्यतः निम्नलिखित चरण प्रदान करती है-

1. प्रथम अवस्था : योजना और समूह निर्माण (आरंभिक चरण)
2. द्वितीय अवस्था : पर्यवेक्षण (आरंभिक सत्र)
3. तृतीय अवस्था : निष्पादन (कार्य चरण)
4. चतुर्थ अवस्था : मूल्यांकन(विश्लेषण चरण)
5. पंचम अवस्था : समापन (अंतिम चरण)

2.4 समूह विकास के चरण

समूह एक गतिशील प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया में निरंतर परिवर्तन होता रहता है । कार्यकर्ता समूह-सदस्यों की इच्छाओं एवं उद्देश्यों की पूर्ति के लिए कार्यक्रमों का आयोजन करता है जिससे वे उद्देश्य प्राप्त करने की दिशा में प्रयास करते हैं। अतः समूह विभिन्न स्तरों से होकर गुजरता है इन्हीं मुख्य चरणों का विस्तृत वर्णन नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है :

प्रथम अवस्था - योजना और समूह निर्माण (आरंभिक चरण)

योजना और समूह निर्माण के आरंभिक चरण में कार्यकर्ता द्वारा समूह निर्माण की आवश्यकता पर बल दिया जाता है और समूह निर्माण के लिए पहल की जाती है । जब समूह कार्यकर्ता समूह निर्माण की आवश्यकता की पहचान कर लेता है तो वह समूह निर्माण की योजना तैयार करता है। इसके लिए कार्यकर्ता को अपनी व्यावसायिक पृष्ठभूमि के साथ कुछ प्रश्नों के उत्तर अत्यंत ही सावधानीपूर्वक और क्रमबद्धढंग से देने पड़ते हैं। ये प्रश्न निम्नलिखित हैं-

1. समूह क्यों होता है? यहाँ कार्यकर्ता को समूह निर्माण की आवश्यकता पर ध्यान देना होता है कि यह किन उद्देश्यों और लक्ष्यों को पा सकता है और किस हद तक उसे पाने में सफल होता है?
2. समूह का निर्माण किसके लिए हो रहा है? समूह से संबंद्ध होने वाले सदस्योंके प्रकार पर विचार करना तथा सदस्य को भर्ती करने की योग्यता का मापदण्ड निर्धारित करना।
3. समूह निर्माण की संभावित समयावधि और बैठकों की संख्या के संदर्भ में ध्यान केंद्रित किया जाता है।
4. समूह में सदस्यों की संलिप्तता को कैसे सुनिश्चित किया जाए? समूह सदस्य और कार्यकर्ता समूह क्रियाओं को सुनिश्चित करने के लि, जो आपसी सहमति बनाते हैं, वह समूह के उद्देश्यों की पुष्टि तक चलती रहती है।

उपर्युक्त प्रश्नों को उठाए जाने के बाद समूह कार्यकर्ता द्वारा कुछ आवश्यक योजनाओं का निर्माण किया जाता है जिससे समूह निर्माण की योजना को प्रभावी बनाया जा सके। इसलिए कार्यकर्ताओं के द्वारा निम्न आवश्यक कदम उठाने की आवश्यकता होती है -

1. **समूह उद्देश्य का निर्धारण -** समूह कार्यकर्ता को भली-भाँति यह ज्ञान होना चाहिए कि समूह का निर्माण किन उद्देश्यों को ध्यान में रखकर किया जा रहा है अर्थात समूह का निर्माण क्यों हो रहा है और इसका उद्देश्य क्या होगा? कार्यकर्ता को यह ध्यान में रखना चाहिए कि जिस समूह का निर्माण वह करने जा रहा है उसका अंतिम लक्ष्य समूह के सदस्यों की आवश्यकताओं की पूर्ति करना है और समूह को सक्षम बनाना।हैअतः कार्यकर्ता को समूह सदस्यों के साथ मधुर संबंध स्थापित होना चाहिए जिससे समूह सदस्यों के हित अपनी भावनाओं को स्पष्ट कर सकेजिससे लक्ष्य प्राप्ति में आसानी होगी। साथ ही कार्यकर्ता को यह विश्वास भी दिलाना होगा कि समूह का निर्माण कार्य क्षेत्रों की सीमा के अंदर होगा और उनके हितों और सेवाओं के विरूद्ध नहीं जाएगा।
2. **समूह की बनावट -** समूह के उद्देश्य का निर्धारण करने के पश्चात यह निर्धारित कर लेना चाहिए कि रचना समूह की किस प्रकार की होगी और किस रूप में होगी? क्या यह समरूप में होगा या विषम रूप में? समरूप का अर्थ हैं सदस्यों के बीच आयु, शैक्षिक पृष्ठ भूमि, सामाजिक वर्ग तथा अन्य हितों में साझेदारी करना। समरूपता से समूह और अधिक शक्तिशाली बनता है। साथ ही, यह समूह निर्माण में मुख्य भूमिका अदा करती है। समूह कार्यकर्ता को समूह की आवश्यकताओं और लक्ष्यों को ध्यान में रखते हुए समूह की बनावट का निर्णय लेना चाहिए।
3. **समूह का आकार -** समूह में कितने सदस्य होंगे? उसका आदर्श मानक क्या होगा? समूह का आकार कितना बड़ा होगा या कितना छोटा? इन संपूर्ण प्रश्नोंके उत्तर समूह कार्यकर्ता के मन में होने चाहिए। समूह के आकार के संबंध में कोई निश्चित पैमाना नहीं है जिसे आधार मानकर यह निश्चित किया जा सकेकि समूह का आकार क्या होगा? सामान्य तौर पर यह समूह के उद्देश्यों, उसकी प्रबंधकीय क्षमता, समय-सीमा, स्थान, धन और आवश्यक नियंत्रणों पर निर्भर करता है। अनेक विद्वानों के अनुसार आठ से पंद्रह सदस्यों के आकार वाला समूह श्रेष्ठ आकार का हो सकता है।
4. **सदस्यों की भर्ती -** सदस्यों की भर्ती के संदर्भ में यह कहा जाता है कि कार्यकर्ता द्वारा संभावित सदस्यों को समूह के गठन के विषय में सूचित करें। यह सूचना सम्भावित सदस्यों को सीधे ही अथवा अभिकरण के

सूचनापट्ट पर सूचना चिपकाकर या समाचारपत्रों, रेडियो, टीवी आदि संचार माध्यमों में विज्ञापन के माध्यम से दी जा सकती है और रूचिशील सदस्यों से आवेदन आमंत्रित किए जा सकते हैं। यहाँ कार्यकर्ता का दायित्त्व होता है कि योग्यता के स्थापित मापदण्डों के आधार पर आवेदकों की उपयुक्त जाँच करना। इन मापदण्डों में कार्यकर्ता द्वारा समूह सदस्यों हेतु आवश्यकताकी सीमा का निर्धारण, हस्तक्षेप की अविलंबता, जनसांख्यिकीय विशेषताएँ, अनुभव और अन्य कौशल शामिल हैं। कार्यकर्ता आवेदकों की उपयुक्तता सुनिश्चित करने के लिए उनसे साक्षात्कार का भी प्रबंध कर सकता है और समूह की सदस्यता लेने से संबंधित उनकी शंकाओं का निवारण भी कसकता है।

5. **बैठकों का समूह और स्थान -** समूह बैठकों हेतु कार्यकर्ता को समूह के सदस्यों के साथ मिलकर यह निर्धारित कर लेना चाहिए कि समूह में बैठकों का आयोजन किस अंतराल में और कबकब होगा। साथ ही किस स्थान पर बैठकें आयोजित की जाएंगी यह भी निर्धारित कर लेना चाहिए।
6. **समूह की अवधि-**समूह मुख्य रूप से दो प्रकार के बनाए जाते हैं दीर्घकालीन समूह और अल्पकालीन समूह यह समूह के लक्ष्य पर निर्भर करता है कि समूह दीर्घकालीन होगा या अल्पकालीन। समूह का उद्देश्य पूर्ण हो जाने के पश्चात इसे समाप्त किया जा सकता है और इसके लिए अनुमानित समय निर्धारित किया जा सकता है। फिर भी समय निर्धारित करने का निर्णय करते समय लचीलापन होना चाहिए।
7. **अनुबंधन -** समूह का निर्माण करते समय समूह सदस्यों और कार्यकर्ताओं के मध्य एक अनुबंधन होना चाहिए जिसमें समूह सदस्यों और कार्यकर्ताओं के दायित्त्व का निर्वहन होताहै, जिनमें सत्रों में नियमित रूप से और समय पर उपस्थित रहना होता है। किसी भी अनुबंधित कृत्य अथवा कार्य को पूरा करना, समूह की चर्चाओं की गोपनीयता को बनाए रखना और ऐसा कोई भी व्यवहार न करना हो, जो समूह की भलाई के विरूद्ध जाता हो। अनुबंध लिखित एवं मौखिक दोनों प्रकार से हो सकता है। इस अनुबंध में यह निर्धारित किया जाता है कि समूह नियोजित तरीके से चलेगा और समूह प्रक्रमों को कारगर ढ़ंग से चलाने के लिए उपयुक्त वातावरण के निर्माण को सुगम बनाया जाएगा।

अतः इस प्रकार से समूह कार्य की प्रथम अवस्था के प्राथमिक चरण द्वारा समूह के संदर्भ में योजना का निर्माण किया जाता है एवं समूह के सफल संचालन हेतुयोजना का निर्माण किया जाता है।

2. द्वितीय अवस्था : पर्यवेक्षण (आरंभिक सत्र चरण)- प्रथम अवस्था में समूह निर्माण और योजना के निर्माण पश्चात द्वितीय अवस्था में (जिसे समूह का आरंभिक सत्र भी कहा जाता है) पर्यवेक्षण का कार्य किया जाता है। पर्यवेक्षण कार्य के माध्यम से समूह सदस्यों में दिशा निर्धारण का कार्य किया जाता है। यह चरण सदस्यों में संबद्धता और एकात्मकता की भावना विकसित करने की शुरूआत करता है। इस अवस्था में मुख्य रूप से निम्नांकित कार्य किए जाते हैं -

1. **दिशा निर्धारण एवं प्रवेश -** समूह कार्य में आरंभिक सत्र एक महत्त्वपूर्ण विधा के रूप में माना जाता है। किसी भी प्रक्रिया में आरंभ का अत्यधिक महत्त्व रहता है इसलिए कहा भी जाता है कि मकान के निर्माण हेतु नींव जितनी अधिक मजबूत होगी मकान का निर्माण भी उतना ही अधिक मजबूत होगा। अतः इसी आधार पर समूह कार्य की आरंभिक प्रक्रिया में समूह की सफलता और असफलता निर्भर करती है। इस प्रक्रिया के अंर्तगत प्रत्येक कार्यकर्ता को प्रत्येक सदस्य से अपना परिचय करना चाहिए और समूह निर्माण के उद्देश्यों को भी स्पष्ट कर देना चाहिए। सदस्यों में सहभागिता का भाव जाग्रत करते हुए उन्हें आत्मविश्वास दिलाना चाहिए जिससे वे अपना परिचय स्पष्ट रूप से दे सकें। आरंभिक सत्रों में सदस्यों को निश्चित संवेदनशीलता के साथ

समूह में शामिल किया जाता है ताकि उनकी सांत्वना और सहजता कीभावना का स्तर ऊँचा रखा जा सके। समूह कार्य आरंभिक प्रक्रिया में कुछ सदस्य एकदूसरे से अपरिचित रहते हैं इस कारण से उनमें हिचकिचाहट अधिक देखने में नजर आती है अतः उनमें आपसी स्वीकारता का भाव जाग्रत करना चाहिए। ऐसा करने से समूह सदस्य अपने लक्ष्य को प्राप्त करनें में लग जाते है और उनमें आपसी सामंजस्य स्थापित हो जाता है और समूह में प्रवेश प्रक्रिया भी प्रारंभ हो जाती हैं।

2. **सदस्यों की रूपरेखा तैयार करना-** जैसे सदस्यों की आवश्यकता एक-दूसरे के बारे में जानने की होती है उसी तरह कार्यकर्ता को भी सदस्यों के बारे में गहराई से जानना और अवलोकन करना चाहिए। कार्यकर्ता को प्रत्येक सदस्य की एक रूपरेखा बनानी चाहिए जिसमें उसकी आयु, पारिवारिक पृष्ठ भूमि, शारीरिक विशेषताएँ, आदतें, रूचियाँ शामिल हो। यदि इसे आरंभिक सत्रों में एकत्रित तथ्यों के अवलोकनों के आधार पर बनाया जाए तो यह सहायता प्रदान करेगा। यह न केवल समूह सदस्यता स्तरों को व पारस्परिक संपर्क अच्छी तरह समझने में उसकी सहायता करेगा अपितु समूह कहाँ से आरंभ किया जाए इसमें भी सहायक होगा। पुनः यह एक अवधि के बाद विकास की योजना बनाने में विशेषत: मूल्यांकन की अवस्था में भी सहायता प्रदान करेगा।
3. **विशिष्ट उद्देश्य निर्धारित करना-** समूह कार्य में प्रायः उद्देश्य का निर्धारण पूर्व में ही कर लिया जाता है लेकिन इसके पश्चात भी समूह सदस्यों के बीच संघर्ष की स्थिति उत्पन्न होने के पश्चात कुछ विशिष्ट उद्देश्य का निर्माण भी किया जाता है जिससे कार्यक्रम की योजना का आधार तैयार हो सके। यहाँ कार्यकर्ता को व्यवहार या सामाजिक परिवर्तन का अभीष्टतम स्तर निर्धारित करने में समूह की सहायता करनी होती है। यद्यपि पहली अवस्था में कुछ उद्देश्यों को ध्यान में रखकर समूह की रचना की जा चुकी है तो भी इस अवस्था में लक्ष्यों को विशेष रूप से प्रस्तुत करना होता है। इस गतिविधि के माध्यम से समूह कार्यकर्ता द्वारा समूह के सदस्यों को सक्रिय भागीदार होने के लिए प्रोत्साहित करता है और यदि सदस्यों में कुछ विशेष प्रकार की आदतें जैसे- धूम्रपान, तंबाकू खाने की आदत इत्यादि होतो व्यवहार परिवर्तन में समूह की सहायता करता है।
4. **संरचना का निर्माण-** संरचना निर्माण द्वारा सदस्यों को इस आधार पर तैयार किया जाए जिससे वे अपनी भूमिका और जिम्मेदारियों को समझ सकें। इसके लिए समूह सदस्यों को प्रोत्साहित करना चाहिए। सदस्यों को उनकी क्षमताओं ओर योग्यताओं के आधार पर कार्यों का बँटवारा कर देना चाहिए और उन्हें उनकी क्षमताओं के संदर्भ में भी अवगत कराना चाहिए। समूह कार्यकर्ता का दायित्त्व होता है कि वह समूह सदस्यों में छुपी हुई योग्यताओं को सामने लाएँऔर उन्हें प्रेरित करें। इस अवस्था में एक क्रियात्मक संगठन का उदय होना चाहिए ताकि सदस्य सक्रिय भूमिका ले सके और ज़िम्मेदारी से फैसला कर सके। ''स्वतंत्रता और आत्मनिर्णय के लिए अभिलाषा रखने वाले प्रत्येक समूह को अपने स्थापित सदस्यों' का तरीके से व्यवस्थित करना होता है कि वे स्वयं को'संगठित' कह सकें'। एक औपचारिक संगठन के साथ समूह अपने लचीलेपन और परिपक्वता के साक्ष्य देना आरंभ कर देता है। समूह को जिम्मेदारी उठाने के लिए सक्रिय करने के बाद वह अगली अवस्था में जाने के लिए तैयार हो जाता है।

3. तृतीय अवस्था : निष्पादन (कार्य चरण) - प्रथम एवं द्वितीय चरण पूर्ण कर लेनेके पश्चात अब समूह परिपक्व स्थिति में नजर आने लगता है और समूह अपने क्रियाशील चरणों की ओर बढ़ने लगता है अतः तृतीय चरण में वह निष्पादन कार्य आरंभ कर देता हैजिसे कार्य चरण भी कहा जा है और निम्नलिखित गतिविधियों के माध्यम से चरण को पूर्ण करता है :

1. **क्रियात्मक चरण -** इस अवस्था में समायोजन और प्रगति के लिए अवसर प्रदान करने के लिए बनाए गए कार्यक्रम, अनुभवों के प्रावधानों पर ध्यान केंद्रित किया जाता है। कार्यक्रम का आधार कार्यों पर निर्भर करता है कि कार्यक्रम दीर्घकालीन होगा या अल्पकालीन । यह अवस्था एक महत्त्वपूर्ण अवस्था के रूप में मानी जाती है क्योंकि इस अवस्था तक आते-आते समूह सदस्य एक-दूसरे को गंभीरता से लेने लगते हैं। कार्यों का निर्धारण सही रूप से हो जाता है और समूह सदस्य कार्यक्रमों में भागीदारी प्रारंभ कर देता है। इस चरण में गतिविधियाँ बढ़ जाती हैं क्योंकि कार्यक्रम की योजना और क्रियान्वयन में पर्याप्त समय लगाया जाता है उनका एक समूह बना दिया जाता है। समूह कार्यकर्ता उनकी गाने और अभिनय की योग्यताएँ देखने के बाद उन्हें एक संगीतमय नाटक करने के लिए प्रोत्साहित करता है। समूह प्रेरित होता है और आलेख लिखने, गीत बनाने में और नृत्य कलाएँ बनाने में लग जाता है। समुदाय के समर्थन की सहायता से समूह अपना पहला नाटक प्रदर्शित करता है और धीरे-धीरे एक स्थापित नाट्यशाला समूह बन जाता है। क्रियात्मक चरण में आलेख लिखने, गीत रचना करने तथा प्रदर्शन के लिए निरंतर तीव्र अभ्यास करने से सदस्यों का अत्यधिक समय और प्रयोग करने में वे काफी व्यस्त रह सकते हैं। अब कार्यकर्ता समूह सदस्यों को जिम्मेदारियाँ देना प्रारंभ कर देता है जिससे समूह तेजी से आगे बढने लगता है और अनेक कार्यक्रम बनना प्रारंभ हो जाते हैं। साथ ही, साथ नेतृत्त्व की भावना का भी विकास होना प्रारंभ हो जाता है। यह समूह कार्य प्रक्रिया का सर्वाधिक क्रियात्मक चरण होता है तथा इस चरण में अत्यधिक समय व्यतीत हो जाता है । अब समूह अपने लक्ष्य प्राप्त करने के लिए पूर्ण रूप से अपने पथ पर अग्रसर हो जाता है और कार्यक्रम की योजना विकास, उसका क्रियान्वयन करना प्रारंभ कर देता है।
2. **कार्यक्रम की योजना एवं क्रियान्वयन -** समूह कार्य प्रक्रिया में कार्यक्रम एवं क्रियान्वयन एक महत्त्वपूर्ण विधा मानी जाती है जिसके माध्यम से सदस्य-सदस्य और कार्यकर्ताओं के मध्य आपसी समन्वय, नेतृत्त्व की भावना, सामूहिकता की भावना आदि का विकास हो जाता है। यह गतिविधि सदस्यों की क्षमताओं और उनकी योग्यताओं पर निर्भर रहती है ।यह कला और शिल्प से लेकर संगीत, नृत्य, सामाजिक घटनाएँ तथा पिकनिक व भ्रमण तक हो सकता है। इस अवस्था में समूह के अंदर कार्यक्रम के प्रतिरूचि जागृत होने की संभावना रहती है। हो सकता है प्रारंभ में समूह सदस्य इस प्रक्रिया में अत्यधिक उत्सुकता न दिखाएँ पर जैसे-जैसे यह गतिविधि क्रियान्वित होती है सदस्यों की संख्या में भी वृद्धि होती जाती है। कार्यक्रम का विकास सरल से जटिलता की तरफ होना चाहिए जिसमें गति के साथ योग्यता और तत्परता के रूप में समूह की प्रगति के रूप में परिणाम नजर आना चाहिए।
3. **कार्य समापन -** जब ऐसा प्रतीत होने लगे कि अब समूह आगे बढ़ने के लिए तत्पर है तो कार्यकर्ता को सदस्यों द्वारा विभिन्न और अपेक्षित अनुभवों की अपनी अभिलाषा जानने में मदद करनी चाहिए। जब समूह के सदस्य अपने अभावों को पूरा करने के लिए अपनी इच्छाएँ अभिव्यक्त करने लगे और अपने कार्य में सुधार कर लें तो मान लेना चाहिए कि वे अपने विकास में उन्नत बिंदु पर पहुँच गए हैं। हो सकता है जो कार्यक्रम आत्मकेंद्रित रहे हों तो उन्हें अपेक्षाकृत बड़े अभिकरण और सामुदायिक उद्देश्यों पर जोर देने के लिए परिवर्तित किया जाना चाहिए। जब समूह को अपनी क्षमताओं पर भरोसा हो जाता है तो मूल्यांकन में काफी समय लगता है (ट्रेक्कर, 1955)। अनेक बार ऐसा होता है कि जब सदस्य कार्यक्रम करता है और लक्ष्य की ओर अग्रसर होता है तो अनेक समस्याएँ समूह में आ जाती हैं जो कि समूह लक्ष्य प्राप्ति में बाधक बनती है

ऐसी स्थिति में समूह कार्यकर्ता को मध्यस्थता की भूमिका अदा करनी चाहिए और समस्या के समाधान हेतु सहायता करनी चाहिए।

4. **प्रगति पर नजर रखना-** जैसे-जैसे प्रक्रिया आगे बढ़ती है समूह अपने आप मेंसक्षम होता जाता है। अब इस स्थिति में समूह कार्यकर्ता समूह से अपने कदम पीछे करना प्रारंभ कर देता है और दूर से ही समूह पर अपनी नजर बनायें रखता है। जैसे-जैसे वह समूह लक्ष्य की ओर आगे बढ़ता जाता है कार्यकर्ता अपने को पीछे करता रहता है और समूह की तरफ अपनी नजर बनाए रखता है।

4. चतुर्थ अवस्था : मूल्यांकन(विश्लेषण चरण)- मूल्यांकन एक सतत और निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है जिसके माध्यम से समूह के प्रत्येक पहलू का अध्ययन किया जाता है। मूल्यांकन को परिभाषित करते हुए मिल्टन गार्डन (1952) ने बताया है कि , मूल्यांकन निर्णय करने वाली एक प्रक्रिया है जो निश्चित करती है कि व्यक्ति, कार्यकर्ता तथा संस्था का क्या उत्तरदायित्व है ? उनको पूरा करने की कितनी क्षमता है? क्या-क्या शक्तियाँ है? कौनसे कार्य रचनात्मक सहयोग प्रदान करते हैं तथा कौन से कार्य समस्या को जटिल बनाते हैं। इस प्रकार मूल्यांकन उद्देश्य का दार्शनिक एवं नैतिक ज्ञान है। मूल्यांकन प्रक्रिया के माध्यम से समूह कार्य के प्रत्येक पहलू पर पुनः ध्यान दिया जाता है जिससे यह प्रतीत हो जाता है कि संपूर्ण प्रक्रिया में कोई गलती तो नहीं हुई है यदि कुछ गलत हुआ हो तो उसे सही कैसे किया जाय? एवं जो सकारात्मक पहलू प्राप्त हुए हैं उन्हें और अधिक प्रभावी कैसे बनायें जाय? इन समस्त बातों पर ध्यान दिया जाता है। सभी सामूहिक प्रयत्नों में मूल्यांकन आवश्यक समझाजाता है। यह संस्था अथवा समूह का आवश्यक अंग होता है तथा कार्यकर्ता का प्रथम उत्तरदायित्व है कि वह इस दिशा में सदैव प्रयत्नशील रहें। संस्था के लिए मूल्यांकन आवश्यक समूह प्रक्रिया पर निर्भर होता है। अतः अच्छे प्रशासन के लिए मूल्यांकन करना आवश्यक होता है। इससे क्षमताओं एवं उपलब्धियों का ज्ञान होता है। समूह-क्रियाओं का मूल्यांकन सदैव उद्देश्यों को ध्यान में रखकर करना चाहिए अर्थात तुलनात्मक अध्ययन मूल्यांकन का एक आवश्यक अंग है।

ट्रेकर ने मूल्यांकन प्रक्रिया को निम्नलिखित प्रकार से दर्शाया है:-

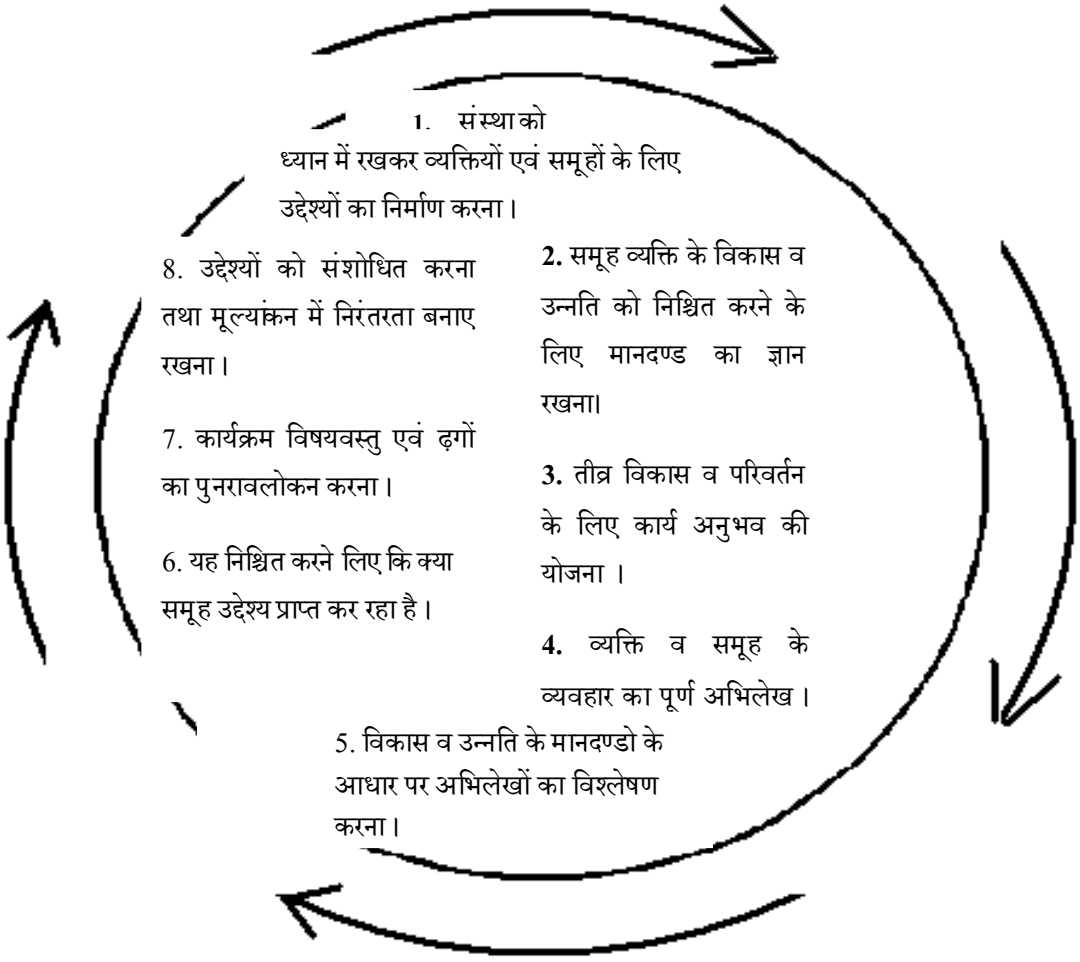

ट्रेकर द्वारा चित्र प्रदर्शन से ज्ञात होता है कि मूल्यांकन का कार्य सामूहिक कार्य केप्रारंभिक स्तर से प्रारंभ होकर समाप्ति स्तर तक चलता रहता है। मूल्यांकन की प्रक्रिया द्वारा निम्नलिखित तथ्यों को ज्ञात किया जा सकता है-

1. **समूह उद्देश्य का निर्धारण -** कार्यकर्ता सर्वप्रथम समूह के सदस्यों का वैयक्तिक अध्ययन करता है। उनकी इच्छाओं, अभिलाषाओं, आवश्यकताओं का पता लगाता है। इन आवश्यकताओं का मूल्यांकन करता है कि उन्हें किस प्रकार से सामूहिक आवश्यकता के रूप में प्रदर्शित किया जा सकता है।
2. **विकास के मानदण्ड का निर्धारण:-** उद्देश्य निर्धारण पश्चात समूह-सदस्यों को उनके विषय में विस्तृत जानकारी देता है तथा सामूहिक विकास की प्रक्रिया का निर्धारण करके विकास की गति का अनुमान लगाता है। वह समूह की योग्यताओं, क्षमताओं तथा निपुणताओं का मूल्यांकन करके विकास के मानदण्ड निश्चित करता है।
3. **कार्यक्रम की योजना का निर्माण:-** वह कार्यक्रम का मूल्यांकन करके ऐसे कार्यक्रमों को समूह के लिए चुनता है जो समायोजन तथा विकास के अधिकतम अवसर प्रदान करते है। ये कार्यक्रम दीर्घ तथा लघुकालीन दोनों प्रकार के होते हैं। इसका निर्धारण लघुकालीन एवं दीर्घकालीन उद्देश्यों के आधार पर किया जाता है।

4. **अभिलेखन करना:-** कार्यकर्ता समूह में होने वाली महत्त्वपूर्ण क्रियाओं का अभिलेखन करता है। यह कार्यकर्ता की मूल्यांकन योग्यता पर निर्भर होता है कि वह किस प्रकार और कौन्कौन-सी परिस्थितियों का अभिलेखन करता है।
5. **अभिलेखों का विश्लेषण :-** अभिलेखों के लेखन पश्चात वह इन अभिलेखों के आधार पर व्यक्ति सदस्य के व्यवहार एवं भागीकरण का विश्लेषण करता है। समूह के प्रत्युत्तरों का अध्ययन करता है, कार्यक्रम की उपयुक्तता-अनुपयुक्तता का अध्ययन करके उनकी उपयोगिता निश्चित करता है। कार्यकर्ता स्वयं अपनी भूमिका का विवेचन करता है।
6. **उद्देश्यों की प्राप्ति का स्तर:-** अभिलेखों के विश्लेषण से कार्यकर्ता इस बात को जानने का प्रयास करता है कि समूह अपने कार्यकलापों के माध्यम से किस सीमा तक उद्देश्यों को प्राप्त करने में सफल हो पाया है।
7. **कार्यक्रम, विषयवस्तु तथा प्रणाली का पुनरावलोकन:-** कार्यकर्ता कार्यक्रमों का विश्लेषण एवं विवेचन करता है। उनकी उपयोगिता निर्धारित करता है। उनकी विषयवस्तु का निर्धारण समूह की उन्नति के अनुसार करता है। जो प्रणालियाँ या ढ़ंग कार्यक्रमों के संचालन में उपयोग में लाए गए हैं उन पर प्रकाश डालता है।
8. **उद्देश्यों का संशोधन:-** उपरोक्त क्रियाओं केपश्चात कार्यकर्ता यदि आवश्यक समझता है तो उद्देश्यों में परिवर्तन करता है। उद्देश्यों में संशोधन करना इसलिए आवश्यक हो जाता है कि समूह-अनुभव से उसकी अंतर्दृष्टि बढ़ती है जिससे लक्ष्यों का विस्तार भी होता है। इस प्रकार यह प्रक्रिया निरंतर कार्य करती रहती है। अतः इस प्रकार से समूह कार्य प्रक्रिया में मूल्यांकन अवस्था को महत्त्वपूर्ण माना जाता है जो चौथा और महत्त्वपूर्ण चरण के रूप में जाना जाता है।

5. पंचम अवस्था : समापन (अंतिम चरण)

समापन अवस्था एक भावनात्मक अवस्था होती है क्योंकि समूह के प्रत्येक सदस्य एक साथ कार्य करने के कारण एक-दूसरे के साथ भावनात्मक रूप से जुड़ जाते हैं एवं इस अवस्था में समूह के समापन होने के कारण एक-दूसरे से बिछुड़ते या अलग होते हैं इस अवस्था में किए गए कार्यों का मूल्यांकन किया जाता है इस अवस्था में समूह का उद्देश्य पूर्ण हो जाता है अतः अब इस समापन प्रक्रिया मे समूह के सदस्य समूह से अलग हो जाते हैं। प्रत्येक समूह के जीवन में ऐसा समय आता है जब झसका अंत होता है जो एक सकारात्मक या नकारात्मक अनुभूति होती है जब यह कहा जाएकि समूह ने अपने लक्ष्य प्राप्त कर लिए हैं और समूह कार्यकर्ताएक उपयुक्त प्रक्रिया द्वारा इसके अच्छे ढंग से समाप्त करने के बारे में निश्चित हो तो समूह का सकारात्माक समापन होना माना जाता है। कुछ विद्वानों का मानना है कि समूह कार्य प्रारंभ के समय ही समापन की तिथि कोघोषित कर देना चाहिए जिससे कि समूह सदस्यों को यह ज्ञात रहें कि हमें कितने समय में लक्ष्य प्राप्त करना है? जिस प्रकार समूह कार्यकर्ता ने विकास की पिछली अवस्थाओं में किया था ठीक उसी प्रकार इस अवस्था में भी उसे यह सुनिश्चित करना पड़ता है कि समूह का समापन उचित तरीके से हो। कुछ विद्वानों ने समूह समापन के निम्नलिखित प्रकारों का वर्णन किया है-

समूह समाफ्न प्रक्रिया को तीन भागों में बाँटा जा सकता है-

(1) **उद्देश्य पूर्ण होने पर समापन:-** इस प्रकार का समापन समूह जो उद्देश्य लेकर चलता है वह पूर्ण हो जाता है तो समूह का समापन कर दिया जाता है। इस प्रकार समापन उद्देश्य पूर्ण होने पर निर्भर करता है। उद्देश्य पूरा होने पर ही समूह का समापन कर दिया जाता है।

उदाहरण:- अस्पताल में मरीज एक समूह के सदस्य के रूप मे रहता है उसके ठीक होने के बाद छुट्टी दे दी जाती है। अर्थात समूह का जो उद्देश्य था वह पूरा हो गया है अतः अपने सदस्य को मुक्त कर देता है।

(2) समय सीमा के आधार पर समापन:- इस प्रकार के समापन में समूह की समय अवधि समाप्त हो जाने पर समूह का समापन कर दिया जाता है। इस प्रकार के समापन में समूह के उद्देश्य पूरा होने या न होने आदि पर कम महत्त्व दिया जाता है इसमें समय अवधि को अधिक महत्त्व दिया जाता है।

उदाहरणः- उदाहरण के लिए स्कूल मे एन.सी.सी. कैम्प लगता है वह कुछ समय एक हफ्ते पंद्रह दिन आदि के लिए लगता है समय सीमा समाप्त हो जाने पर ग्रुप का समापन कर दिया जाता है।

(3) कानून के आधार पर समापनः- इस प्रकार का समापन समूह का उद्देश्य कानून द्वारा मान्यता प्राप्त नहीं होता है अर्थात उद्देश्य को कानून द्वारा स्वीकृति नही मिलती है इस प्रकार के समूह का समापन कर दिया जाता है।

समापन अवस्था में कार्यकर्ता की निम्नलिखित भूमिका होती है -

1. समापन की अवस्था में कार्यकर्ता की मुख्य भूमिका होती है कि वह सदस्यों के कार्यों का मूल्यांकन करे। उनके तथा समूह के Achievements के बारे में तथा उनकी कमजोरियों के बारे में बताए।
2. इस अवस्था में कार्यकर्ता का मुख्य कार्य यह है कि वे समूह के सदस्यों के व्यक्तिगत भावों, भावनाओं तथा Termination Phase के वातावरण के मध्य सामंजस्य बनाए रखे।
3. समूह कार्यकर्ता सदस्यों को समूह छोड़ने के लिए मानसिक रूप से तैयार करे।
4. कार्यकर्ता को अपने समूह सदस्यों के साथ अनुभव बाँटने चाहिए।
5. कार्यकर्ता को सदस्यों को यह बताना चाहिए कि वे समापन अवस्था को सकारात्मक रूप से ग्रहण करे एवं यह भी बताए कि समूह कार्यमें समापन प्रक्रिया प्राकृतिक है।

अतः अंत में कहा जा सकता है कि समापन समूह कार्य का अहम हिस्सा है। यही कार्यों की मूल्यांकन की अवस्था है। सदस्यों को समापन अवस्था के प्रति जो भाव होते हैं वह उनके व्यवहार में परिलक्षित हो जाते हैं। इस प्रकार समूह के समापन की घोषणा होती है। समूह के सदस्यों की भावनात्मक तथा व्यवहारिक प्रतिक्रिया होती है। कुछ समूह के लिए स्पष्ट एवं आश्चर्य मिश्रित अनुभव होता है। जबकि कुछ समूह के लिए यह केवल विदाई पार्टी ही होती है। इनमें से कुछ सदस्य अपने भावों पर संयम करते हैं एवं एक दूसरे को नए कार्यों के लिए प्रोत्साहित करते हैं।

2.5 समूह विकास में समूह कार्यकर्ता की भूमिका

समूह कार्य की उपर्युक्त अवस्थाओं में समूह कार्यकर्ता की महती भूमिका है जिसके द्वारा कार्यकर्ता प्रत्येक अवस्था व चरण में समूह सदस्यों की सहायता करता है एवं सामूहिक लक्ष्य प्राप्ति हेतु सदस्यों को प्रेरित करता है। कार्यकर्ता सामूहिक कार्य-प्रणाली द्वारा समूह-सदस्यों के विकास, उन्नति, शिक्षा, एवं सांस्कृतिक प्रगति पर जोर देता है। कार्यकर्ता प्रत्येक स्तर पर समूह को समझने का प्रयास करता है और समूह में उत्पन्न समस्या का

निवारण प्रस्तुत करता है । समूह कार्यकर्ता के कार्यों और उसकी भूमिका को निम्नलिखित आधारों पर समझा जा सकता है-

समूह कार्यकर्ता के कार्य - सामूहिक कार्यकर्ता के कार्यों के निम्नलिखित आधारों पर समझा जा सकता है -

1. समूह निर्माण के संबंध में- समूह निर्माण के संबंध कार्यकर्ता निम्नलिखित आधारों पर कार्य करता है-

1. कार्यकर्ता यह निर्धारित करता है कि किस प्रकार के समूह का निर्माण किया जा सकता है जैसे मनोरंजनात्मक, शिक्षात्मक, सामाजिक या मिश्रित।
2. समूह कार्य की कार्य-प्रणाली निर्धारित करता है जैसे- खेल-कूद, ड्रामा, वार्तालाप इत्यादि।
3. स्थान का चयन करता है।
4. समय का निर्धारण करता है।
5. समूह अवधि का निर्धारण करता है।
6. संसाधन का निर्धारण करता है।
7. माध्यमों का निर्धारण करता है।
8. समूह का उद्देश्य निर्धारित करता है।
9. सदस्यों का चयन निर्धारित करता है।
10. संस्था अथवा समुदाय में स्त्रोतों का निर्धारण करता है।

2. कार्यक्रम नियोजित करने में सहायता करना- कार्यकर्ता समूह के साथ मिलकर कार्यक्रमों को नियोजित करने में समूह सदस्यों की सहायता करता है। वह कार्यक्रम को अधिक प्रभावशाली एवं रचनात्मक बनाने में समूह की सहायता करता है, जिससे अधिक से अधिक समूह की आवश्यकताओं को पूरा किया जा सके और इसके अतिरिक्त वह समूह को कार्यक्रम हेतुदिशा-निर्देश देता है।

3. समूह की रूचियों को खोजने में सहायक का कार्य- कार्यकर्ता समूह सदस्यों की विभिन्न रूचियों की खोज करता है।

4. अंत: क्रिया का निर्देशन - समूह कार्य प्रक्रिया में समूह सदस्यों के बीच कुछ न कुछ अंतःक्रिया अवश्य होती है यही अंत: क्रिया मूल्यांकन कार्यकर्ता द्वारा किया जाता है। वह सकारात्मक एवं नकारात्मक प्रत्युत्तरों को देखता है वह सफलता एवं असफलता के कारणों पर प्रकाश डालता है। ट्रेकर ने निम्नलिखित क्षेत्रों का ज्ञान कार्यकर्ता के लिए आवश्यक बताया है-

1. कार्य का विवरण ।
2. बारंबारता- कार्यकर्ता देखता है कि सदस्य कितनी बार तथा कैसे कार्य में भाग लेते हैं
3. अवधि - सदस्यों के द्वारा कार्यक्रमों में भाग लेने की अवधि को देखता है।

4. अन्तःक्रिया की दशा-दिशा की दो श्रेणियाँ होती हैं एक व्यक्ति की ओर तथा दूसरी उद्देश्य की ओर। कार्यकर्ता अंत: क्रिया की दिशा की ओर ध्यान देता है।

5. नेतृत्त्व का विकास करना- समूह कार्यकर्ता का मुख्य उद्देश्य समूह के सदस्यों में नेतृत्व का विकास भी करना है। कार्यकर्ता द्वारा यह भी प्रयास किया जाता है कि जो सदस्यों में सकारात्मक नेतृत्त्व के गुण विद्यमान हैं और वे उत्तरदायित्व को ग्रहण कर सकते हैं ऐसे सदस्यों हेतु प्रयास करता है। समूह कार्यकर्ता यह जानता है कि वह समूह के साथ कुछ ही दिन रहेगा और एक निश्चित समय पश्चात उसे समूह का समापन करना पडेगा इसलिए वह कोशिश करता रहता है कि समूह के ऐसे सदस्य जिनमें नेतृत्त्व हेतु सकारात्मक भाव हो ऐसे लोगों के निरंतर संपर्क में रहता है और इस प्रकार से निर्देशित करता है जिससे समूहनेता समूह का प्रिय सदस्य हो जाता है। वह समूह के प्रत्येक सदस्य को कोई जिम्मेदारी वाला कार्य सौंपता है जिससे समूह में एकता भी बनी रहे और किसी भी प्रकार उच्च-निम्न का भाव जाग्रत न हो सके।

6. मूल्यांकन करना- समूह कार्यकर्ता जैसे-जैसे कार्यक्रम प्रक्रिया को आगे बढ़ाता रहता है वह समूह व सदस्यों का मूल्यांकन करता रहता है। वह प्रत्येक सदस्यों की भूमिकाका भी मूल्यांकन करता है। कार्यकर्ता का हमेशा प्रयत्न रहता है कि वह सदस्यों द्वारा क्रियान्वित किए जा रहे कार्यों का प्रत्येक स्तर पर मूल्यांकन करते रहें टेकर ने मूल्यांकन के लिए निम्नलिखित कार्यों का उल्लेख किया है-

1. संस्था को ध्यान में रखकर व्यक्तियों और समूहों के उद्देश्यों का निर्धारण करना।
2. समूह व व्यक्ति के विकास व उन्नति को निश्चित करने के लिए मापदंड का ज्ञान रखना।
3. तीव्र विकास एवं परिवर्तन के लिए कार्यक्रम की योजना तैयार करना।
4. विकास व उन्नति के मापदण्ड के आधार पर अभिलेखों का विश्वेषण करना।
5. यह निश्चित करने के लिए कि क्या समूह उद्देश्यों को प्राप्त कर रहा है, विश्लेषणात्मक आँकड़ों की व्याख्या करना।
6. कार्यक्रम, विषय-वस्तु और ढंगों का पुनरावलोकन करना।
7. उद्देश्यों को संशोधित करना तथा मूल्यांकन में निरन्तरता बनाये रखना।
8. संस्था से संबंधित कार्यसामाजिक समूह कार्य में मुख्य रूप से तीन प्रकार के अंगों का वर्णन किया जाता है - कार्यकर्ता ,समूह एवं संस्था। सामाजिक संस्था द्वारा ही कार्यकर्ता समूह को सेवा प्रदान करता है। कार्यकर्ता संस्था के संबंध में यह जानने का प्रयास करता है कि
9. संस्था के प्रमुख उद्देश्यों के संबंध में जानकारी एकत्रित करता है।
10. संस्था की सामाजिक, आर्थिक, भौगोलिक व मनोसामाजिक स्थिति का पता लगाना।
11. संस्था में मुख्य रूप से उपलब्ध सुविधाओं को ज्ञात करना।
12. संस्था की कार्यप्रणाली को ज्ञात करना।
13. संस्था की नीतियों का अध्ययन कर समूह को संस्था की नीतियों केअनुरूप मोड़ने का प्रयास करना।
14. संस्था की सभी गतिविधियों में भाग लेना।

15. संस्था को समूह के हित में सोचने के लिए अंतर्दृष्टि देता है।

समूह कार्यकर्ता की भूमिका:- सामूहिक कार्यकर्ता समूह की आवश्यकता एवं सामूहिक स्थितियों को ध्यान में रखकर अपनी भूमिका को निभाता है। कुछ विद्वानों ने मुख्य रूप से समूह कार्यकर्ता की निम्नलिखित भूमिकाओं को स्पष्ट किया है

1. **सार्थकता की भूमिका (Enabler): -** कार्यकर्ता का सर्वप्रथम यह प्रयास रहता है कि वह अपने समूह -सदस्यों की आवश्यकताओं एवं समस्याओं को समझे एवं उन्हें सुलझाने में सहायता करें। अतः वह उन स्रोतों का पता लगाता है जिनसे आवश्यकताओं की पूर्ति हो सकती है तथा सदस्य सहयोग ले सकते हैं। वह समूह निर्माण के लिए व्यक्तियों में अपनी वर्तमान स्थिति के प्रति असंतोष उत्पन्न करता है, जिससे वे परस्पर सहयोग एवं संयुक्त प्रयास के लिए एकत्रित होते हैं। कार्यकर्ता सभी के मतानुसार समूह का निर्माण करता है। वह सदस्यों में अपनी समस्याओं के समाधान हेतू सक्षमता को विकसित करता है तथा कार्यक्रम के चयन हेतु भी सदस्यों में जागरूकता पैदा करता है अतः इस आधार पर वह एक सार्थकता की भूमिका को निभाता है।

2. **पथ-प्रदर्शक के रुप में (The Guide) :-** कार्यकर्ता एक पथ-प्रदर्शक की भाँति समूह को रास्ता दिखाता है। वह सदस्यों को संस्था व समुदाय की सुविधाओं एवं अन्य स्रोतों से अवगत कराता ,है जिनकी उन्हें आवश्यकता तो है परंतु वे जानते नहीं हैं। वह सदस्यों की अपनी भूमिका का एहसास कराता है तथा आवश्यक मुद्दों को स्पष्ट करता है। आवश्यकता पड़ने पर प्रत्यक्ष रूप से समूह की सहायता करता है। वह सामूहिक अंत र्क्रिया का निर्देशन करता है।

3. **अधिवक्ता के रूप में (The Advocate) :-** जिस प्रकार एक अधिवक्ता अपने मुवक्किल के लिए, उसके न्याय के लिए जज के सामने अपने पक्षों को रखता है उसी प्रकार कार्यकर्ता सदस्यों की समस्याओं को उच्च अधिकारियों के समक्ष रखता है तथा आवश्यक सेवाएँ प्रदान करने की सिफारिश करता है।
4. **विशेषज्ञ के रूप में (The Expert) :-** कार्यकर्ता सदस्यों को आवश्यकता पड़ने पर एक विशेषज्ञ की भाँति सलाह देने का कार्य करता है। वह समूह-समस्या का विश्लेषण करता है तथा उसका निदान किस प्रकार से किया जाए उसका हल खोजता है। समूह को विधिवत तथा अधिक प्रभावकारी होने के लिए उपयुक्त तरीके बतलाता है। वह संस्था व समूह के कार्यक्रमों का मूल्यांकन भी करता है, जिससे कार्यक्रम को सुव्यवस्थित रूप से संपन्न किया जा सके।
5. **चिकित्सक के रूप में (The Therapist):-** जिस प्रकार एक चिकित्सक मरीज के रोगों के अध्ययन के पश्चात उचित इलाज करता है, उसी प्रकार एक कार्यकर्ता समूह की कुछ मुख्य समस्याओं को चयनित कर उनका समाधान करने में समूह की सहायता करता है। वह समूह का उन शक्तियों से

परिचय करवाता है जो विघटनात्मक है तथा जिनका प्रत्यक्ष रुप से प्रभाव पड़ता है। वह समूह को इस प्रकार से प्रेरित करता है जिससे सदस्य स्वयं परिवर्तन की माँग करते हैं। वह सदस्यों के अहं को सुदृढ़ करता है।

6. **परिवर्तक के रूप (The Changer) :-** कार्यकर्ता सदस्यों की आदतों में परिवर्तन लाने के लिए अनेक कार्यक्रम करता है, क्योंकि कभी-कभी आदतों के कारण ही समस्या उठ खड़ी होती है और परिवार व समाज में विघटन उत्पन्न कर देती है। कार्यकर्ता सदस्यों के कार्य करने के तरीकों में भी परिवर्तन लाने का प्रयास करता है , क्योंकि जब तक कार्य करने के ढ़ंगों में बदलाव नहीं आएगा तब तक समूह किसी भी प्रकार से विकास नहीं कर सकेगा। वह सदस्यों के मनोवृत्तियों मे भी परिवर्तन लाने के कार्यक्रम प्रस्तुत करता है जिससे की समूह को मजबूती प्रदान होसके।
7. **सूचना दाता के रूप में (The Imformer) :-** कार्यकर्ता एक सूचनादाता के रूप में समूह के साथ कार्य करता है। वह समूह को संस्था के संदर्भ में उपलब्ध सुविधाओं के अतिरिक्त समुदाय की आवश्यकताओं एवं समूह सदस्यों को प्राप्त होने वाली समस्त सुविधाओं के संदर्भ में समूह की सहायता करता है।
8. **सहायक के रूप में (The Helper) :-** कार्यकर्ता समूह की सहायता लक्ष्य निर्धारण तथा लक्ष्यों को प्राप्त करने के तरीकों को निश्चित करने में करता है। वह संस्था से सहायता लेने में समूह की मदद करता है। कार्यक्रमों के निर्धारण तथा उनका चयन करने में वह सहायता करता है। समूह में सामूहिक चेतना तथा सामूहिक भावना विकसित करने के लिए समूह की सहायता करता है।

अतः उपर्युक्त आधारों पर यह कहा जा सकता है कि समूह कार्यकर्ता समूह के प्रत्येक चरण व अवस्था में प्रारंभ से समापन तक अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका कोनिभाता है एवं इन आधारों परवह समूह का लक्ष्य प्राप्ति हेतु सहायता करता है।

2.6 सारांश

संपूर्ण अध्ययन करने के पश्चात यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि समूह कार्य प्रक्रिया एक अत्यंत ही सावधानीपूर्वक की जाने वाली गतिविधि है जिसमें प्रत्येक अवस्था व चरण का अपना महत्त्व है । इस संपूर्ण प्रक्रिया में यदि एक भी चरण में कोई गलती हो जाती है तो संपूर्ण कार्य प्रक्रिया प्रभावित होती है अतः प्रत्येक चरण को बड़ी सावधानीपूर्वक संपन्न करना चाहिए । विद्वानों द्वारा दिए गए मुख्य चरण एवं अवस्था में हमारे द्वारा मुख्य अवस्थाओं, प्रथम अवस्था-समूह रचना (आरंभ), द्वितीय अवस्था-पर्यवेक्षण (आरंभिक सत्र), तृतीय अवस्था-निष्पादन (क्रियात्मक चरण), चतुर्थ अवस्था-मूल्यांकन (समीक्षा), पंचम अवस्था-समापन (समाप्ति चरण) पर चर्चा की गई है। लेकिन सारांश में टकमैन (1963) द्वारा दिए गऐ समूह कार्य अवस्था को समझने से समूह अवस्था संबंधी कार्यमें और अधिक स्पष्टता आ सकती है इसलिए इसको भी समझ लेना आवश्यक होगा। (Norming), परफारमिंग (Perfomig) एवं एडजर्निंग (Adjourning) के आधार पर

वर्णन किया है। "Forming stage :- Forming वह Stage जिसमें समूह में सम्मिलित प्रत्येक सदस्य एक साथ मिलते हैं एवं सदस्य एक दूसरे से अनभिज्ञ रहता है तथा सदस्य निष्क्रिय रहते हैं Forming stage में ही समूह को समस्या का पता चलता है। इस चरण में सदस्यों के मध्य कभी-कभी संघर्ष की स्थिति भी आ जाती है। Forming stage में समूह नया होता है तथा प्रत्येक व्यक्ति अपने ही विचारों में रहता है। "*Storming"* :- (आक्रमण करना) इस चरण में समूह के प्रत्येक सदस्य स्वयं को श्रेष्ठ बनाने में लगा रहता है। सब अपनी-अपनी बात को महत्त्व देते है। परिणामस्वरुप वैचारिक मतभेद समूह में होने लगता है। वैचारिक मतभेद की स्थिति के कारण इस चरण में समूह कभी-कभी टूटने की स्थिति में भी आ जाता है समूह में तनाव की स्थिति बनी रहती है। बिना वाद विवाद के कोई भी एक निश्चित बिंदु पर किसी भी बात को स्वीकार नही करता अर्थात समूह में कोई भी किसी कि बात नही सुनता।*Norming:-* इसके पश्चात के नोर्मिंग चरण में आते हैं। इस चरण में समूह अपने छोटे-छोटे समूह में बट जाता है एवं समूह के सदस्यों के मध्य आपसीसंबंध स्थापित होता है वे एक साथ कार्य करते हैं सहयोग तथा घनिष्ठता के कारण समूह का प्रत्येक सदस्य स्वयं को समूह में सुरक्षित महसूस करता है तथा अपने विचारो तथा बिंदुओं को स्वतंत्रता से व्यक्त कर पाता है। तथा पूरे समूह मे स्वतंत्रता से विचार-विमर्ष कर पाता है। सबसे प्रमुख महत्त्वपूर्ण बात यह है कि इस चरण में समूह के सदस्य एक दूसरे की बात को सुनते हैंतथा ताल-मेल स्थापित करते हैं। Performing :-. इस चरण में समूह स्थापित हो जाता है। एव समूह कार्यकर्ता यह निश्चित कर लेता है कि समूह स्थापित हो गया है।परफारमिंग में समूह के प्रत्येक सदस्य लक्ष्य तथा प्रभाव को हासिल करने में जुट जाते हैंतथा एक साथ सहयोगी रूप से कार्य करते हैं। तो इस प्रकार से भी समूह कार्य अवस्था को समझा जा सकता है। साथ ही सामूहिक कार्यकर्ता भी समूह के प्रत्येक अवस्था में अपनी भूमिका को निभाता है एवं अपनी सेवाओं के द्वारा समूह के लक्ष्य प्राप्ति हेतु सहायता करता है। वह व्यक्ति के सामाजिक, आर्थिक विकास हेतु संपूर्ण प्रयास करता हैओर सामाजिक संबंधो के आधार पर विकासात्मक एवं शिक्षात्मक क्रियाओं का आयोजनसमस्या समाधान हेतु करता है । अत: उपर्युक्त अध्ययन के पश्चात यह कहा जा सकता है कि समूह कार्य प्रक्रिया में अवस्थाएँ एवं चरण और समूह कार्यकर्ता की भूमिका समूह कार्य हेतु अत्यंत हीमहत्त्वपूर्ण है।

2.7 बोध प्रश्न -

प्रश्न 01.सामूहिक समाज कार्य में प्रयुक्त किए जाने वाली विभिन्न अवस्थाओं की व्याख्या कीजिए।

प्रश्न 02 समूह विकास की अवस्था में आपके अनुसार सबसे प्रमुख चरण कौनसा है? स्पष्ट कीजिए ।

प्रश्न 03. समूह निर्माण करते समय किन-किन महत्त्वपूर्ण बातों को ध्यान में रखना चाहिए?

प्रश्न 04 सामूहिक समाज कार्य हेतुसमूह कार्यकर्ता की भूमिका कोस्पष्ट कीजिए ?

प्रश्न 05 समापन अवस्था को विस्तारपूर्वक समझाइऐ?

2.8 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

- Douglas Tom (1976). *Group work Practice*, Newyork : International University press.
- Porter, E.H. (1947). *Communit*y, Newyork, Wise women's press.
- इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय (2010).*समूहों के साथ कार्य करना.* दिल्ली : समाज कार्य विद्यापीठ ।

- सिंह, ए.एन. एवं सिंह ए.पी. (2008). *समाज कार्य.* लखनऊ:हल्दानी प्रकाशन।
- मिश्रा, प्रयागदीन(2008). *सामाजिक सामूहिक* कार्य. लखनऊ : हिंदी संस्थान।
- कुलसचिव उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की ओर से मुद्रित एवं प्रकाशित समूह समाज कार्य।
- तेज संगीता एवं पाण्डेय तेजस्कर(2010). *समाज कार्य.* लखनऊ : जुबली एच फान्डेशन।
- सिंह, ए. एन., सिंह, नीरजा, संजय मिश्रा, सुषमा (2012) *सामूहिक कार्य, हल्दानी* : उत्तरायन प्रकाशन।
- गार्विन, चार्ल्सो दी इटीएल (2008). *हैंड बुक ऑफ सोशल वर्क विद ग्रुप्स*नई दिल्ली : रावत पब्लिकेशन।
- कोनोप्का, जिसेला (1963). *सोशियल ग्रुप वर्कर ए हेल्पिंग प्रोसस.* नई दिल्ली: एस.जे. प्रिंटिस हाल।
- सिद्दीकी एच.वाई. (2008). *ग्रुप वर्क थ्योएरिज एंड प्रैक्टिसिज* नई दिल्ली: रावत पब्लिकेशन।
- ट्रेक्कीर, हार्लिग बी (1955). *सोशल ग्रुप वर्क, प्रिंसिपल्सि एंड प्रैक्टिसिज.* न्यूयॉर्क: एसोसिएशन प्रैस।
- विल्स्न, गर्टुड एंड ग्लाडिस रीलेंड, (1940). *सोशल ग्रुप वर्क प्रैक्टिस.* बोस्टो : हॉग्टोकन मिक्लिन।

इकाई 3 समूह निर्माण की प्रक्रिया

इकाई रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 समूह की निर्माण की अवधारणा

3.3 समूह की विशेषताएँ

3.4 सामाजिक समूह कार्य में समूह निर्माण

3.5 समूह निर्माण की प्रक्रिया-सामाजिक समूह कार्यकर्ता द्वारा महत्त्वपूर्ण कार्य

3.6 समूह अध्ययन हेतु निर्देशिका

3.7 सारांश

3.8 बोध प्रश्न

3.9 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

3.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप

- ❖ समूह निर्माण एवं उसकी विशेषताओं की व्याख्या कर सकेंगे।
- ❖ सामाजिक समूह कार्य में समूह निर्माण को रेखांकित कर सकेंगे।
- ❖ इस प्रक्रिया में सामाजिक समूह कार्यकर्ता की भूमिका को विश्लेषित कर सकेंगे।

3.1 प्रस्तावना

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह समाज में रहकर ही अपना जीवन-यापन व्यतीत कर सकता है। समाज के बिना मनुष्य का जीवन असंभव नजर आता है। वह जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त न केवल विभिन्न प्रकार के समूहों में रहता है बल्कि निरंतर नए समूहों का निर्माण भी करता है। समूहों के माध्यम से ही व्यक्ति अपनी विभिन्न प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। समूहों से पृथक व्यक्ति के अस्तित्व की साधारणतः कल्पना नहीं की जा सकती। विभिन्न समूहों के माध्यम से ही व्यक्ति का समाजीकरण और व्यक्तित्व का विकास होता है। मनोवैज्ञानिकों की मान्यता है कि व्यक्ति अपनी एक मूलप्रवृत्ति 'ग्रिगेरियस इन्सर्टिक्ट' के कारण ही समूह में रहता है। समूहों के माध्यम से ही एक पीढ़ी के विचारों तथा अनुभवों को दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित किया जाता है। आमतौर पर समूह शब्द का प्रयोग कुछ व्यक्तियों के संगठन जैसे परिवार, भीड़, सामाजिक वर्ग, धार्मिक वर्ग, व्यावसायिक वर्ग, विभिन्न प्रजातियाँ, आदि के लिए किया जाता है। आप इससे पहले समूहों की प्रकृति तथा समूह सक्रियता के अर्थ का अध्ययन कर चुके है साथ ही यह भी जान चुके है कि समूह की अवस्थाएँ क्या होती हैं। वास्तव में समूह निर्माण सभी समूह विकास और निष्पादन का प्रारंभिक बिंदु होता है। समूह निर्माण प्रक्रिया के माध्यम से ही सामाजिक समूह कार्य संपन्न किया जा सकता है।

3.2 समूह निर्माण की अवधारणा -

समूह का निर्माण अकारण नहीं होता है। इसके पीछे अनेक कारण होते हैं। एक समूह निर्माण में प्रभावी कारण मनुष्य की स्वार्थता नजर में आती है। समूह का निर्माण क्यों और कैसे होता है इस संदर्भ में मैकाइवर

और पेज ने समूह निर्माण की निम्नलिखित विशेषताओं कीओर ध्यान आकर्षित करते हुए कहा है कि सामान्य हित ही सामूहिकता की भावना को जन्म देता है। इसका स्पष्टीकरण देते हुए उन्होंने तीन बातों को मुख्य रूप से कहा है - सर्वप्रथम उन्होने कहा है कि - मनुष्य स्वंय ही आवश्यकता की पूर्ति कर सकता है पर वह व्यावहारिक नहीं है, द्वितीय व्यक्ति समाज के अन्य सदस्यों से संघर्ष करके अपने लक्ष्य की प्राप्ति कर सकता है पर वह मानव समाज के लिए विघटनकारी है और अंत में व्यक्ति कुछ लोगों के साथसहयोग करके अपने लक्ष्य की प्राप्ति कर सकता है। अतः मैकाइवर और पेज के अनुसार यह तीसरा तरीका ही समूह निर्माण का कारक बनता है । अतः इन्ही महत्त्वपूर्ण बातों को ध्यान में रखकर समूह निर्माण प्रक्रिया को पूर्ण किया जाता है।

3.3 समूह की विशेषताएँ -

मानव-क्षेत्र में समूह से तात्पर्य, मनुष्यों के ऐसे संकलन से है जो एकदूसरे के साथ सामाजिक संबंध रखते हैं। समूह को परिभाषित करते हुए शेरिफ ने कहा था कि- 'समूह एक सामाजिक इकाई है जिसका निर्माण ऐसे व्यक्तियों से होता है जिनके बीच (न्यूनाधिक) निश्चित परिस्थिति एवं भूमिका विषयक संबंध हो तथा व्यक्ति-सदस्यों के आचरण को, कम से कम समूह के लिए महत्वपूर्ण मामलों में, नियमित करने के लिए जिसके अपने कुछ मूल्य या आदर्श-नियम हो'। अतः अनेकों विद्वानों द्वारा दी गई परिभाषाओं के आधार पर समूह की निम्नलिखित विशेषताओं को देखा जा सकता है

1. **व्यक्तियों का समूह:-** समूह दो या दो से अधिक व्यक्तियों का होता है। किसी भी समूह का निर्माण एक अकेले व्यक्ति द्वारा नहीं हो सकता।
2. **उद्देश्य पूर्ति :-** प्रत्येक समूह का निर्माण किसी न किसी उद्देश्य के कारण ही होता है जिसमें प्रत्येक सदस्य साथ मिलकर उद्देश्य की प्राप्ति करते हैं। समूह के सदस्यों में कार्य-विभाजन कर दिया जाता है।
3. **सामान्य रुचि :-** किसी भी समूह का निर्माण उन्हीं व्यक्तियों द्वारा होता है जिनकी रुचि एक समान होती है जैसे- एक सी पसंद का होना, खेलना-कूदना आदि।
4. **एक समान हित -** मनुष्य एक स्वार्थी प्राणी है, जब व्यक्ति का हित समान होता है तो वह समूह का निर्माण करना आरंभ कर देता है । विरोधी हितों वाले व्यक्ति का समूह का निर्माण करना असंभव हो जाता है।
5. **लक्ष्य :-** कोई समूह, समूह के रूप में उसी समय तक कायम रह सकता है जब तक वह किसी लक्ष्य की प्राप्ति हेतु एक साथ मिलकर प्रयास करते हैं। यदि लक्ष्य प्राप्ति न हो तो समूह में एकता की भावना नहीं रह पाएगी और समूह टूट जायेगा ।
6. **ऐच्छिक सदस्यता:-** समूह की सदस्यता ऐच्छिक होती है इसका तात्पर्य यह है कि सदस्यअपनी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतुसमूह को स्वीकारता है। व्यक्ति सभी समूहों का सदस्य नही बनता वरन उन्ही समूहों की सदस्यता ग्रहण करता है जिनमें उसके हितों, आवश्यकताओं एवं रुचियों की पूर्ति होती हो।
7. **स्तरीकरण:-** समूह में सभी व्यक्ति समान पदों पर नहीं होते वरन् वे अलग-अलग प्रस्थिति एवं भूमिका निभाते हैं। अतः समूहों में पदों काउतार-चढ़ाव पाया जाता है।

8. **सामूहिक आदर्श:-** प्रत्येक समूह में सामूहिक आदर्श एवं प्रतिमान पाए जाते है जो सदस्यों के पारस्परिक व्यवहारों को निश्चित करते हैं, उन्हें एक स्वरुप प्रदान करते हैं। प्रत्येक सदस्य से यह अपेक्षा की जाती है कि वह समूह के आदर्शो एवं प्रतिमानों जैसे प्रथाओं, कानूनों, लोकाचारों, जनरीतियों आदि का पालन करें।
9. **स्थायित्व:-** समूह में थोड़ी बहुत मात्रा में स्थायित्व भी पाया जाता है। यद्यपि कुछ समूह अपने उद्देश्यों की पूर्ति के बाद ही समाप्त हो जाते हैं। फिर भी वे इतने अस्थिर नही होते कि आज बने और कल समाप्त हो गए।
10. **समझौता:-** समझौता मनुष्य के लिए प्रत्येक स्तर पर अत्यंत ही आवश्यक होता है।किसी भी समूह की स्थापना तभी संभव है जब उसके सदस्यों में समूह के उद्देश्यों कार्य-प्रणाली, स्वार्थ पूर्ति, नियमों, आदि को लेकर आपस में समझौता हो।
11. **ढाँचा:-** प्रत्येक समूह के नियम, कार्यप्रणाली, अधिकार, कर्तव्य, पद एवं भूमिकाएँ आदि तय होते हैं। इसी आधार पर यह एक संरचना या ढाँचा का निर्माण करते हैं और सदस्य उन्हीं के अनुसार आचरण करते हैं।
12. **अन्तर्वैयक्तिक संबंध :-** प्रत्येक समूह में परस्पर अंत क्रिया का होना अत्यंत ही आवश्यक होता है। जब तक वह किसी अन्य व्यक्ति के साथ अंत: क्रिया नहीं करेगा तब तक वह समूह का सदस्य नहीं हो सकता । अतः समूह में अन्तर्वैयक्तिक संबंध का होना अत्यंत हीआवश्यक होता है।
13. **आदान प्रदान:-** सहयोग एवं आदान-प्रदान से ही समूह के सदस्य अपने सामान्य हितों की पूर्ति कर पाते हैं। इसी सहयोग एवं आदान-प्रदान के आधार पर समूह के सदस्य एक-दूसरे के कष्ट में सहयोग एवं सहायता भी करते हैं।
14. **स्पष्ट सख्या:-** स्पष्ट संख्या के संदर्भ में अनेक विद्वानों की अलग-अलग राय है। लक्ष्य के आधार पर समूह संख्या का निर्धारण किया जाना चाहिए।एक सामाजिक समूह में सदस्यों की संख्या स्पष्ट होना चाहिए जिससे उसके आकार एवं प्रकार को स्पष्ट रूप से समझा जा सके।

अतः उपर्युक्त विशेषताओं के आधार पर समूह को समझा जा सकता है।

3.4 सामाजिक समूह कार्य में समूह निर्माण

सामाजिक समूह कार्य प्रणाली में समूह निर्माण एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया है क्योंकि इसी प्रक्रिया के माध्यम से सेवार्थी को सेवाएँ प्रदान की जाती हैं। कार्यकर्ता एवं संस्था दोनों के लिए समूह एक आवश्यक साधन व यंत्र होता है जिसका प्रयोग कर उद्देश्यों का निर्धारण करने से लेकर लक्ष्य प्राप्तितक संपूर्ण कार्य किए जाते हैं। कुछ समूह तो स्थायीरूप से संस्था के अंग होते हैं लेकिन कुछ समूह अस्थायी होते हैं जो लक्ष्य प्राप्ति हेतु समूह में सम्मिलित किए जाते हैं। कुछ समूह आकार में छोटे होते हैं तो कुछ समूह आकार में बडे होते हैं, कुछ समूह संगठितहोते हैं कुछ असंगठित होते है, कुछ समूहों का संरचनाओं के आधार पर उनका निर्माण किया जाता है। अतः समूहों की संख्या, स्थायित्व, संरचना, समूह लक्ष्य पर अधिक निर्भर करती हैं। समूह निर्माण लघु परिवर्तनों के साथ एकल प्रक्रिया नहीं हैं यह बिल्कुल अलग घटनाक्रम, नए और भिन्न समूहों के निर्माण का परिणाम हो सकता हैं। कार्टराइट और जैंडर (1968) ने तीन अलग-अलग परिस्थितियों की पहचान की हैं जिसमें समूह अपने अस्तित्व में आता है, ये हैं-

1. **सुविचारित निर्माण-** एक या उससे अधिक लोग अपने कुछ उद्देश्यों को पूरा करने के लिए समूह निर्माण करते हैं। सुविचारात्मक निर्माण अथवा 'निर्मित' समूह, बाहर के अभिकर्ता समूह के लिए लोगों को काम करने के लिए तैयार करते हैं और समूह के उद्देश्य के अनुसार विशेष प्रकार के पदों से सज्जित करते हैं। अनेक कार्य समूह, समस्या समाधान समूह, चिकित्सा समूह, सामाजिक क्रिया समूह तथा सलाहकार मध्यस्थ समूह और सबसे अधिक समूहों की भरमार सामाजिक मनोविज्ञान तथा शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए निर्मित सभी समूह इसी श्रेणी के अंदर आते हैं।
2. **स्वैच्छिक निर्माण-** समूह का निर्माण अंतवैयक्तिक रूचि व इच्छाओं के आधार परहोता है। समूह का निर्माण इसलिए होता है कि लोग एक साथ मिलकर अपनी इच्छाओं को पूरा करना चाहते हैं उदाहरण के लिए, मित्रता समूह या मैत्री समूह, गैंग और व्यावसायिक समूह इत्यादि।
3. **बाहरी पद-** इसका निर्माण इसलिए होता है कि लोग उनके साथ समजातीय के रूप में व्यवहार करते हैं। यह बाहरी पदों का सृजन समूहों के सुविचारित निर्माण की दिशा में ले जा सकता है।
4. **समूह नियोजन-** समूह का निर्माण कुछ विशिष्ट उद्देश्यों को लेकर किया जाता है जैसे- कुछ कार्यक्रम संबंधी, कुछ विशेष व्यवहार, अतिसक्रीय या क्रोधी लोग या असामाजिक बच्चों संबंधी, कुछ सामान्य रोग संबंधी, विशिष्ट लक्षणों संबंधी एवं परिस्थिति संबंधी इन समस्त उद्देश्य संबंधी समूहों को नियोजित करने की समाज कार्य समूह की सफलता के लिए एक व्यापक योजना की आवश्यकता होती है। नार्दन तथा कुरलैंड (2001, पृ. 109-111) के अनुसार 'समूह की प्रथम बैठक से पहले नियोजन करना आवश्यक है, इसमें सोचना या विचार करना, तैयारी, निर्णय लेना और सामाजिक कार्यकर्ता के कार्यों इत्यादि की योजना शामिल है।' समूह कार्य हेतु नियोजन को और अधिक निम्न बिंदु ओं के माध्यम से समझा जा सकता है

1. **आवश्यकता -** समूह सदस्य वह निर्धारित करते हैं कि परिप्रेक्ष्य के संदर्भ में कौन-सी समस्याएँ, मुद्दे और क्षेत्र विचारणीय हैं।
2. **उद्देश्य -** समूह के सामूहिक प्रयासों का समापन और उद्देश्य क्या होंगे? समूह के सदस्यों के व्यक्तिगत उद्देश्य क्या होंगे ?
3. **संयोजन -** समूह में कितने व्यक्ति सदस्य होंगे ? उनके बीच कौन-से महत्त्वपूर्ण बिंदु समान होंगे औरकौन-से भिन्न बिंदु होंगे?
4. **संरचना-** समूह संचालन की विशेष व्यवस्था तथा सुविधाएँ क्या होंगी? विशिष्ट रूप से समय और स्थान की क्या व्यवस्था होंगी ?
5. **विषय-** समूह में वास्तविक विषय क्या होगा या उसमें क्या किया जाएगा ?
6. **पूर्व-समूह संपर्क-** यदि कार्यकर्ताओं द्वारा समूह सदस्य पहले से निश्चित किएजा चुके हैं तो ऐसी स्थिति में संयोजन की प्रक्रिया आरंभ होती है। जैसे यदि एक ही अस्पताल में रहने वाले बीमार व्यक्ति। कार्यकर्ता अब सदस्यों की आवश्यकताओं के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे। समूह में व्यक्तियों की प्रतिबद्धताओं की क्षमताओं तथा प्रोत्साहनों कीजानकारी लेंगे। समूह पूर्व संपर्क में उद्देश्यो, संरचना, विषय एवं व्यस्तता आदि सम्मिलन के निर्धारण के संदर्भ में बताएंगे।

3.5 समूह निर्माण की प्रक्रिया-सामाजिक समूह कार्यकर्ता द्वारा महत्त्वपूर्ण कार्य

समूह कार्य प्रक्रिया में समूह कार्यकर्ता की महती भूमिका होती है। कार्यकर्ता यह प्रयास करता है कि किस प्रकार से समूह के सदस्यों आपस में संबंध स्थापित करें जिससे आवश्यक समूह कार्य प्रक्रिया को संपन्न किया जा सके। इसके लिए कार्यकर्ता द्वारा निम्नांकित प्रयास किए जाते हैं -

1. समूह कार्य प्रक्रिया प्रारंभ होने के पश्चात नए सदस्यों का आगमन प्रारंभ हो जाता है जिससे कार्यकर्ता समूह सदस्यों के मध्य आपसी सामंजस्य का प्रयास करता है। उसी समय कार्यकर्ता का प्रयास रहता है कि वह संस्था एवं सदस्यों की वस्तुस्थिति से सभी सदस्यों को अवगत कराए।
2. कार्यकर्ता के लिए यह आवश्यक होता है कि वह व्यक्ति एवं समूह दोनों का ज्ञान रखे और नए सदस्यों के शामिल होने संबंधी तथ्यों पर सोचविचार कर निर्णय ले। यह भी ध्यान रखें कि समूह का प्रत्येक सदस्य उसकों स्वीकर करें साथ ही, समूह की आवश्यकता का ज्ञान भी कार्यकर्ता को होना चाहिए।
3. कार्यकर्ता को स्पष्ट रूप से समूह के संदर्भ में संभावित उद्देश्यों को निर्धारित कर लेना चाहिए और यदि कार्यकर्ता पहले से ही निर्मित समूह के साथ कार्य करना चाहता है तो उसे चाहिए कि वह उस समूह में शामिल होने से पूर्व उसके व्यापक उद्देश्योंकी जानकारी अवश्य ही प्राप्त कर लें।
4. समूह कार्य का एक मुख्य उद्देश्य नेतृत्व का विकास भी करना है। नेतृत्व विकास से कार्य सदस्य एक सूत्र में बंध जाते है तथा अपनेपन की भावना का विकास होता है। कार्यकर्ता कोनेतृत्व की स्थिति का उपयोग उचित प्रकार से करना चाहिए।
5. कार्यकर्ता में आवश्यक कुशलताएँ होना चाहिए। जिससे वह समूह में ऊर्जा का संचार कर सके ओर उचित तकनीकों का प्रयोग कर समूह भावना को विकसित कर सके।
6. समूह निर्माण प्रक्रिया के दौरान कार्यकर्ता के कार्य का एकमहत्त्वपूर्ण हिस्सा समूह से पहले संपर्क है। इस संपर्क का उद्देश्य नियोजित किए जा रहे समूह के लिए उपयुक्त सदस्यों को सुरक्षित या निश्चित करना तथा उस समूह में भागीदारी के लिए उनको तैयार करना है।
7. कार्यकर्ता को संसाधनों के उपयोग का पूर्ण ज्ञान होना और साथ ही पत्र-पत्रिकाओं विज्ञापन,समाचार पत्र, संस्थानों को पत्र लिखना आदि कुशलताओं का ज्ञान होना आवश्यक हो जाता है।
8. कार्यकर्ता अभिकरण द्वारा समूह की योजना बनाने के ठीक इसी समय से समूह के उद्देश्य संरचना, सदस्यता, प्रचार का कार्य हाथ में लेना, संभावित सदस्यों का चयन और भर्ती करना इत्यादि के संबंध में एक विस्तृत रूपरेखा तैयार कर लेनी चाहिए, कार्यकर्ता को बहुत ही महत्त्वपूर्ण कार्यों का निष्पादन करना होता है जिनका इसके लक्ष्यों की उपलब्धियों में समूह की सफलता पर सीधा प्रभाव पड़ता है । समूह निर्माण की व्यापक प्रक्रिया की पहले ही योजना बनानी चाहिए तथा समूह की सफलता के लिए प्रथम बैठक बहुत ही व्यापक एवं महत्त्वपूर्ण होती है।
9. कार्यकर्ता का यह भी दायित्त्व होता है कि वह समुदाय से संबंधित सामुदायिक नेताओं, स्थानीय पंचों को समूह कार्य से संबंधित उद्देश्यों से सभी को अवगत कराएँ।

10. समूह कार्यकर्ता के लिए अत्यंत ही आवश्यक है कि वे समूह की संरचना तथा उसके विशेष लक्षणों के संबंध में विस्तृतनियोजन के निर्णय को तैयार करें।
11. कार्यकर्ता को यह निश्चित कर लेना चाहिए कि क्या प्रस्तावित समूह को आरंभ करने के लिए किसी प्राधिकारी की अनुमति की आवश्यकता होगी। ऐसे कई कार्यक्रम एवं समूह होते हैं जिनको आरंभ करने के पूर्व संभावित अधिकारियों से स्वीकृति आवश्यक होती है।

इन सब तथ्यों के अतिरिक्त समूह कार्यकर्ता समूह को स्थापित करने तथा निर्मित करने से पहले समूह कार्य की प्रणालियों को लागू किया जाना चाहिए। व्यावसायिक समाज कार्यकर्ता को कुछ महत्त्वपूर्ण प्रश्नों के उत्तर प्राप्त करने चाहिए तथा उसके पश्चात निर्णय लिए जाने चाहिए।

1. सामाजिक अभिकरण के क्या उद्देश्य हैं ?
2. सामाजिक अभिकरण का लक्ष्य समूह कौन स्थापित करेगा ?
3. क्या समूह कार्य द्वारा सामूहिक लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है ?
4. जिन सदस्यों के समान उद्देश्य हैं उनकी पहचान करना ?
5. क्या जो समय, स्थान, दिन व वातावरण का निर्धारण किया गया है वह उचित है?
6. समूह का उद्देश्य कौन निर्धारित कर रहा है?
7. समूह के कौन से भावी सदस्य होते हैं? किस प्रकार से उनका समूह में चयन और उन्हें सूचीबद्ध किया जाता है ?
8. सदस्यों के चयन के पीछे आधार क्या होगा? क्या एक-दूसरे से परिचित व्यक्तियों के आधार पर चयन किया जाएगा? कार्यकर्ता सुविचार के तहत अपने हित-लाभ, कौशल, आवश्यकता समस्या या सरोकारों को ध्यान में रखते हुए प्रस्तावित समूह के लिए परिप्रेक्ष्य सदस्यों का चयन कर सकता है?
9. समूह में सदस्यों की संख्या का निर्धारण कैसे किया जाएगा ?
10. समूह में कौन से कार्यक्रमों का पालन किया जाएगा? चर्चा, खुली या विषम-मूलक होगी ? क्या गतिविधियाँ-खेल, कला और शिल्प कला, नाटक, भूमिका निभाना, सामुदायिक सेवा इत्यादि एक साथ होगी ?
11. अनेक गैर-सामाजिक कार्य संस्थाएँ जैसे विद्यालय, अस्पताल, बन्दी-गृह, आदि में सामाजिक कार्यकर्ता को किस प्रकार के सहयोग की आवश्यकता है? इसका निर्धारण करना।
12. यह निर्णय लेना कि किस प्रकार से समूह की शुरूआत की जाए इसकी पूरी अवधि में समूह की निगरानी किस प्रकार की जाए, किस प्रकार से समूह के कार्य निष्पादन तथा विकास का मूल्यांकन किया जाए और कब और कैसे समूह को समाप्त किया जाए ? यह सब बातें समूह के सक्षम योजना के लिए समान रूप से महत्त्वपूर्ण है।

अतः उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि व्यावसायिक समूह कार्यकर्ता को कुछ महत्त्वपूर्ण प्रश्नों के उत्तर प्राप्त करने चाहिए तथा उसके पश्चात निर्णय लिए जाने चाहिए।

समूह निर्माण को प्रभावित करने वाले कारक

हम सभी एक ही समय में विभिन्न प्रकार के समूहों के सदस्य होते हैं जैसे- परिवार के, मित्रमंडली, कार्य संगठनों के, धार्मिक संस्थाओं के इत्यादि। प्रत्येक समूह के अपने अलग-अलग कार्य एवं उद्देश्य होते हैं हम

अपने-अपने हितों की पूर्ति के लिए समूह से जुड़े हैं। समूह कार्य प्रक्रिया में जब सदस्य भाग लेता है तो वह भी इन्हीं संस्थाओं के मध्यम से समूह का सदस्य बनने आता हैं कई ऐसे कारक होते है, जो एक व्यापक किस्म के समूहों में प्रवेश करने और बने रहने के हमारे निर्णय को प्रभावित करते हैंये प्रकार निम्नानुसार हो सकते हैं-

1. समूह के सदस्यों के प्रति कार्यकर्ता का विशेषआकर्षण।
2. समूह की गतिविधियाँ।
3. लक्ष्य तथा कार्य समूहों के साथ जुड़ना।
4. समूह के बाहर की आवश्यकताओं एवं लक्ष्यों को प्राप्त करना।

इसके अतिरिक्त कुछ अन्य कारक भी हैं जो समूह को प्रभावित करते हैं जैसे- कार्यात्मक विभाग, शारीरिक गतिविधियाँ, बौद्धिक प्रयास, भावनात्मक आवश्यकताएँ या संरक्षण और मित्रता बनाना। विल्सरन तथा रीलांड (1949) ने विभिन्न कारकों पर प्रकाश डाला है -प्रत्येक सामाजिक कार्यकर्ता जो समूहों के साथ कार्य करता है, उन्हें इन कारकों की जानकारी रखना अत्यंत आवश्यक है। समूह का आकार, स्थापना-अभिकरण तथा समुदाय जिसमें समूह स्थापित करना है, सदस्यों का व्यक्तित्व, उनकी सांस्कृतिक, सामाजिक और आर्थिक पृष्ठभूमि तथा अभिकरण और समुदाय में इस समूह से दूसरे समूहों के संबंध इत्यादि ये सब प्रमुख कारक हो सकते हैं जिन्हें कार्यकर्ता को कार्य के दौरान ध्यान में रखना चाहिए।

3.6 समूह अध्ययन हेतु निर्देशिका

समूह कार्य को स्पष्ट रूप से समझने के लिए ट्रेकर ने एक निर्देशिका का निर्माण किया है जिसके आधार पर समूह कार्य से संबंधितउठने वाले प्रश्नों का उत्तर ढूँढ़ा जा सकता है। ये निर्देशिका निम्नानुसार है-

समूह का इतिहास –

1. समूह ने कब कार्य करना प्रारंभ किया ?
2. किसलिए,किसके द्वारा तथा किन कारणों से समूह का प्रारंभ कियागया है?
3. भूतकाल में किन संस्थाओं ने समूह के साथ कार्य किया?
4. यह किस प्रकार का समूह है- कल्याणकारी समूह, कक्षा,क्लब या अन्य प्रकार का ?

समूह की विशेषताएँ-

1. सदस्यों की आयु की सीमा क्या है ?
2. समूह सदस्यों का लिंग क्या है?
3. सांस्कृतिक पृष्ठभूमि क्या है अथवा वेकिस राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करते हैं?
4. समूह सदस्य किस प्रकार समय का उपयोग करते हैं- स्कूल में ,काम में या अन्य किसी प्रकार से?
5. वर्तमान समय में उसका संगठन किस प्रकार का है?
6. सदस्यों में संबंधों की क्या विशेषताएँ हैं?
7. समूह क्या कोई प्रमुख छोटा समूह भी रखता है?
8. समूह में सामाजिक नियंत्रण प्रक्रिया का क्या कोई प्रमाण है?
9. संस्था और समुदाय में समूह की क्या स्थिति है?
10. समूह का भूतकालीन अनुभव क्या रहा है तथा समूहसदस्य किस प्रकार इसका मूल्यांकन करते हैं?

11. क्या समूह-सदस्यों में भाग लेने में समानता एवं संतुलन है ?
12. समूह विकास कर रहा है या विघटित हो रहा है?
13. समूह किस प्रकार नए सदस्यों का प्रवेश करता है ?
14. समूह किस प्रकार अपने कार्यक्रम व व्यवसाय को चलाता है?
15. प्रत्येक सदस्य की उम्र, लिंग, प्रजाति, तथा शैक्षिक पृष्ठभूमि क्या है?
16. समूह में व्यक्ति का क्या स्थान है? संस्था में क्या स्थान है? तथा समुदाय में क्या स्थिति है?
17. व्यक्ति किस प्रकार अन्य व्यक्तियों के साथ आसानी से भाग लेता है ?
18. व्यक्ति की रूचियाँ तथा योग्यताएँ क्या हैं ?
19. समूहों में व्यक्ति का पूर्व- अनुभव कैसा रहा है ?
20. किस प्रकार के घर से तथा सामुदायिक वातावरण से वह आया है ?
21. समूह की क्रियाओं में किस सीमा तक सदस्य भाग ले रहा है?
22. समूह के कार्यों में कितना उत्तरदायित्व ग्रहण करता है तथा प्रोत्साहन देता है?
23. वह समूह में कोई स्थान ग्रहण करता है, क्या चेयरमैन या अन्य उत्तरदायित्व ग्रहण करता है?
24. व्यक्ति किन अन्य संस्था और समुदाय के समूहों में सक्रिय है ?

समूह-कार्यकर्ता संबंधकैसा है?

1. वर्तमान कार्यकर्ता से पहले समूह के कार्यकर्ता कौन-कौन थे तथा उनका समूह से कैसा संबंध था? समूह-सदस्य उनके विषय में क्या कहते हैं ?
2. वर्तमान कार्यकर्ता का समूह से कैसा संबंध है? समूह कार्यकर्ता से क्या अभिलाषा रखता हैं ?
3. कार्यकर्ता का वर्तमान संबंध सदस्यों के साथ कैसा है?
4. वर्तमान कार्यकर्ता अपनी भूमिका को किस प्रकार समूह के साथ परिभाषित करता है? अन्य कार्यकर्ताओं का उपयोग समूह किस प्रकार करेगा - साधन के रूप में या कार्यक्रम में सहायक सामग्री के रूप में।
5. कार्यक्रम के तरीके में समूह ने क्या किया है तथा वर्तमान रूढियों क्या है?
6. कार्यक्रम किस प्रकार नियोजित किया जाता है तथा भूतकाल में किस प्रकार चलाया जाता है? कार्य के क्रियान्वयन का वर्तमान तरीका क्या है ?
7. कार्यक्रम किस सीमा तक समूह की आवश्यकताओं को संतुष्ट करने में समर्थ हो पा रहा है?
8. किस सीमा तक कार्यक्रम साधारण क्रियाओं से जटिल क्रियाओं की ओर अग्रसर हुआ है?
9. समूह की आवश्यकताओं एवं रूचियों को पूरा करने के लिए क्या साधन तथा स्त्रो उपलब्ध हैं ?
10. क्या संबंधसंस्था के उद्देश्यों के अनुकूलहै?
11. समूह के वर्तमान तथा दीर्घकालीन उद्देश्योंक्या है ?
12. कौन से व्यक्ति समूह तथा कार्यकर्ता से विशेष सहायता चाहते हैं?
13. भूतकाल में समूह ने किस सीमा तक सफल अनुभव प्राप्त किया है?

अतः इस आधार ट्रेकर द्वारा दिए गए समूह कार्य निर्देशिका को स्पष्ट किया जा सकता है जिससे समूह कार्य से संबंधित ऊठने वाले प्रश्नों का उत्तर ढूँढ़ा जा सके।

3.6 सारांश

उपर्युक्त इकाई के अध्ययन पश्चात यह कहा जा सकता है कि चाहे किसी भी कारण से, जिसके द्वारा भी और जहाँ कहीं भी कोई समूह बनाना पड़ता है, तो यह आवश्यक होता है कि वह किसी सामाजिक सामूहिक कार्यकर्ता की देख-रेख में बने । सामूहिक कार्यकर्ता की देख-रेख में बनने वाले समूह ज्यादा फलप्रद होने की संभावना रखते हैं। समूह निर्माण हेतु कार्यकर्ता की महती भूमिका है लेकिन इसके साथ ही साथ ऐसे तीन और पक्ष हैं जिनका महत्त्व समूह निर्माण मे अत्यधिक होता है। प्रथम-समूह के व्यक्ति, दूसरा सामाजिक अभिकरण और तीसरा समुदाय। समूह कार्य प्रक्रिया में व्यक्ति की अंतर्निहित शक्तियों एवं उसके बौद्धिक स्तर को वैज्ञानिक स्तर से जानने का प्रयास करना चाहिए। व्यक्ति की आर्थिक स्थिति उसका व्यक्तित्व और अंत: क्रियाओं पर प्रभाव तथा उसकी संभावनाओं को भी जानना आवश्यक है। समूह के सदस्य जिस समुदाय से आए हों वहाँ का आर्थिक, राजनीतिक वातावरण को जानना अत्यंत आवश्यक होता है। समूह निर्माण करते समय इन सभी तत्त्वों को जानना इसलिए आवश्यक होता है क्योंकि, व्यक्तित्व पर इन सब का अत्यधिक प्रभाव पडता हैं। समूह के प्रत्येक सदस्य के इन कथित पक्षों का अलग-अलग समुचित अध्ययन करने की आवश्यकता इसलिए होती है क्योंकि वे सभी सदस्य मिलकर समूह बनाते हैं और उन सबको भिन्न-भिन्न क्षमताओं के आधार पर लाभ प्राप्त करने की संभावनाएँ होती हैं। यदि प्रत्येक व्यक्ति की क्षमता का ज्ञान कार्यकर्ता को नहीं होगा तो कार्यकर्ता व्यक्ति की आवश्यकता के अनुसार सदस्य को सहायता नहीं कर पाएगा जिससे लक्ष्य प्राप्ति में समस्या आ सकती है। अतः समूह निर्माण प्रक्रिया हेतु उपर्युक्त समस्त तथ्यों का होना अत्यंत ही आवश्यक है जिससे समूह निर्माण प्रक्रिया को प्रभावी बनाया जा सके।

3.7 बोध प्रश्न

प्रश्न 01.समूह निर्माण से आपका क्या तात्पर्य है?

प्रश्न 02. समूह निर्माण को प्रभावित करने वाले कारकोंका वर्णन कीजिए ?

प्रश्न 03. समूह निर्माण प्रक्रिया को स्पष्ट कीजिए?

प्रश्न 04. सामूहिक कार्यकर्ता को समूह निर्माण करते समय किन-किन बातों का ध्यान रखना चाहिए ?

प्रश्न 05. समूह नियोजन के घटकों का वर्णन कीजिए?

प्रश्न 06. समूह निर्माण करने के पूर्व कार्यकर्ता द्वारा किन-किन महत्त्वपूर्ण बातों को ध्यान में रखना चाहिए?

प्रश्न 07. व्यक्तिगत सदस्यों के साथ समूह बनाने से पहले संपर्ककरने का क्या उद्देश्य होता है?

2.8 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

1. ट्रेकर, एच.वी, (1955). *सोशल ग्रपवर्क पिन्सिपल एन्ड प्रैक्टिस.*न्यूयोर्क: एसोसिएशन प्रेस।
2. प्रसाद मणिशंकर, सत्य प्रकाश, कुमार अरूण,कुमार संजय,सैफ मो.खान एवं सिंह अभव कुमार (2013). *यूजीसी नेट/जेआरएफ/स्लेट समाज कार्य.* दिल्ली : अरिहंत पब्लिकेषन (इण्डिया) लिमिटेड।
3. इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय (2010). *समूहों के साथ कार्य करना.* दिल्ली : समाज कार्य विद्यापीठ ।
4. सिंह, ए.एन. एवं सिंह, ए.पी. (2008). *समाज कार्य.* लखनऊ: हिंदी संस्थान।
5. मिश्रा, प्रयागदीन (2008). *सामाजिक सामूहिक कार्य.* लखनऊ : हिंदी संस्थान
6. कुलसचिव उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की ओर से मुद्रित एवं प्रकाशित समूह समाज कार्य।

7. तेज संगीता एवं पाण्डेय तेजस्कर(2010). *समाज कार्य.* लखनऊ : जुबली एच फान्डेशन।
8. सिंह, ए. एन., सिंह, नीरजा, संजय मिश्रा, सुषमा (2012).*सामूहिक कार्य.*हल्दानी : उत्तरायन प्रकाशन।
9. मेलकॉफ, एंड्रीयू (2004).*ग्रुप वर्क विद एडोलसेंट प्रिंसिपल्स एंड प्रैक्टिस* न्यूयार्क : दि गिलफोर्ड प्रेस।
10. विल्सफन, जरट्रड, रिलैंड, ग्लेगडीस, (1949). *सोशल ग्रुप वर्क प्रैक्टिस दि क्रियटीव यूस ऑफ सोशल प्रोसेंस*. यू एस ए : दि राइबर साइड प्रेस।
11. कोनोपका, शिसेला (1972). *सोसयल ग्रुप वर्क* र ए *हेल्पिंग प्रोससइंग्लेकवुड*: प्रेंटिस हाल आई एन सी।
12. द्विवेदी, आर.एस. (2008).*व्ह्यूमन रिलेशनस एंड आर्गनाइजेशन्सन* दिल्ली : बिहेवियर ग्लोबल

इकाई 4 सामाजिक समूह कार्य में मूल्य और सिद्धांत

इकाई रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 सामाजिक समूह कार्य में मूल्य एवं दर्शन

4.3 सामाजिक समूह कार्य में मूल्य और सिद्धांत

4.4 सामाजिक समूह कार्य में मूल्य(Values)।

4.5 सामाजिक समूह कार्य में प्रयुक्त किए जाने वाले सिद्धांत (Principal)

4.6 सारांश

4.7 बोध प्रश्न

4.8 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

4.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन करने के पश्चात आप-

1. सामाजिक समूह कार्य में मूल्य एवं दर्शन को रेखांकित कर सकेंगे।
2. समूह कार्य अभ्यास में मूल्यों के महत्त्व को प्रदर्शित सकेंगे।
3. समूह कार्य अभ्यास में मुख्य रूप से प्रयुक्त होने वाले सिद्धांतों एवं उनके महत्व को वर्णित कर सकेंगे।

4.1 प्रस्तावना

हम यह जानते हैं कि समूह कार्य समाज कार्य की एक प्रणाली के रूप में जाना जाता है जिसका मुख्य उद्देश्य समूह के माध्यम से लोगों की सहायता करना है। मनुष्य को यह सहायता विशिष्ट मान्यताओं और नियमों के तहत प्रदान की जाती है। समाज कार्य के उद्देश्य की ओर यदि हम ध्यान दें तो यही कहा जा सकता है कि यह एक मानवतावादी दर्शन, वैज्ञानिक ज्ञान तथा प्रविधिक निपुणताओं का प्रयोग करते हुए व्यक्तियों, समूहों एवं समुदायों की सहायता करता है। यह इस प्रकार से इनकी सहायता करता है कि ये स्वयं अपनी समस्या का समाधान करने में सक्षम हो जाए। समाज कार्य एक वैज्ञानिक ज्ञान पर आधारित कार्य है यहा वैज्ञानिकता का अर्थ व्यवस्थित ज्ञान से है। समाज कार्य की प्राथमिक प्रणाली होने के नाते मुख्यतः यही दर्शन और मूल्य समूह कार्य के भी हैं जिनको समझ लेना अत्यंत आवश्यक है कि ये किस प्रकार से समाज कार्य की प्राथमिक प्रणाली (वैयक्तिक कार्य, समूह कार्य, सामुदायिक कार्य) समूह कार्य में सहायक बनते हुए कार्य करते हैं। इसी भाँति समूह कार्य के भी कुछ महत्त्वपूर्ण सिद्धांत होते हैं जिनका पालन किए बिना कोई भी सामाजिक कार्यकर्ता समूह कार्य प्रक्रिया को संपन्न नही कर सकता। सिद्धांतों का पालन कार्य ऐच्छिक नहीं होता, क्योंकि इन सिद्धांतों को प्रयोग में लाए बिना लक्ष्यों को प्राप्त नहीं किया जा सकता। इसलिए इस इकाई में सामाजिक समूह कार्य के विभिन्न सिद्धांतों एवं मूल्यों के संबंध में चर्चा करेंगे।

4.2 सामाजिक समूह कार्य मे मूल्य एवं दर्शन

मूल्य समाज द्वारा मान्यता प्राप्त इच्छाएं एवं लक्ष्य हैं जिनका आन्तरीकरण समाजीकरण की प्रक्रिया के माध्यम से होता है। मूल्यों के आधार पर ही व्यक्ति की जीवन शैली का निर्धारण होता है तथा अंत: क्रियाएँ

संभव होती हैं। मूल्यों को परिभाषित करते हुऐ डोरौथी ली ने कहा है कि मानवीय मूल्यों से किसी एक मूल्य या मूल्यों की एक पद्धति से मेरा अभिप्राय है कि वह आधार जिस पर व्यक्ति किसी एक मार्ग को किसी दूसरे मार्ग की अपेक्षा अच्छा या बुरा, उचित या अनुचित समझते हुए ग्रहण करता है। हम मानवीय मूल्यों के विषय में केवल व्यवहार द्वारा ही जान सकते हैं। मानव व्यवहार द्वारा समूह निर्माण में मूल्य सामाजिक नियंत्रण के साधन के रूप में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं इन्हीं मूल्यों द्वारा एक समूह, समुदाय और व्यक्ति अपने व्यवहार पर नियंत्रण रखते हैं। समाज कार्य मूल्यों को आगे विस्तार से समझा जाएगा।

समाज कार्य में दर्शन सामाजिक जीवन के मौलिक सिद्धांतों और धारणाओं की व्याख्या करता है। दर्शन सामाजिक संबंधोंके सर्वोच्च आदर्श का निरूपण करता है। लियोनार्ड ने दर्शन को परिभाषित करते हुए कहा है कि- दर्शन विश्व के विभिन्न दृष्टिकोणों की प्रत्ययात्मक अभिव्यक्ति से अधिक कुछ और है – आदर्शात्मक शाप के अतिरिक्त यह मनुष्य के बीच तथा मनुष्य व संपूर्ण जगत के बीच संबंधों की मूल सत्यताओं का निरूपण करता है मानव-विज्ञानों को वैज्ञानिक होने के लिए दार्शनिक होना होगा। विलियम जेम्स ने दर्शन के संबंध में कहा है कि प्रत्येक प्राणी का एक दर्शन होता है, जो उसके जीवन का मार्गदर्शन करता है। अतः कहा जा सकता है कि दर्शन से तात्पर्य कार्य को एक दिशा देना है जो व्यक्ति के अपने मतानुसार हो सकती है यह समान भी हो सकती है और भिन्नता भी प्रकट कर सकती है।

4.3 सामाजिक समूह कार्य में मूल्य और सिद्धांत

फ्रीडलैंडर के मतानुसार समाज कार्य के मौलिक मूल्यों एवं सिद्धांतों का जन्म स्वतः नहीं हुआ है अपितु इनकी जड़ें उन गहरे एवं उपजाऊ विश्वासों में मिलती हैं जो सभ्यताओं को सीखते हैं। अमेरिका की प्रजातांत्रिक व्यवस्था का आधार नैतिक एवं आध्यात्मिक समानता, वैयक्तिक विकास की स्वतंत्रता , सुअवसरों के स्वतंत्र चुनाव की स्वतंत्रता, न्यायपूर्ण प्रतिस्पर्द्धा, वैयक्तिक स्वतंत्रता, पारस्परिक प्रतिष्ठा एवं सर्वजन के अधिकार हैं। प्रजातंत्र के यह सभी आदर्श अभी तक पूर्ण रूप से प्राप्त नहीं किए जा सके हैं तथा समाज कार्य इन्हीं आदर्शात्मक की प्राप्ति का प्रयास कर रहा है। हर्बर्ट बिस्नो ने समाज कार्य के मूल्यों को चार क्षेत्रों में विभाजित किया है-प्रथम व्यक्ति की प्रकृति के संदर्भ में, द्वितीय समूहों, व्यक्तियों एवं समूहों और व्यक्तियों के आपसी संबंधोंके संदर्भ में, तृतीय समाज कार्य प्रणालियों एवं कार्यों के संदर्भ में एवं चतुर्थ सामाजिक कुसमायोजन एवं सामाजिक परिवर्तन के संदर्भमें। हर्बर्ट बिस्नो द्वारा कहे गए इन समस्त मूल्यों को यदि हम समायोजित करके अध्ययन करें तो यही स्पष्ट होता है कि अपने अस्तित्व के कारण ही प्रत्येक व्यक्ति मूल्यवान है, यह मूल्य समस्त समाज कार्य दर्शन का आधार स्तंभ है। साथ ही स्पष्ट होता है कि समाज कार्य का द्विमुखी दृष्टिकोण है। एक ओर समाज कार्य व्यक्तियों का संस्थागत समाज के साथ समायोजन स्थापित करने में सहायता करता है और दूसरी ओर यह संस्थागत समाज के आवश्यक क्षेत्रों में परिवर्तन लाने का प्रयास करता है। समाज कार्य में सिद्धांतों का भी अपना अलग ही महत्त्व है जो कार्य को एक क्रमबद्धता के साथ करने में हमारी सहायता करते हैं और यही क्रमबद्धता समूह कार्य के सिद्धांतों मे भी प्रतीत होती है समूह कार्य के सिद्धांतों में मुख्य रूप से-नियोजन का सिद्धांत, लक्ष्यों की स्पष्टता का सिद्धांत, सोद्देश्य संबंध का सिद्धांत, निरंतर व्यक्तिकरण का सिद्धांत, निर्देशित सामूहिक अंतःक्रिया का सिद्धांत, जनतंत्रीय सामूहिक आत्मनिश्चयिकरण का सिद्धांत, लोचदार कार्यात्मक संगठन का सिद्धांत, प्रगतिशील कार्यक्रम अनुभवों का सिद्धांत, साधनों के उपयोग का सिद्धांत, मूल्यांकन का सिद्धांत, भावनाओं केउद्देश्य पूर्ण प्रगटन का सिद्धांत,

आत्म-संकल्प का सिद्धांतआदि मुख्य सिद्धांतों के रूप में देखे जाते हैंजिनके माध्यम से संपूर्ण समूह कार्य प्रक्रिया को लक्ष्य प्राप्ति हेतु आसानी से किया जा सकता है।

4.4 **सामाजिक समूह कार्य में मूल्य** (Values)

समाज कार्य एक व्यावसायिक कार्य है और बिना मूल्यों के कोई भी व्यवसाय नहीं बन सकता। समाज कार्य के माध्यम से व्यक्ति में सामाजिक एवं व्यक्तिगत परिवर्तन लाने का प्रयास किया जाता है इसलिए समाज कार्य में मूल्यों का होना आवश्यक है। समाज कार्य की विभिन्न अवधारणाओं का ज्ञान और समाज कार्य की विधियों का ज्ञान कार्यकर्ता के लिए पूर्ण रूप से उपयुक्त नहीं हो सकता जब तक वह इस ज्ञान और समाज कार्य के अभ्यास के फलस्वरूप एक विशेष प्रकार के व्यक्तित्व का विकास नहीं कर लेता। यह व्यक्तित्व समाज कार्य की मनोवृतियों एवं मूल्योंपर आधारित होता है। इसकी सहायता से समाज कार्यकर्ता व्यक्तिगत, सामूहिक एवं साम्ुदायिक क्षेत्रों में उत्पन्न होने वाली समस्याओं और विरोधी मूल्यों को दूर करने का प्रयास करता है। वह ऐसे मूल्यों को स्वीकार करने में सहायता देताहै जो सभी को मान्य हों और जिससे संपूर्ण समुदाय, समूह एवं व्यक्तियों का विकास संभव हो सके। समाज कार्य के अनेक मूल्य हैंजो समाज कार्य को एक व्यावसायिकता प्रदान करते हैं अनेक विद्वानों के द्वारा समाज कार्य के इन मूल्यों को अलग-अलग रूप में परिभाषित किया गया है जो समाज कार्य व्यवसाय को एक दिशा प्रदान करते हैं और जिनका समावेश समूह कार्य प्रणाली में किया जाता है –

कौस (koss) के अनुसार समाज समूह कार्य के मूल्य-

1ण मनुष्य की योग्यता एवं उसकी गरिमा (The worth and dignity of man)।

2. सम्पूर्ण मानवीय सामर्थ्य को प्राप्त करने की मानव प्रकृति की क्षमता का विकास करना (The capacity of human nature to achive full human potential)।
3. मतभेदों के लिए सहनशीलता (Tolerance of differences)।
4. मनुष्य की मौलिक आवश्यकताओं की संतुष्टि (Satisfaction of basic human needs)।
5. स्वतंत्रता (Liberty)।
6. आत्म-निर्देशन (Self-direction)।
7. अनिर्णयात्मक प्रवृति (Non-judgement attitude)।
8. रचनात्मक सामाजिक सहयोग (Constructive social cooperation)।
9. कार्य की महत्ता तथा अवकाश का रचनात्मक सदुपयोग (Importance of work and constructive use of leisure)।
10. मनुष्य एवं प्रकृति के खतरों से अपने अस्तित्व की सुरक्षा (Protection of one's existence from the dangers caused by man and nature)।

कोनोपका (Konopka) के अनुसार

1ण प्रत्येक व्यक्ति के प्रति आदर की भावना एवं उसका अपनी क्षमताओं के संपूर्ण विकास का अधिकार (Respect for every person to the fullest development of his/her potential)।

2. व्यक्तियों की पारस्परिक निर्भरता एवं एक-दूसरे के प्रति अपनी योग्यतानुसार उत्तरदायित्व (Mutual development of the individual and responsibility to wards each other according to their abilities.)।

नोटः कोनोपका ने द्वितीयक मूल्यों के प्रति मतभेद को वैज्ञानिक अन्वेषण द्वारा दूर करने का सुझाव दिया है और लिन्डमैन (Lindman) के विचारों की व्याख्या करते हुए कहा है कि समाज कार्यकर्ता एक ऐसा प्रभावशाली अस्तित्व है जो समाज कार्य के प्राथमिक मूल्यों की रक्षा करता है और उन्हें व्यावहारिक रूप देने का प्रयास करता है।

हर्बर्ट बिस्नो (Herbert Bisno) ने समाज कार्य/समूह कार्य के चार प्रमुख मूल्यों को विभाजित करते हुए उसका वर्णन किया है-

1. व्यक्ति की प्रकृति के संदर्भ में (Nature of the Individual) समूहों, व्यक्तियों एवं समूहों और व्यक्तियों के आपसी संबंधों के संदर्भ में (The relation between Group,Group and Individuals and betbeen individuals) ।
2. समाज कार्य की प्रणालियों एवं कार्यों के संदर्भ में (Function and Method of social work)।
3. सामाजिक कुसमायोजन एवं सामाजिक परिवर्तन के संदर्भ में (Social Maladjustment and social change)।

फ्रीडलेंडर ने समाज समूह कार्य के मूल्य को परिभाषित करते हुए कहा था कि समाज कार्य (समूह कार्य) के मौलिक मूल्यों का जन्म राहों के किनारों पर उपजे जंगली पुष्पों की भाँति नहीं हुआ, बल्कि इन मूल्यों की जड़ें उन गहरे, उपजाऊ विश्वासों में देखने को मिलता है जो सभ्यताओं को सींचते आए हैं।

प्रो. मिर्जा आर.अहमद ने विभिन्न भारतीय एवं पाश्चात्य राजनैतिक एवं सामाजिक विचारकों, विशेषज्ञों, शिक्षाविदों के विचारों को उद्धरित करते हुए समाज कार्य के निम्नलिखित मूल्यों को प्रतिपादित किया है-

रूददर दत्त (After Ruddar Dutt) के विचारों से प्रेरित होकर- समाज कार्य आर्थिक एवं राजनैतिक प्रभुसत्ता के समान रूप से पुनर्वितरण पर विश्वास करता है ताकि आर्थिक प्रोग्राम के अंतर्गत निर्धनों को उनका पूरा लाभ मिल सके।

गोल्ड स्मिथ (After Gold Smith) के विचारों से प्रेरित होकर- समाज कार्य उत्पादन की सामाजिक व्यावहारिक पर विश्वास करता है तथा उत्पादन को सामाजिक उद्देश्य के अधीन मानता है।

होसलाइज़ (After Hoselize) के विचारों से प्रेरित होकर- समाज कार्य का विश्वास है कि आर्थिक भूमिका उपलब्धि के मानक के आधार पर ही निर्दिष्ट होनी चाहिए न कि प्रदत्त प्रस्थिति या सामाजिक स्थिति के अनुसार आरक्षित होनी चाहिए।

इन उपर्युक्त आधारों पर प्रो. मिर्जा ने समाज समूह कार्य के मूल्यों को उल्लेखित किया है।

अतः विभिन्न विद्वानों सामाजिक विचारकों, विशेषज्ञों, शिक्षाविदों के विचारों से अवगत होने के पश्चात समूह कार्य के मूल्योंको निम्नानुसार बताया जा सकता है-

1. **आत्म निर्णय का अधिकार -** इसके द्वारा समूह सदस्यों से यह विश्वास किया जाता है कि वे स्वंय अपने निर्णय लेने में सक्षम बन सकें और साथ ही अपने मार्ग को प्रशस्त कर सकें।

2. **समूह सदस्यों की योग्यता एवं महत्ता पर विश्वास -** प्रत्येक व्यक्ति में अपनी कुछ विशेषताएँ होती हैं जो दूसरे किसी अन्य व्यक्ति में नहीं होती। प्रत्येक सदस्य को समान अवसर प्रदान करना चाहिए जिससे वह समस्या के समय स्वयं ही समस्या का निराकरण खोजने में सक्षम हो जाए। समूह कार्य का लक्ष्य तब तक पूरा नहीं हो पाएगा जब तक कि प्रत्येक सदस्य की योग्यता एवं महत्ता पर विश्वास नहीं किया जाएगा। इसी आधार पर कार्यकर्ता अपनी भूमिका का क्रियान्वयन करता है।
3. **आत्म-पूर्णता -** सामाजिक सामूहिक कार्य का मुख्य उद्देश्य समूह का पूर्ण विकास करना होता है। इसके अंतर्गत उन्हीं कार्यक्रमों को उपयोग में लाया जाता है, जिनसे सदस्यों का सर्वांगीण विकास संभव होता है।
4. **विकास का मुख्य आधार संबंध-** मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है जिसका आधार संबंधोंपर निर्भर करता है और व्यक्ति का सर्वांगीण विकास भी इन्हीं सकारात्मक संबंधों पर आधारित होता है।
5. **व्यक्तित्व अंतरों की मान्यता एवं संस्कृति-** प्रत्येक व्यक्ति विचारों, भावनाओं, चिंतन तथा सामाजिक पृष्ठभूमि में भिन्न होता है। उसकी शक्तियों तथा योग्यताओं में भी भिन्नता होती है । समूह कार्य में सभी व्यक्तिओं के विचारों को महत्त्व देकर उन्हें प्रोत्साहित करना चाहिए।
6. **समूह पर संस्कृति का प्रभाव -** प्रत्येक मनुष्य किसी न किसी संस्कृति, परंपरा व रीति-रिवाज इत्यादि को मान्यता प्रदान करता है एवं उसी के अनुसार अपना प्रभाव समूह में प्रदर्शित करता है। समूह कार्यकर्ता यह ध्यान में रखता है कि किस समूह का निर्माण किया जा रहा है उसमें सदस्यों की संस्कृति में कम भिन्नता पाई जाए इसलिए समूह सदस्यों की संस्कृति का अध्ययन पूर्व में कर लेना चाहिए।
7. **परिवर्तन का विरोध -** परिवर्तन संसार का नियम है यह निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है। समूह में भी निरंतर परिवर्तन स्वाभाविक ही है एवं इन परिवर्तनों के चलते कई बार समूह में विरोधाभास भी हो जाता है। अतः समूह कार्यकर्ता द्वारा इस विरोधाभास को समाप्त करने का प्रयास करना चाहिए।
8. **विकास के समान अवसर -** समूह कार्य प्रक्रिया में सदस्यों को समान अवसर प्रदान करना चाहिए जिससे कि वे समूह की गतिविधियों में समान रूप से भाग ले सकें और समूह में सक्रियता बनाए रखें।

अतः उपर्युक्त मूल्यों का अध्ययन करने के बाद यह कहा जा सकता है कि सामाजिक समूह कार्य में मूल्य एक आधारशिला की भाँति कार्य करते हैं जो संपूर्ण समूह कार्य प्रक्रिया मेंप्रभावी भूमिका को अदा करते हैं। अतः इन मूल्यों का समूह कार्य प्रक्रिया में अत्यंत ही महत्त्व है।

4.5 सामाजिक समूह कार्य में प्रयुक्त किए जाने वाले सिद्धांत (Principal)-

नोट: समूह कार्य में प्रयुक्त किए जाने वाले सिद्धांतों का विस्तृत अध्ययन पूर्व इकाई में किया जा चुका है इसका केवल संक्षिप्त रूप यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

सामाजिक सामूहिक कार्य के निम्नलिखित आधारभूत सिद्धांत हैं जिनके आधार पर समूह कार्य में लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सकता है:-

4.5.1 नियोजन का सिद्धांत:-

नियोजन किसी भी कार्य को करने का एक व्यवस्थित और सुनियोजित तरीका है जिससे लक्ष्यों को आसानी से प्राप्त किया जा सकता है। नियोजन के अंतर्गत विद्यमान स्थितियों तथा संभावित परिवर्तनों की उपयोगिता को ध्यान में रखकर एक व्यवस्थित तथा सुसंगठित रूपरेखा तैयार की जाती है जिससे भविष्य के

परिवर्तनों को अपेक्षित लक्ष्यों के अनुरूप नियंत्रित, निर्देशित तथा संशोधित किया जा सके । समूह का निर्माण हमेशा ही सुनियोजित होना चाहिए। सामूहिक कार्यकर्ता सुनियोजित तरीके से समूह निर्माण का कार्य करते हैं यदि सामूहिक कार्यकर्ता नियोजित तरीके से कार्य करेगा तो निश्चित ही उसे लक्ष्य प्राप्त हो जाएगा। लक्ष्य नियोजन का सिद्धांत लक्ष्य प्राप्ति में अत्यंत ही सहायक होता है।

4.5.2 लक्ष्यों की स्पष्टता का सिद्धांत:-

सामुदायिक कार्यकर्ता के लिए स्पष्ट लक्ष्यों का ज्ञान होना नितांत आवश्यक होता है जिससेवह कार्य को आसानी से कर सकता है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि कौन-सा सदस्य किस प्रकार का कार्य करेगा? वह क्या कार्य करेगा कब करेगा कैसे करेगा यह सब कुछ स्पष्ट हो जाता है। जिससे प्रत्येक सदस्य को कोई शंका नहीं होती है कि उसे क्या करना है। यह संपूर्ण क्रिया कार्य पूर्णता के लिए आवश्यक है। समूह कार्य में लक्ष्यों की स्पष्टता से कार्यकर्ता के लिए यह जानना अत्यंत आवश्यक होता है कि सामूहिक अनुभव से प्रत्येक सदस्य को क्या प्राप्त करना चाहिए और उनमें किस प्रकार के अनुभव प्राप्त करने की क्षमता है? इससे समूह के सदस्यों की शक्तियों एवं कमजोरियों को ज्ञात किया जा सकता है। उदाहरण के लिए यदि सामूहिक कार्यकर्ता किसी विशेष स्थान पर समूह कार्य द्वारा स्वच्छता कार्यक्रम चलाना चाहता है तो सर्वप्रथम समूह के सदस्य यह स्वयं अनुभव करें वे स्वयं इस दिशा में प्रयत्न करें अन्यथा यह कार्यक्रम सफल नहीं हो पाएगा । जब तक समूह का प्रत्येक सदस्य यह महसूस न करले कि यह मेरा काम है न कि दूसरे का तब तक लक्ष्यों कोप्राप्त नहीं किया जा सकता। इस मानसिकता से कार्यों को संपन्न का लक्ष्यों को आसानी से प्राप्त किया जा सकता है।

4.5.3 सोद्देश्य संबंध कासिद्धांत:-

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह समाज में ही रहकर अपना जीवन-यापन कर सकता है। इसी आवश्यकता को ध्यान में रखकर वह संबंधों का निर्माण करता है। अपनी आवश्यकताओं की संतुष्टिसंबंधके माध्यम से करता है। अतः प्रत्येक सामाजिक स्थिति में संबंधों का विशेष महत्त्व है। सामूहिक कार्य में भी कार्यकर्ता तथा समूह के बीच संबंधोंका अत्यंत महत्त्व है लेकिन यह संबंध उद्देश्यों केआधार पर होना चाहिए जिससे कि आगे किसी भी प्रकार का कोई मत-भेद कार्यकर्ता और सदस्यों के बीच उत्पन्न न हो । समूह के सदस्य निश्चित किए जाए तथा उन्हीं के आधार पर संबंधों की स्थापना एवं विश्लेषण हो। कार्यकर्ताओं के लिए भी ध्यान देने वाली बात यह है कि कार्यकर्ता एवं समूह के बीच संबंध तभी घनिष्ठ होंगे जबकि कार्यकर्ता समूह सदस्यों को जैसे हैं वैसे ही स्वीकार करें।

4.5.4 निरंतर वैयष्रिकरण का सिद्धांत:-

प्रत्येक व्यक्ति अपने अलग-अलग पर्यावरण, ज्ञान एवं वंशानुक्रम से भिन्न होता है। प्रत्येक व्यक्ति की अपनी अलग विशिष्टता होती है। अतः कार्यकर्ता का दायित्व होता है कि वह प्रत्येक सदस्य की ओर अपना ध्यान रखे जिससे समूह अपने लक्ष्य पर अग्रसर रहे। सामाजिक समूह कार्य में निरंतर व्यैक्तिकरण का सिद्धांत एक महत्त्वपूर्ण सिद्धांत के रूप में जानाजाता है जिसके माध्यम से समूह कार्यकर्ता ऐसे समूह के सदस्यों की सहायता करता है, जो सदस्य समूह में सामंजस्य स्थापित नहीं कर सकते हैं उन्हें समूह के सदस्यों के साथ सामंजस्य स्थापित करने के लिए प्रेरित करता है। इसके अलावा समूह सदस्यों की विभिन्न इच्छाओं और आवश्यकताओंको भी वह निरंतर व्यैक्तिकरण के माध्यम से जान सकता है।

4.5.5 निर्देशित सामूहिक अंतःक्रिया का सिद्धांत-

संपूर्णसमूह कार्य प्रक्रिया सामूहिक गतिविधियों के माध्यम से नियोजित की जाने वाली प्रक्रिया है। जिसके माध्यम से ही संपूर्ण कार्यसंपन्न किए जाते हैं। यह सामूहिक प्रक्रिया कार्यकर्ता और समूह सदस्यों के मध्य होने वाली अंत: क्रियाओं पर ही निर्भर करती है। इन अन्तः क्रियाओं का स्वरूप इस बात पर निर्भर करतहै कि समूह के सदस्य तथा सामूहिक कार्यकर्ता की इच्छाएँ, क्षमताएँ तथा कार्य के ढ़ंग इत्यादि किस प्रकार के हैं? जहाँ कही भी दो पक्ष विद्यमान होते हैं, अंत: क्रियाएँ होती ही हैं। यदि ये अंतःक्रियाएँ निर्देशित न हो अर्थात इनकी दिशा सही ना हो तो सामूहिक उपलब्धियों को प्राप्त नहीं किया जा सकेगा। इसलिए कार्यकर्ता का कार्य रहता है कि वह किस प्रकार से समूह सदस्यों एवं कार्यकर्ताओं के मध्य होने वालीअंत: क्रियाओं को सही दिशा प्रदान करें, क्योंकि समूह के कार्य एवं उद्देश्य समूह में होने वालीअंत: क्रिया का स्वरूप तथा इनको दिशा समूह के सदस्यों तथा कार्यकर्ताओं की क्षमताओं, इच्छाओं, आशाओं तथा कार्य करने के ढ़ां पर निर्भर करती है । अतः कार्यकर्ताओं को इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि समूह के सदस्यों मे आपसी संबंध सकारात्मक रूप में हो तथा अंत: क्रिया का प्रभाव एक ही दिशा में हो अन्यथा नकारात्मक अंतः क्रिया समूह कार्य प्रक्रिया में व्यवधान उत्पन्न कर सकती है।

4.5.6 जनतंत्रीय सामूहिक आत्मनिश्चयीकरण का सिद्धांत:-

जनतंत्रीय सामूहिक क्रिया में कार्यकर्ता समूह का, समूह के लिए, समूह द्वारा कार्य करने पर कार्यकर्ता द्वारा बल प्रदान किया जाता है। कार्यकर्ता को इस आधार पर तैयार करना चाहिए वह स्वयं अपने निर्णय लेने में सक्षम हो सके। अपनी क्षमताओं एवं योग्यताओं के अनुरूप कार्य कर सके यह सिद्धांत इस तथ्य पर आधारित होता है कि समूह तथा व्यक्ति को सामाजिक उत्तरदायित्व ग्रहण करने के अवसर उपलब्ध कराए जाए। लेकिन यह भी निर्धारित करना अत्यंत आवश्यक है कि उत्तरदायित्व किस प्रकार का होगा और किन आधारों में दिया जाएगा? यह निर्धारित करना कार्यकर्ता के लिए आवश्यक होगा। सामूहिक कार्य प्रक्रिया में समूह के प्रथम चरण से समापन तक संपूर्ण प्रक्रिया में जो निर्णय लिए जाते हैं वे जनतंत्रीय प्रणाली के आधार पर ही सुनिश्चित किए जाते हैं। संपूर्ण प्रक्रिया में जो निर्णय लिए जाते हैं वह सामूहिकता की भावना को ध्यान में रखकर ही लिए जाते हैं। समूह का प्रत्येक सदस्य इसमें बराबर का भागीदार होता है, वे स्वंय यह निर्धारित करते हैं कि किस प्रकार कार्य करना है और क्या निर्णय लेना है, कार्यकर्ता केवल सही दिशा देने का कार्य करता है। इस प्रक्रिया के संदर्भ में प्रो राजाराम शास्त्री ने कहा था कि - समूह अथवा समूह के सदस्य स्वयं से स्वयं के बारे में और स्वयं के लिए जो कुछ भी, जब भी करें, वह इस प्रकार होना चाहिए कि उनमें से प्रत्येक की भावना को कम से कम आघात पहुँचाते हुए तथा उन्नत समाजगत स्वीकृति मूल्यों तथा प्रेम, सौहार्द, शालीनता, सज्जनता से युक्त होकर करें, अर्थात आपस में शिष्ट आचार-विचार के माध्यम से प्रकृतिगत विकृतियों के दमन और सद्वृतियों के विकास द्वारा करें। जब कार्य में भी इस अपेक्षित स्थिति में कमजोरी के लक्षण दिखें तो सामूहिक कार्यकर्ता को भी कथित जनतांत्रिक तरीकों से ही समय सेवार्थियों अथवा सदस्यों के ज्ञान-धरातल को उन्नत कर या परिवेशगत परिमार्जन द्वारा अंत: क्रियाओं की स्थिति एवं स्वरूप को ऐसी दिशा देनी चाहिए जो अधिकाधिक अधिकारी हों।

4.5.7 लोचदार कार्यात्मक संगठन का सिद्धांत-

लोचदार कार्यात्मक संगठन सिद्धांत के द्वारा समूह कार्यकर्ता इस प्रकार का प्रयास करता है किकिसी भी गतिविधि को इतना सरल व आसान बनाया जाए जिससे प्रत्येक सदस्य गतिविधियों का हिस्सा बन जाए और समय व आवश्यकतानुसार कार्यक्रम में परिवर्तन संभव हो सके । समूह कार्य में समूह का निर्माण कुछ विशिष्ट उद्देश्यों के साथ किया जाता है इन्हीं उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए कुछ औपचारिक संगठनों का निर्माण कराया जाता

है क्योंकि इसी औपचारिक संगठनों के माध्यम से समूह सदस्यों की शक्तियाँ एक दिशा में प्रवाहित होती हैं । साथ-ही-साथ सामूहिक जीवन में भी स्थायित्व आता है। कुछ समूहों में भिन्नता भी होती है समूहों में समयानुसार आवश्यकताएँ बदलती रहती हैं तथा नवीन इच्छाओं काभी जन्म होता है। अतः समूह संगठन की रचना में लचीलापन होना अत्यंत ही आवश्यक होता है।

4.5.8 प्रगतिशील कार्यक्रम अनुभवों का सिद्धांत-

समूह कार्य एक प्रगतिशील प्रक्रिया है और यह प्रक्रिया बिना रचनात्मक कार्यक्रमों के संभव नहीं हो पाती है । जब समूह कार्य प्रक्रिया को प्रारंभ किया जाता है और उसमें कार्यक्रमों को प्रारंभ किया जाता है तो ध्यान देने वाली बात यह होती है कि कार्यक्रम इस प्रकार का हो जिसमें समस्त सदस्यों की रुचियाँ, आवश्यकताएँ, अनुभव निपुणता तथा दक्षता हो। जैसे –जैसे इनकी शक्तियों में विकास होता जायेगा वैसे-वैसे ही कार्यक्रमों मे भी परिवर्तन किया जायेगा । प्रत्येक स्तर पर समूह को कार्यक्रम का हिस्सा बनने के लिए प्रेरित किया जाता है जिससे कि प्रत्येक सदस्य कार्यक्रम का हिस्सा बन जाए और सदस्यों में आत्मनिर्णय की क्षमता का विकास हों संपूर्ण प्रक्रिया प्रगतिशील समूह एवं कार्यकर्ता की योग्यता पर निर्भर करता है अतः प्रगतिशील कार्यक्रम अनुभवों के सिद्धांत को समूह कार्य मेंएक विशिष्ट स्थान दिया जाता है।

4.5.9 साधनों के उपयोग का सिद्धांत:-

किसी भी प्रक्रिया में साधनों का उपयोग एक सामाजिक कार्यकर्ता के लिए अत्यंत ही आवश्यक होता है ।इस प्रकिया के द्वारा कार्यकर्ता यह अनुभव प्राप्त करता है कि किसी भी समूह यासामुदायिक प्रक्रिया में उपलब्ध साधनों का उपयोग कैसे किया जाए जिससे कि लक्ष्य को आसानी से प्राप्त किया जा सके। साधनों का उपयोग कुशलतापूर्वक करना चाहिए जिससे कि किसी भी प्रकार की कोई समस्या उत्पन्न न हो और साधनों का उचित उपयोग किया जा सके। संस्था एवं संपूर्ण वातावरण और समुदाय मिलकर बहुत-से साधन रखते हैं। सामाजिक सामूहिक कार्य में संस्था तथा समुदाय के इन साधनों का प्रयोग व्यक्तियों और समस्त समूह के हित के लिए किया जाता है। कार्यकर्ता की भूमिका केवल समूह में ही नहीं होती वरन वह समूह से बाहर भी उतनी ही भूमिका को अदा करता है। वह समुदाय से संबंधित सभी आवश्यक जानकारी को एकत्रित करता है तथा समस्त सदस्यों के साथ जानकारी साझा करता है जिससे वह एक प्रकार से मध्यस्थता की भूमिका भी अदा करता है और आवश्यकता पड़ने पर समूह को उपलब्ध साधनों के उपयोग के लिए प्रेरित भी करता है।

4.5.10 मूल्यांकन का सिद्धांत-

मूल्यांकन एक सततऔर निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है यह प्रक्रिया कार्य प्रारंभ होने के साथ ही प्रारंभ हो जाती है इस प्रक्रिया द्वारा यह तय किया जाता है कि कार्य को कितनी सफलता प्राप्त हुई है और कार्य के दौरान क्या कमियाँ रह गई हैं जिसे कार्यकर्ता द्वारा दूर करने का प्रयास किया जाता है। यह एक निर्णय करने वाली प्रक्रिया भी है, जो निश्चित करती है कि समूह कार्यकर्ता तथा संस्था का क्या उत्तरदायित्व है, उनको पूरा करने की कितनी क्षमता है, क्या-क्या शक्तियाँ है तथा क्या-क्या कमजोरियाँ है, कौन-कौन से कार्य रचनात्मक सहयोग प्रदान करते हैं। मूल्यांकन के द्वारा समूह की अंतःक्रियाओं,समूह की शक्तियों, सदस्यों की कमजोरियों, समूह के अनुभव एवं उनकी क्षमताओं का आँकलन किया जाता है। समूह कार्यकर्ता निम्न तीन स्थितियों का मूल्यांकन करता है -

1. कार्यक्रम का मूल्यांकन
2. सदस्यों के भागीकरण का तथा अनूभव का मूल्यांकन

3. कार्यकर्ता स्वयं अपनी भूमिका का मूल्यांकन।

उपर्युक्त समूह कार्य के सिद्धांतसमूह कार्य को सरलता पूर्वक संपन्न करने में कार्यकर्ता की सहायता करते हैं। ये सिद्धांत समूह कार्यकर्ता को अनुकूल दशा प्रदान करते है ये कोई स्थिर सिद्धांत नहीं है वरन आवश्यकतानुसार परिवर्तनशील भी है। अनुभवों, ज्ञान, निपुणताओं तथा प्रविधियों के साथ इनमें बदलाव होते रहते हैं। परंतु यह वे साधन हैं जिनका उपयोग कर कार्यकर्ता लक्ष्य की प्राप्ति आसानी से कर सकता है।

4.6 सारांश

राष्ट्रीय सामाजिक कार्यकर्ता संस्था (एन ए एस डब्यूओ) की नैतिक संहिता के अनुसार 'व्यापक नैतिक सिद्धांत सामाजिक कार्यकर्ता के सेवा-मूल्यों , सामाजिक न्याय, प्रतिष्ठा और व्यक्ति की गरिमा, मानव संबंधों का महत्त्व, निष्ठा और सक्षमता पर आधारित होते हैं।' ये सिद्धांत आदर्श स्थापित करते हैं जिनकी सभी सामाजिक कार्यकर्ताओं को आवश्यकता होती है। इस इकाई का उद्देश्य यह था कि विद्यार्थी को व्यवसायिक सामाजिक कार्यकर्ता के मूल्यों और सिद्धांतों को समझाया जाए जिससे कि वह समूह कार्य अभ्यास का पालन कर सके और व्यावसाय के लक्ष्य को प्राप्त कर सके। कुछ वर्षों के अंतराल के पश्चात सामाजिक समूह कार्य अभ्यास में कुछ सिद्धांतों का उदगम हुआ है जिसने सामाजिक समूह कार्यकर्ता को सैद्धांतिक ढाँचा प्रदान किया है। ये उस समय लागू होते हैं जब वह समूह में लोगों के साथ कार्य करता है। कुछ मार्गदर्शन उपलब्ध कराए गए जो अभ्यास को मार्गदर्शित करते हैं। विभिन्न लेखकों ने समय-समय पर विभिन्न समूहों के साथ कार्य करने के विभिन्न सिद्धांतों की रूपरेखा प्रस्तुत की है, कार्यकर्ता को यह सिद्धांत व मूल्य बड़ी ही सावधानी-पूर्वक उपयोग करना आना चाहिए जिससे कि समूह कार्य प्रक्रिया के अंतिम लक्ष्य को प्राप्त किया जा सके।

4.7 बोध – प्रश्न

प्रश्न 01- मूल्यों से आपका क्या तात्पर्य है? स्पष्ट कीजिए।

प्रश्न 02. समूह कार्य प्रणाली में मूल्यों के महत्त्व पर प्रकाश डालिए?

प्रश्न 03. समूह कार्य में प्रयुक्त किए जाने वाले विभिन्न विद्वानों द्वारा दियें गए मूल्यों को समझाइए

प्रश्न 04. मूल्यों का सामाजिक जीवन में क्या महत्त्व है? स्पष्ट कीजिए।

4.7 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

- Kohils, S.C.(1996). *The roots of social work* .New York : Association press, p.62.
- Dorothy lee. Abrahim H.Maslo.(1959).*Culture and the expwnence of value in new knowledge in human values*. New York: Harpar & Brother P.165.
- Bison Herbert (1953). ***T****he philosophy of social work*.Washington D.C.: public affaris press.p.1-2.
- Friedlander.Walter(1958).*A concept and method of social work* .Eaglewood cliffs N.J: Ptentice –Hall inc. p.1.
- United national Training for social work – third International survev op.cit.,pp194-195.

❖ Ahmad Mirza R, Soodan S.and k.s. (eds).(1983).*Perpectrive on social work philosophy in Horizons of social work singh*.Lucknow:Jyotsna publications.pp.38-66.
❖ ''Man must be regard as a whole; and he really has but one , which is to live wholly and completely''. Wilson G.and Ryland c, op.cit.p.17.
❖ ट्रेकर, एच.वी, (1955). *सोशल ग्रपवर्क पिन्सिपल एन्ड प्रैक्टिस. एसोसिएशन* न्यूयोर्क: न्यूयोर्क प्रेस, , ,पृ.89-92।
❖ सिंह, ए.एन. एवं सिंह, ए.पी. (2008) *समाज कार्य.* लखनऊ: हिंदी संस्थान।
❖ मिश्रा, प्रयागदीन (2008). *सामाजिक सामूहिक कार्य*.लखनऊ : हिंदी संस्थान ।
❖ फ्राइडलैंडर डब्यूी प .ए. (सं.) (1958). *कंस्पंट्स एंड मेथड्स ऑफ सोशल वर्क* प्रिंटिस हाल: एम सी, इंग्लेवुड कलीफ्स एन.जे.।
❖ गार्बिन, चार्ल्स डी ई टी अल (सं.) (2008). *हैंड बुक ऑफ सोशल वर्क विद ग्रुप्स*दिल्ली: रावत पब्लिकेशन ।
❖ कोनोपका जिसेला (1963).*सोशल ग्रुप वर्क ए हेल्पींग प्रोसस.* प्रिंटिस हाल: इंग्लै्वुड क्लीरफ्स्एन. जे.।
❖ हैपवर्थ, डीन एच एंड लार्सन, जो एन (1992). *डॉइरेक्ट सोशल वर्क प्रैक्टिस र थ्योरी एंड स्किल्सल ब्रुक्सव* कैलीफोर्निया :कोले पब्लिसिंग कम्प्नी, फोरथ ईडी।
❖ सिद्दीकी, एच वाई (2008). *ग्रुप वर्क थ्योरीस एंड प्रैक्टिसस.* नई दिल्ली: रावत पब्लिकेशन्स ।
❖ ट्रेकर, हारलीग बी. (1955). *सोशल ग्रुप वर्क-प्रिंसिप्लस एंड प्रैक्टिसस.* न्यूयार्क: एसोसिएशन प्रेस।
❖ प्रसाद मणिशंकर, सत्य प्रकाश, कुमार अरूण,कुमार संजय,सैफ मो.खान एवं सिंह अभव कुमार(2013). *यूजीसी नेट/जेआरएफ/स्लेट समाज कार्य.* दिल्ली : अरिहंत पब्लिकेशन(इण्डिया) लिमिटेड।
❖ कुलसचिव उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की ओर से मुद्रित एवं प्रकाशित समूह समाज कार्य।